A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2009

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

A-PDF PageMaster Demo. Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका
2009

प्रधान संपादक **डॉ. (श्रीमती) विनोद बाला अरुण**

संपादक **डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र**

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ्ट लेन
फॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane
Forest Side
Mauritius

Email : whsmauritius@intnet.mu • Phone : 6705026 / 6761196 • Fax : 6761224

मानननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी
शिक्षा, संस्कृति व मानव संसाधन मंत्री,
आई.वी.टी.बी हाउस,
फेनिक्स
मॉरीशस

REPUBLIC OF MAURITIUS

MINISTRY OF EDUCATION, CULTURE AND HUMAN RESOURCES

(Office of the Minister)

संदेश

मैं यह जान कर अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि विश्व हिंदी सचिवालय अपनी वार्षिक 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रथम अंक प्रकाशित कर रहा है । मैं इस प्रकाशन को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ क्योंकि इससे विश्व भर में फैले हिंदी प्रेमियों को विश्व स्तर पर हो रहे हिंदी के प्रचार प्रसार के बारे में जानकारी मिल सकेगी । यह हिंदी की विश्व यात्रा का एक ऐतिहासिक दस्तावेज सिद्ध होगा । मैं आशा करता हूँ कि ऐसा प्रकाशन प्रतिवर्ष किया जाएगा जिससे हिंदी की वैश्विक प्रगति से सभी परिचित हो सकेंगे ।

हमारे लिए यह गौरव की बात है कि मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना का विचार सब से पहले हमारे राष्ट्रपिता और प्रथम प्रधान मंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी की उपस्थिति में भारत के नागपुर शहर में 10 जनवरी 1975 को आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में रखा था । उन्होंने कहा था कि हिंदी भारत के लिए राष्ट्रभाषा है लेकिन हमारे लिए यह अंतर्राष्ट्रीय भाषा है ।

मुझे यह कहते हुए हर्ष हो रहा है कि हम ने चाचा रामगुलाम के सपने को साकार किया । आज मॉरीशस और भारत की साझेदारी में विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में कार्यरत है । भारत के प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह और मॉरीशस के प्रधान मंत्री डॉ. नवीन चंद्र रामगुलाम दोनों सचिवालय की प्रगति में गहरी रुचि लेते हैं ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम विश्व हिंदी सचिवालय के माध्यम से हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने में सफल होंगे । विश्व हिंदी के बढ़ते कदमों से मानवता को शान्ति, एकता और समरसता का संदेश मिलेगा क्योंकि हिंदी प्रेम की भाषा है ।

मैं विश्व हिंदी सचिवालय की महासचिव डॉ. विनोद बाला अरुण को इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ । यह प्रकाशन विश्व के हिंदी प्रेमियों के लिए लाभकारी हो यही मेरी कामना है ।

वसंत बनवारी

IVTB House – Phoenix – MAURITIUS
Tel. No. 697 7862, 686 2402, Fax No. : (230) 698 3601
E-mail: moeps@mail.gov.mu; E-mail: vkbunwaree@mail.gov.mu

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस
HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

दिसंबर १८, २००९

संदेश

मुझे यह जानकर हर्ष है कि विश्व हिंदी सचिवालय अपनी वार्षिक पत्रिका "विश्व हिंदी पत्रिका" का प्रथन अंक प्रकाशित करने जा रहा है। मुझे इस बात की विशेष रूप से प्रसन्नता है कि इस पत्रिका का लोकार्पण विश्व हिंदी दिवस १० जनवरी, २०१० के अवसर पर किया जाएगा।

हिंदी विश्व की बहुत बड़ी आबादी द्वारा बोली जाती है। यह ऐसी भाषा है जो सीमाओं में बंद नहीं है तथा सभी महाद्वीपों में बोली जाती है। भारत सरकार हिंदी के संवर्धन को अत्यंत महत्व देती है तथा इसके उत्तरोत्तर विकास के लिए प्रतिबद्ध है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन किया है। प्रथम सम्मेलन १९७५ में नागपुर में तथा आठवाँ सम्मेलन २००७ में न्यूयॉर्क में आयोजित किया गया। इन सम्मेलनों ने इस विश्वास को पुष्ट किया है कि हिंदी केवल अधिकांश प्रवासी भारतीयों द्वारा ही नहीं बोली जाती है, अपितु बहुत से अन्य लोग भी हिंदी बोलते, लिखते और इसके प्रशंसक हैं। भारत की विदेश नीति की दृष्टि से भारतीय मिशनों एवं दूतावासों से कहा गया है कि वे हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग करें। इसके अलावा, प्रति वर्ष १० जनवरी को विश्व हिंदी दिवस मनाने और इस अवसर पर हिंदी के कार्यक्रम और प्रतियोगिताएँ आयोजित करने का दायित्व भी दिया गया है।

वैश्विक हिंदी के संदर्भ में मॉरीशस का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में स्थित है। हिंदी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाने तथा संयुक्त राष्ट्र-संघ की सातवीं राजभाषा के रूप में स्थान दिलाने के अभियान मे मॉरीशस भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चलता रहा है। प्रत्येक भारतवासी को इस बात से अत्यंत प्रसन्नता होती है कि मॉरीशस की सरकार और जनता ने न केवल मॉरीशस के अंदर अपितु विश्व स्तर पर हिंदी के महत्व को समझा है।

मेरा विश्वास है कि १० जनवरी, २०१० को विश्व हिंदी दिवस मनाये जाने से समस्त विश्व में हिंदी का संवर्धन और विकास करने में हमें और बढ़ावा मिलेगा। विश्व हिंदी सचिवालय, भारत सरकार, मॉरीशस की सरकार और जनता तथा हिंदी संगठन और अन्य संबंधित संगठनों द्वारा १० जनवरी, २०१० को विश्व हिंदी दिवस का आयोजन हिंदी को वैश्विक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने की दिशा में विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण घटना है। "विश्व हिंदी पत्रिका" के प्रथम अंक का प्रकाशन विश्व हिंदी सचिवालय का सराहनीय प्रयास है।

मैं १० जनवरी, २०१० को विश्व हिंदी दिवस का आयोजन करने के लिए सभी संगठनों को, उनके द्वारा किए गए महत्वपूर्ण प्रयास हेतु शुभ-कामनाएँ देता हूँ। मैं सभी हिंदी प्रेमियों और शुभचिंतकों को भी शुभ-कामनाएँ और बधाई देता हूँ और इस कार्यक्रम की सफलता की कामना करता हूँ।

म. गणपति

(म० गणपति)

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, P.O. Box 162, Port Louis, Mauritius.
Tel: (230)208 7372/8123 **Fax:** (230)208 6859
Email: hicom.ss@intnet.mu

प्रधान संपादक की ओर से

विश्व-क्षितिज पर हिंदी

विश्व-क्षितिज पर हिंदी आज कितनी आभा और प्रखरता के साथ देदीप्यमान हो रही है, इसकी एक झलक प्रस्तुत करने के लिए विश्व हिंदी पत्रिका का यह प्रथम अंक सुधी पाठकों को समर्पित है। इसके माध्यम से विश्वव्यापी हिंदी समुदाय अपनी अस्मिता का अधिक गहराई से गौरव-बोध कर सकेगा, ऐसी हमें आशा है।

स्वाधीन भारत की राजभाषा और बहुसंख्यक समाज की संपर्क भाषा होने के कारण हिंदी का विश्व-परिदृश्य पहले से कहीं अधिक विस्तृत हुआ है। विश्व-क्षितिज पर भारत आज एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर रहा है, इससे सारा जगत भारत की ओर ललक से देख रहा है। चीन के बाद विश्व का सबसे बड़ा बाजार होने के कारण भारत से सहज संपर्क बनाने के लिए विदेशी जन हिंदी सीखने के लिए उत्सुक हैं। प्राविधिक ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय समाज की विशेषज्ञता के कारण भारतवासी पूरे विश्व में फैल रहे हैं; इससे हिंदी भी अपनी सीमाओं को विस्तृत कर रही है।

उन्नीसवीं शताब्दी में मॉरीशस, फीजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड एंड टोबैगो और दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मजदूर खेतों में काम करने गए थे। हिंदी इनके साथ इन देशों में पहुँची और फूली-फली।

बीसवीं शताब्दी में व्यापार और समृद्ध जीवन के लिए अनेक भारतीय अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन आदि देशों में बस गए। इससे भी हिंदी को नया निवास मिला।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद स्वाधीन भारत को अच्छी तरह जानने-समझने के लिए अनेक देशों में हिंदी अध्ययन व्यवस्थित रूप में आरंभ हुआ। उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि ९३ से भी अधिक देशों में औपचारिक रूप से हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है। विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा दी जाती है, जिनमें मॉरीशस, फीजी, हॉलैंड, जर्मनी, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, थाईलैंड, उजबेकिस्तान, तजाकिस्तान, क्रोएशिया, कनाडा, चीन, जापान, रोमानिया, बल्गारिया, रूस, हंगरी और पोलैंड आदि देश प्रमुख हैं। अकेले अमेरिका के ८० से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की सुविधा उपलब्ध है। जिन देशों में हिंदी शिक्षण को औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में स्थान नहीं मिला, वहाँ भारतीय समुदाय की स्वयंसेवी संस्थाएँ हिंदी का अध्यापन करती हैं।

भारत से बाहर हिंदी पढ़ने वाले दो तरह के लोग हैं--विदेशी और प्रवासी भारतीय। विदेशी जन अनेक कारणों से हिंदी सीखते हैं, जिनमें प्रमुख हैं--भारत से अपने को आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़ना, हिंदी में बातचीत करना, हिंदी फिल्मों और उनके गीतों को समझना और अकादमिक दृष्टि से हिंदी का गहन अध्ययन करना। विदेशी हिंदी विद्वानों ने हिंदी में साहित्यिक रचनाएँ की हैं, शब्दकोश लिखे हैं और हिंदी की अनेक प्रसिद्ध रचनाओं का अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद किया है। अंग्रेज़ी विद्वान् जे.आर. कारपेंटर ने गोस्वामी तुलसीदास पर अपना शोध ग्रंथ 'द थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' लिखा तो प्रो. आर.एस. मैकग्रेगर ने 'हिंदी-अंग्रेज़ी कोश' तैयार किया। रूसी विद्वान् प्रो. बेस्क्रोवनी ने 'हिंदी-रूसी शब्दकोश' बनाया तो चीनी विद्वान् प्रो. यीन ने 'हिंदी-चीनी शब्दकोश' तैयार किया और अब वे 'चीनी-हिंदी शब्दकोश' तैयार करने में लगे हैं। प्रो. यीन ने हिंदी के कुछ उपन्यासों का चीनी में अनुवाद करने का दुरूह कार्य भी किया। प्रो. लियो आनवू ने हिंदी साहित्य का इतिहास चीनी भाषा में लिखा और अनेक उपन्यासों एवं कहानियों का अनुवाद भी चीनी में किया। रूसी विद्वान् प्रो. वारान्निकोव ने 'रामचरितमानस' का रूसी भाषा में और प्रो. चिनतिंग हान ने चीनी भाषा में अनुवाद किया।

जापान के प्रो. क्यूया दोई ने हिंदी-जापानी और जापानी-हिंदी कोश लिखकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रेमचंद के 'गोदान', सुमित्रानंदन पंत के 'स्वर्णकिरण', जैनेंद्र कुमार की प्रतिनिधि कृतियों और महादेवी वर्मा की कुछ कविताओं के अनुवाद जापानी भाषा में किए।

प्रो. कात्सुरो कोगा ने 1472 पृष्ठों में हिंदी-जापानी शब्दकोश लिखने के अलावा अनेक रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद किया। बेल्जियम मूल के फादर कामिल बुल्के ने अपना संपूर्ण जीवन हिंदी को समर्पित कर दिया। उन्होंने अंग्रेज़ी-हिंदी का मानक शब्दकोश तैयार करने के साथ ही रामकथा पर गहन शोध करके हिंदी साहित्य को अपार गौरव प्रदान किया।

इटली के प्रो. मिलानेत्ती ने 'पद्मावत', सुश्री चेचिलिया कोसियो ने फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल', प्रो. दोलचीनी ने 'रानी केतकी की कहानी', सुश्री मारियोला ओफ्रेदी ने कई उपन्यासों, प्रो. कराक्की और प्रो. स्तेफनो पियानो ने कई कहानियों का इटालियन में अनुवाद किया। फ्रांस की श्रीमती आनी मोंतो ने अनेक रचनाओं का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया।

बल्गारिया की डॉ. वाल्या मारिनोवा ने भी कई हिंदी उपन्यासों का बल्गारियाई अनुवाद किया। हिंदी भाषा और साहित्य की अनेक पुस्तकें पोलिश भाषा में डॉ. रुत्कोव्स्का, श्रीमती आग्नेयेष्का कोवाल्स्का और प्रो. दानुता स्ताशिक द्वारा लिखी गईं। श्री दनिल इंकजे ने 'प्रेमचंद' की 22 कहानियों का हिंदी से रोमानियन भाषा में अनुवाद किया। चेक गणराज्य के डॉ. ओदोलेन स्मेकल ने हिंदी पाठ्यक्रम की पूरी श्रृंखला तैयार की।

विश्व भर में फैले ऐसे अनेक हिंदी विद्वान् हैं, जिन्होंने अपने-अपने देश की भाषा और हिंदी के बीच संवाद सेतु निर्मित किया। हिंदी लेखन में चित्रित भारत के जनजीवन से उन्होंने अपने देश को परिचित कराया। ऐसे विद्वानों की सूची बहुत लंबी है, सभी नामों का उल्लेख कर पाना कठिन है। इन सभी हिंदी प्रेमियों के प्रति हम नतमस्तक हैं, क्योंकि इनके कारण हिंदी का वैश्विक परिदृश्य अधिक प्रखर और विस्तृत हुआ है।

प्रवासी भारतीयों ने हिंदी का अध्ययन आरंभ में अपनी सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखने के लिए किया था, किंतु आज ये लोग अपने निवास के देशों में स्वतंत्र नागरिक हैं और शासन-तंत्र में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। अतः हिंदी का दैनिक व्यवहार में भी उपयोग हो रहा है।

प्रवासी देशों में मॉरीशस और फीजी में हिंदी की स्थिति सर्वाधिक सुदृढ़ थी, किंतु राजनीतिक उथल-पुथल के कारण फीजी की स्थिति कमजोर हो गई है। मॉरीशस पूर्ववत् हिंदी के ध्वज को पूर्ण गरिमा और गौरव के साथ गगनचुंबी बनाए हुए है। मॉरीशस में हिंदी का लेखन प्रचुर मात्रा में हो रहा है। मॉरीशस के सोमदत्त बखौरी, ब्रजेंद्र मधुकर, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, पं. बेणीमाधव रामखेलावन, प्रह्लाद रामशरण, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, डॉ. हेमराज सुंदर और राज हीरामन आदि साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

यद्यपि सूरीनाम, गयाना, त्रिनिडाड एंड टोबैगो और दक्षिण अफ्रीका में हिंदी का प्रयोग कुछ मंद पड़ गया था, किंतु आज इन देशों में भी हिंदी के प्रति जागरण का भाव आया है। अनेक साहित्यकारों ने हिंदी में लेखन किया है। फीजी में बोली जानेवाली फीजीबात में प्रो. सुब्रमणी ने 'डउका पुरान' लिखकर हिंदी साहित्य में एक नया प्रयोग किया गया है, जिसमें लोकभाषा की मधुर चाशनी है। फीजी के विवेकानंद शर्मा, कमला प्रसाद मिश्र, रामनारायण, काशीराम कुमुद, महावीर मित्र और ज्ञानी सिंह; त्रिनिडाड की ममता लक्ष्मना, हरिशंकर आदेश; सूरीनाम के अमर सिंह रमण, मुंशी रहमान खाँ; गयाना के रण्डल बूटी सिंह, दक्षिण अफ्रीका के रामभजन सीताराम और राम बिलास आदि हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हैं।

20वीं शताब्दी में वाणिज्य, व्यापार और व्यवसाय के लिए पश्चिम के समृद्ध देशों में अनेक भारतीय गए और वहाँ अपनी जड़ें जमाईं। भौतिक समृद्धि उपार्जित करने के साथ ही उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति के वटवृक्ष को भी सबल बनाया। इस तरह इन देशों में भी हिंदी के उन्नयन के कार्य हो रहे हैं। अनेक प्रवासी भारतीय सृजनात्मक लेखन द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। इनमें अमेरिका के वेदप्रकाश बटुक, भूदेव शर्मा, गुलाब खण्डेलवाल, विजय कुमार मेहता, रामेश्वर अशांत, हिमांशु पाठक, धनंजयकुमार, सुषम बेदी, रेणु राजवंशी गुप्ता, सुधा ढींगरा और अंजना संधीर; कनाडा के प्रो. हरिशंकर आदेश, श्याम त्रिपाठी, सुरेंद्र पाठक, आचार्य रत्नाकर नराले, भारतेंदु श्रीवास्तव, शिवनंदन सिंह यादव, भगवत शरण श्रीवास्तव, अरविंद मोनाले, ब्रजराज कश्यप, स्नेह ठाकुर, शैलजा सक्सेना, भुवनेश्वरी पांडे, सुशीला गुप्ता और प्रमिला भार्गव; ब्रिटन के तेजेंद्र शर्मा, अचला शर्मा, उषाराजे सक्सेना, सत्येंद्र श्रीवास्तव, उषा वर्मा, कृष्ण कुमार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव,

कीर्ति चौधरी, दिव्या माथुर और प्राण शर्मा आदि साहित्यकार प्रमुख हैं।

हिंदी का विश्वव्यापी विस्तार उसे निश्चित रूप से विश्व की तीन बड़ी भाषाओं में स्थान देता है, लेकिन हिंदी के संगठित प्रचार-प्रसार के लिए किसी केंद्रीय व्यवस्था की कमी सबको खटकती थी। भारत के स्वराज्य आंदोलन के समय गांधीजी ने हिंदी को जनसंपर्क का माध्यम बनाकर सहज रूप से सर्वप्रिय बनाया था। उन्होंने प्रवासी भारतीयों को भी भाषा और संस्कृति से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया था। मॉरीशस और फीजी में उन्होंने अपने दूत के रूप में बैरिस्टर मणिलाल डॉक्टर को भेजा था। मणिलाल डॉक्टर ने बड़ी निष्ठा के साथ हिंदी के लिए कार्य किया। किंतु भारत और भारत से बाहर फैले हिंदी समुदाय को सबलता से एक सूत्र में बाँधने का कार्य अभी शेष था।

सन् 1975 हिंदी के लिए नियति का वरदान बनकर आया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने विश्व हिंदी सम्मेलन करने की योजना बनाई। महाराष्ट्र में हिंदी के परम भक्त श्री मधुकर राव चौधरी और श्री अनंत गोपाल शेवड़े योजना को कार्य रूप देने के लिए आगे बढ़े। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का उन्हें समर्थन प्राप्त हुआ। इस तरह 10 जनवरी, 1975 को प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था कि विश्व भर के हिंदीप्रेमी एक मंच पर जुटें और हिंदी के संगठित उन्नयन के लिए विचार-मंथन करें। इस सम्मेलन में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ मॉरीशस के राष्ट्रपिता और तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम भी उपस्थित थे। अपने भाषण में दूरदर्शी सर शिवसागर रामगुलाम ने विचार रखा कि हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय उन्नयन के लिए एक संस्था बनाई जाए। उन्होंने यह भी कहा कि इस संस्था का मुख्यालय यदि मॉरीशस में हो तो उन्हें प्रसन्नता होगी। सभी प्रतिनिधियों ने करतल ध्वनि से इस विचार का स्वागत किया।

कालांतर में इस विचार को ठोस रूप देने के लिए भारत और मॉरीशस दोनों देशों की सरकारों के सहयोग से मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई। विश्व हिंदी सचिवालय के सामने एक विराट् लक्ष्य है--हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में उन्नयन करना और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के कार्य को आगे बढ़ाना।

इस लक्ष्य की संपूर्ति हेतु कदम बढ़ाने के लिए हमने यह उपयुक्त समझा कि विश्व भर में हिंदी के संवर्धन के लिए जहाँ कहीं भी कार्य हो रहे हैं, उनका संकलित रूप एक पत्रिका के रूप में प्रस्तुत किया जाए। विश्व हिंदी पत्रिका का प्रकाशन इसी विचार की ठोस परिणति है। हमारी कामना है कि यह प्रकाशन हिंदी की विश्व-यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज बने।

हिंदी की विश्व-यात्रा के संदर्भ-ग्रंथ के रूप में यह सचिवालय का प्रथम प्रकाशन है। इसमें 45 लेखकों के आलेखों को समाहित किया गया है, जो विभिन्न देशों की हिंदी की स्थिति का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन आलेखों को पढ़कर हम हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए किए गए अपने प्रयत्नों के सबल और दुर्बल पक्ष का आकलन कर सकेंगे और तदनुरूप भविष्य की रणनीति तय कर सकेंगे।

रचनाओं के क्रम निर्धारण में पहला स्थान मॉरीशस और दूसरा भारत को दिया गया, क्योंकि सचिवालय मॉरीशस में स्थापित है और भारत से बाहर हिंदी की स्थिति सबसे प्रबल यहीं है। इसके बाद भारत में हिंदी की स्थिति पर आलेख है, क्योंकि भारत हिंदी का आदिधाम है और साथ ही हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है।

इन दोनों प्रमुख हिंदी-देशों के बाद हमने आप्रवास के उन देशों को लिया है, जहाँ 19वीं शताब्दी में भारतीय मजदूर गन्ने के खेतों में काम करने गए थे। इन देशों में फीजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिडाड एंड टोबैगो और दक्षिण अफ्रीका प्रमुख हैं। इन देशों में बहुसंख्या में भारतवंशी रहते हैं और अपनी भाषा एवं संस्कृति से गहराई से जुड़े रहने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं।

इसके उपरांत उन देशों को सम्मिलित किया है, जहाँ हिंदी अकादमिक, व्यापारिक, राजनयिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आदि अनेक कारणों से पढ़ाई जाती है, जिससे भारत से उन देशों का गहरा और आत्मीय संबंध बन सके। इनमें से अनेक देशों में भारतीय मूल के लोग वाणिज्य-व्यापार करने या व्यवसाय विशेषज्ञ के रूप में काम करने के लिए जा बसे हैं।

पत्रिका में 7 ऐसे लेखों को भी सँजोया गया है, जो किसी एक विशेष देश से तो संबंधित नहीं हैं किंतु विश्व संदर्भ में हिंदी-उन्नयन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हैं।

पत्रिका के प्रकाशन को साकार रूप देने के लिए हमें मॉरीशस के शिक्षा मंत्रालय और भारतीय उच्चायोग का पूर्ण सहयोग प्राप्त

हुआ। इसके लिए मैं व्यक्तिगत रूप से मॉरीशस के शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी और सुपरवायजिंग ऑफीसर श्रीमती प्रमिला आविलक, भारत के उच्चायुक्त महामहिम मधुसूदन गणपति और उप उच्चायुक्त श्री प्रशांत पीसे की आभारी हूँ।

सचिवालय की कार्यक्रम और गतिविधि उपसमिति के सदस्य भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव डॉ. जयप्रकाश कर्दम और मॉरीशस के शिक्षा मंत्रालय की सीनियर कल्चर ऑफीसर सुश्री अनुपमा चमन का हम विशेष रूप से स्मरण करना चाहते हैं, क्योंकि दोनों अधिकारियों ने पत्रिका के प्रकाशन को संभव बनाने में हर अपेक्षित सहयोग तत्परतापूर्वक प्रदान किया।

हम सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञ भाव से विनत हैं, जिन्होंने अपना सहयोग देकर पत्रिका के प्रकाशन को संभव बनाया।

हमारी इच्छा थी कि सभी लेखकों का सचित्र संक्षिप्त परिचय भी आलेखों के साथ प्रस्तुत किया जाए, किंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी सभी लेखकों से सामग्री समय पर उपलब्ध नहीं हो पाई। जिन लेखकों ने अपना परिचय सचित्र भेजा था, उनके प्रति आभार व्यक्त करते हुए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

आप सभी जानते हैं कि हिंदी का कार्य विश्व के अनेक देशों में किसी-न-किसी रूप में हो रहा है। इस संपूर्ण कार्य को इस एक प्रकाशन में समेट पाना न तो संभव था और न ही व्यावहारिक। अपने अगले प्रकाशन में उन देशों को भी समाहित करने का प्रयत्न करेंगे, जो इस अंक में स्थान प्राप्त नहीं कर सके। हमें आशा है कि विश्व हिंदी के उन्नयन को रेखांकित करने का यह विनम्र प्रयत्न आपको भाएगा।

18.12.2009

डॉ. (श्रीमती) विनोद बाला अरुण

महासचिव

विश्व हिंदी सचिवालय

संपादकीय

और एक प्रयास

अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन करने तथा उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में एक आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के अपने मूल उद्देश्य को लेकर 'विश्व हिंदी सचिवालय' अपने सीमित संसाधनों के साथ निरंतर प्रयासरत है । न्यूयॉर्क में 13-15 जुलाई, 2007 को आयोजित आठवाँ 'विश्व हिंदी सम्मेलन' इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा कि विश्व भर के हिंदी प्रेमी संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में एकत्र हुए और हिंदी का सामूहिक शंखनाद विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाया ।

सम्मेलन को संबोधित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री बान की मून ने कहा कि 'संसार के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए हिंदी समन्वय-सूत्र की तरह काम कर रही है। यह संसार की सभी संस्कृतियों के बीच एक सेतु है। बहुत ही कम शब्दों में भाषा और संस्कृति के गहरे और अटूट संबंध की ओर संकेत करते हुए उन्होंने हिंदी की वैश्विक यात्रा की ओर हम सबका ध्यान आकर्षित किया है । निश्चित ही श्री बान की मून को हिंदी के विश्वव्यापी उज्ज्वल भविष्य का आभास हो चुका है और उन्हें हिंदी के तेजी से बढ़ते क़दमों की आहट भी सुनाई दे रही है ।

भारत के प्रधानमंत्री माननीय डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा है कि आज हिंदी अपनी एक खास मंज़िल तक आ पहुँची है । इसके विश्वव्यापी उद्देश्य को पूरा करने के लिए न केवल भारत और मॉरीशस बल्कि विश्व भर के समस्त हिंदी प्रेमी पूरी निष्ठा के साथ सक्रिय हैं । भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री एवं वर्तमान वाणिज्य मंत्री माननीय श्री आनंद शर्मा ने जिस सूझ-बूझ के साथ न्यूयॉर्क के आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का नेतृत्व सँभाला, वह अविस्मरणीय है । इस ऐतिहासिक अवसर पर उद्घाटन सत्र के दौरान उन्होंने अपने हृदय-स्पर्शी उद्गार में कहा था कि 'अब विश्व मंच पर भारत की आवाज़ आदर के साथ सुनी जाने लगी है, क्योंकि यह आवाज़ बहुनस्लीय संस्कृति एवं सभ्यता की है, शांति, बंधुत्व और अहिंसा की स्वीकृति की है' ।

आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में मॉरीशस प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में तत्कालीन शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री माननीय धरम गोकुल ने कहा था कि दुनिया भर में बसे भारतीय मूल के लोगों के लिए हिंदी उनकी सांस्कृतिक पहचान की भाषा है । हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए क्योंकि यह आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरते हुए एक राष्ट्र की भाषा है ।

अतः यह निश्चित है कि भाषा और संस्कृति के अन्योन्याश्रित संबंध का मूल मंत्र 'भाषा गई तो संस्कृति गई' हमारी समझ में आ चुका है । यही कारण है कि आज विश्व के समस्त देश अपनी भाषा और सांस्कृतिक विरासत को नष्ट होने से बचाने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं। जहाँ तक भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार का सवाल है, उस दिशा में अन्य प्रांतीय भाषाओं के साथ ही हिंदी भाषा की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। एक इतने बड़े राष्ट्र की भाषाओं और संस्कृतियों में विविधता होने के बावजूद जो भाषिक और सांस्कृतिक एकता दिखाई देती है, वह अनन्य है ।

'विश्व हिंदी सचिवालय' ने हिंदी को विश्वव्यापी बनाने का अपना आधिकारिक अभियान 11 फरवरी, 2008 से प्रारंभ किया था । संपूर्ण विश्व में चल रही हिंदी की गतिविधियों से हिंदी प्रेमियों को समय-समय पर अवगत कराने के लिए सचिवालय की ओर से त्रैमासिक 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन मार्च, 2008 से प्रारंभ किया गया था । अब तक उसके आठ अंक प्रकाशित हो चुके हैं । इस त्रैमासिक समाचार पत्र के माध्यम से मॉरीशस, अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, नीदरलैंड्स, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर, सिडनी, जमैका, उक्रेन, जापान, हंगरी, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, ईराक व सऊदी आदि देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार से जुड़ी संस्थाओं द्वारा हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के लिए किए जा

रहे कार्यों की संक्षिप्त जानकारी विश्वव्यापी हिंदी प्रेमियों तक पहुँचाने का हमने एक विनम्र प्रयास किया है ।

सचिवालय की प्रकाशन योजना का एक अन्य प्रयास है 'विश्व हिंदी पत्रिका' का वार्षिक प्रकाशन । इस प्रवेशांक में कुछ लेख बहुत छोटे हैं, कुछ मँझोले और कुछ ठीक-ठीक । लेकिन एक बात सभी लेखों के बारे में कही जा सकती है, वह यह कि जो भी लेख आप पढ़ना शुरू करेंगे उसे पूरा पढ़े बिना आप छोड़ नहीं सकते । कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें शामिल सभी लेख रोचक हैं और किसी देश में हिंदी की वर्तमान स्थिति क्या है, उसकी पूरी जानकारी देते हैं । इसलिए इन लेखों में छोटे-मँझोले का अंतर ही मिट गया है।

आशा है, इस वार्षिक पत्रिका के जरिये हिंदी के विश्वव्यापी पाठकों को हिंदी की वैश्विक स्थिति के बारे में एक समेकित जानकारी मिलेगी । यह नहीं है कि ऐसी पत्रिकाएँ पहले नहीं छपीं, किंतु 'विश्व हिंदी सचिवालय' द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका में कुछ महत्वपूर्ण एवं सूचनापरक लेख पहली बार प्रकाशित हो रहे हैं ।

विश्वव्यापी हिंदी प्रेमियों एवं लेखकों से विनम्र अनुरोध है कि वे विश्व के जिस किसी भी देश में रहते हों, कृपया उस देश में 'हिंदी की स्थिति' पर लगभग 2000 से 2500 शब्दों का एक लेख लिखकर हमारे पते पर अविलंब भिजवाने की व्यवस्था करवाएँ जिससे कि हम उसका उपयोग अपने आगामी वार्षिक अंकों में कर सकें ।

मॉरीशस,

06.12.2009

-डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र

उप महासचिव

अनुक्रम

1	मॉरीशस में हिंदी शिक्षण	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1
2	राष्ट्रभाषा हिंदी	कैलाशचंद्र भाटिया, मोतीलाल चतुर्वेदी	6
3	फीजी में हिंदी : स्थिति और संभावनाएँ	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	13
4	सूरीनाम में हिंदी : भाषा और साहित्य	प्रो. पुष्पिता अवस्थी	18
5	गयाना में आलोकित है हिंदी का सूर्य	नारायण कुमार	24
6	दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की संघर्ष गाथा	प्रो. उषा देवी शुक्ला	28
7	त्रिनिडाड एवं टोबैगो में हिंदी : एक सर्वेक्षण	डॉ. कुमार महाबीर	33
8	संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी	अखिलेश सुमन	36
9	अमेरिका में हिंदी के बढ़ते चरण	डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक'	40
10	कनाडा में हिंदी का फलक	आ. श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी	46
11	ब्रिटेन में हिंदी की स्थिति : एक सर्वेक्षण	डॉ. राकेश बी. दुबे	51
12	रूस में हिंदी – तब और अब	डॉ. मदनलाल मधु	56
13	विश्व हिंदी सम्मेलनों का अवदान : एक आकलन	डॉ. कृष्ण कुमार	59
14	चीन में हिंदी अध्ययन व शोध की परंपरा	प्रो. च्यांग चिंगखुए	65
15	जापान में हिंदी शिक्षण की परंपरा	प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण	68
16	ओसाका में हिंदी का चमकता सूर्य	प्रो. (डॉ.) यासमीन सुलताना नकवी	72

17	फ्रांस में हिंदी के अध्ययन केंद्र	अपर्णा क्षीरसागर-महापात्र	76
18	इजराइल में हिंदी : संस्कृति-संदर्भ	डॉ. गेनादी श्लोम्पेर	80
19	जर्मनी में हिंदी की वर्तमान स्थिति	डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय	84
20	इटली में हिंदी शिक्षण	प्रो. श्याममनोहर पांडेय	88
21	एशियाई देशों में हिंदी की स्थिति	डॉ. परमानंद पांचाल	91
22	न्यूजीलैंड में हिंदी : फीजी संदर्भ	डॉ. सतेंद्र कुमार सिंह	95
23	सिंगापुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के 51 वर्ष	जितेंद्र कुमार मित्तल	98
24	बेलारूस और भारत की सहयात्रा में नया पहलू	डॉ. मिहईल मिहायलोव	103
25	बल्गारिया, हिंदी और भारतीय संस्कृति	डॉ. सत्यकाम	107
26	थाईलैंड में हिंदी शिक्षण	डॉ. वमरुंग खामीक	110
27	खाड़ी के देशों में जन साधरण की भाषा हिंदी	पूर्णिमा वर्मन	113
28	भारतेतर देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास और स्वरूप	डॉ. कमल किशोर गोयनका	115
29	यूक्रेन में हिंदी	डॉ. ओलेना मायरोनिवा	123
30	डेनमार्क में हिंदी : एक चिंतन	अर्चना पैन्यूली	124
31	नॉर्वे में हिंदी के विविध आयाम	अमित जोशी	128
32	पोलैंड में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : अतीत और वर्तमान	डॉ. दानूता स्ताशिक	131

33 विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा का शिक्षण : चुनौतियाँ एवं समाधान — डॉ. हरजेंद्र चौधरी — 134

34 नीदरलैंड्स में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति — प्रो. मोहन कांत गौतम — 139

35 दक्षिण कोरिया में हिंदी अध्ययन, प्रशिक्षण और शोध — प्रो. आलोक कुमार रॉय — 142

36 श्रीलंका में हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन — प्रो. उपुल रंजीत हेवावितानगमगे — 145

37 पाकिस्तान में हिंदी — प्रो. माजदा असद — 148

38 विदेशों में हिंदी के अध्ययन की समस्याएँ — डॉ॰ सुधेश — 151

39 रोमानिया में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का इतिहास — प्रो. सबिना पॉपरलेन — 154

40 हंगरी और हिंदी — डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा — 157

41 भूटान की संपर्क भाषा हिंदी — प्रो. अ. नटराजन — 159

42 नेपाल में हिंदी की दशा और दिशा — प्रो. मृदुला शर्मा — 161

43 चेक गणराज्य में हिंदी-लेखन — प्रो. डैग्मर मार्कोवा — 164

44 जमैका में हिंदी शिक्षण के नए प्रयोग — प्रो. सीताराम पोद्दार — 166

45 लोक के स्तंभ पर टिका है विश्व हिंदी का महराब — राकेश पांडेय — 169

निवेदन

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं। विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

1

मॉरीशस में हिंदी शिक्षण

डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि

हिंदी के वरिष्ठ सेवक और साहित्यकार डॉ. चिंतामणि का निधन 18 नवंबर, 2009 को हो गया। उनका यह आलेख एक विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में हम प्रकाशित कर रहे हैं ।

(प्रधान संपादक)

यह अनुभव किया जा रहा है कि हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए पूरे विश्व में हिंदी शिक्षण को मजबूत नींव पर खड़ा किया जाना चाहिए। तीसरी सहस्राब्दी के आगमन के साथ ही हिंदी शिक्षण बहुत कुछ विज्ञान और टेक्नोलॉजी से प्रभावित रहेगा। शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन होगा; कंप्यूटर, इंटरनेट आदि आधुनिक उपकरणों का प्रयोग अनिवार्य हो जाएगा। किंतु भाषा, धर्म तथा संस्कृति ऐसे अमोघ शस्त्र हैं, जिनसे भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकेगा। अतः हिंदी शिक्षण को युग की माँग के अनुकूल अपनी भूमिका अदा करनी होगी; अगली सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए उसे समर्थ और सक्षम होना होगा। इस दिशा में विश्व हिंदी परिवार को संगठित होकर योजनाबद्ध कदम उठाने होंगे। मॉरीशस में जो विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई है, उसे विश्व हिंदी परिवार का प्रोत्साहन, समर्थन तथा सहयोग प्राप्त होना चाहिए, ताकि हिंदी को प्रभावी ढंग से हम अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर सकें।

मॉरीशस में हिंदी शिक्षण की वर्तमान स्थिति

मॉरीशस में हिंदी शिक्षण 'बैठका' से लेकर विश्वविद्यालय तक की यात्रा तय कर चुका है। हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य सभा आदि गैर-सरकारी संगठनों ने अपने हिंदी प्रचार के कार्यक्रमों में हिंदी शिक्षण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसी तरह मॉरीशस सरकार ने सभी स्तरों पर हिंदी भाषा के पठन-पाठन के लिए व्यवस्था की है। महात्मा गांधी संस्थान प्राथमिक, माध्यमिक विश्वविद्यालयों के स्तर के लिए हिंदी के पाठ्यक्रम, अध्यापक प्रशिक्षण, पाठ्य-पुस्तक लेखन आदि क्षेत्रों में पिछले तीन दशकों से सक्रिय है।

प्राथमिक हिंदी शिक्षण

पहली बात, जो ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि सरकारी प्राथमिक स्कूलों में जहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच अनिवार्य हैं, वहाँ हिंदी तथा अन्य पूर्वी भाषाएँ वैकल्पिक हैं।

सरकारी प्राथमिक स्कूलों में सन् 1998 में हिंदी शिक्षण की स्थिति इस प्रकार रही :

विद्यालयों की संख्या	254
अध्यापकों की संख्या	690
निरीक्षकों की संख्या	11
विद्यार्थियों की संख्या	49,000

यद्यपि संख्यात्मक दृष्टि से स्थिति संतोषजनक मानी जा सकती है, तथापि गुणवत्ता की दृष्टि से प्राथमिक हिंदी शिक्षण में सुधार की काफी गुंजाइश है। इस बात का संकेत हमें 'शिक्षा महायोजना' में भी मिलता है।

सन् 1991 में प्रकाशित 'शिक्षा महायोजना' में हिंदी तथा अन्य पूर्वी भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए सरकार के प्रयासों तथा भविष्य की योजनाओं का उल्लेख किया गया है :

1. अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से पूर्वी भाषाओं

के शिक्षण में सुधार लाना।

2. शिक्षाक्रम को आज के संदर्भ में और गतिशील बनाना।
3. शिक्षण के उपयुक्त वातावरण के लिए पर्याप्त कक्षाओं का प्रबंध करना तथा समय-सारिणी में इनको उचित स्थान देना।
4. निरीक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, ताकि वे नवीन शिक्षण विधियों से अवगत होकर शिक्षण में गुणवत्ता लाने में सहयोग दे सकें।
5. बच्चों में पठन की आदत डालने के लिए पूरक पुस्तकों का प्रबंध किया जाना।

इसी महायोजना में दक्षता आधारित शिक्षण पर बल देते हुए सी.पी.ई. परीक्षा के माध्यम से गुणवत्ता, समता तथा उत्कृष्टता जैसे उद्देश्यों की संप्राप्ति की बात कही गई है। वैसे सी.पी.ई. में हिंदी विषय को लेकर सफल होनेवाले परीक्षार्थियों की अच्छी-खासी संख्या होती है, किंतु उनमें केवल 20 प्रतिशत ही ऐसे होंगे, जो हिंदी में सामान्य रूप से अपने भावों या विचारों को लिखित या मौखिक रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं। यह विचारणीय है कि छह साल के अध्ययन के बाद बहुत कम विद्यार्थियों को सरल हिंदी में बोलना, पढ़ना या लिखना आता है।

प्राथमिक हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनमें 'हिंदी प्रचारिणी सभा', आर्य सभा, 'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' और 'राजपूत महासभा' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लगभग 300 गैर-सरकारी विद्यालयों में हिंदी की सायंकालीन कक्षाएँ लगती हैं, जिनमें करीबन 600 अध्यापक कार्यरत हैं। आज सभी लोग यह स्वीकारते हैं कि 19वीं सदी में भारतीय मजदूरों ने गाँव-गाँव में बैठका बनाए, जिसके द्वारा हिंदी शिक्षण का बीजारोपण हुआ था। ये भारतीय संस्कृति के केंद्र भी बने। यहाँ रामायण पाठ, भजन-कीर्तन, भगवद्चर्चा के साथ ही हिंदू त्योहारों के मनाने की व्यवस्था की जाती थी। यहाँ हिंदी शिक्षण का प्रारंभ 'राम गति देहू सुमति' से होता था और अध्यापक सेवा-भावना एवं बड़ी लगन से हिंदी पढ़ाते रहे। इस सेवा को मान्यता देते हुए मॉरीशस सरकार आजकल सायंकालीन पाठशालाओं में पढ़ानेवाले प्रत्येक अध्यापक को उसकी शैक्षिक योग्यता के अनुकूल प्रतीकात्मक रूप में 1000 से 2000 रुपए तक भत्ता देती है।

सन् 1976 में मॉरीशस में जब द्वितीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया, तब हिंदी शिक्षण की व्यवस्था उच्चतर माध्यमिक एच.एस.सी. तक की गई थी, और सन् 1993 में जब यहाँ चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ, तब हिंदी की पढ़ाई विश्वविद्यालय तक पहुँच गई। यह हिंदी शिक्षण क्षेत्र की अपूर्व उपलब्धि कही जाएगी। किंतु जब तक सभी स्तरों पर हिंदी शिक्षण की समस्याओं का संतोषजनक हल नहीं हो जाता, तब तक हमें हिंदी भाषा के उत्तरोत्तर उत्थान के लिए प्रयास करते रहने की आवश्यकता है।

पूर्व प्राथमिक स्तर पर हिंदी क्यों नहीं?

खेद का विषय है कि हिंदी पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में नहीं पहुँच पाई है। पूर्व में केवल गैर-सरकारी शिशु पाठशालाएँ थीं, अब तो सरकार की ओर से भी इस प्रकार की पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं। हम जानते हैं कि पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में किसी भाषा-विशेष की शिक्षा नहीं दी जाती है, पर कार्य-कलापों के लिए माध्यम के रूप में क्रियोल या फ्रेंच का प्रयोग हो रहा है।

मेरा यह विचार है कि पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में भी हिंदी को स्थान दिया जाए, और इसी संदर्भ में अध्यापक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। इससे थोड़ा-बहुत हिंदी का वातावरण तैयार हो सकेगा। तीन-चार साल के छोटे बच्चों को यदि हिंदी की प्रार्थना, बालगीत आदि नहीं सुनाए एवं सिखाए गए तो वे परायी भाषा एवं संस्कृति से प्रभावित हो जाएँगे। यदि अब भी हम सावधान हो जाएँ तो शायद बिगड़े काम को थोड़ा-बहुत सुधार सकेंगे।

माध्यमिक हिंदी शिक्षण

यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व काल में दो-चार गैर-सरकारी माध्यमिक

विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण का प्रबंध था, तथापि हिंदी की सुव्यवस्थित रूप में शिक्षण की शुरुआत स्वतंत्रता के बाद सन् 1974 में सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी को स्थान देने पर ही हुई। आज 26 स्टेट सेकेंडरी तथा 75 प्राइवेट सेकेंडरी स्कूलों में फोर्म वन से एस.सी. तक हिंदी की पढ़ाई होती है। कुछ स्कूलों में तो एच.एस.सी. प्रिंसिपल लेवल तक भी हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। माध्यमिक स्तर पर लगभग बीस हजार छात्र हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं और डेढ़ सौ अध्यापक अध्ययन कार्य में लगे हुए हैं। महात्मा गांधी संस्थान का यह प्रयास रहा है कि मॉरीशस में माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण को ठोस नींव पर खड़ा किया जाए। हिंदी माध्यमिक स्कूलों के लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना, संबंधित अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, हिंदी शिक्षण पर वार्षिक विचार-गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना आदि माध्यमिक हिंदी शिक्षण-क्षेत्र में संस्थान का बहुविध योगदान रहा है। संस्थान की ओर से हिंदी शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयास किया जा रहा है।

प्राप्त आँकड़ों से यह सिद्ध होता है कि पिछले दशक में माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ानेवालों की संख्या में वृद्धि हुई है। सन् 1998 में कैंब्रिज स्कूल सर्टिफिकेट एस.सी. परीक्षा में हिंदी विषय को लेकर 2771 छात्रों और हायर स्कूल सर्टिफिकेट एच.एस.सी. परीक्षा में विशेषकर प्रिंसिपल लेवल पर 530 छात्रों ने भाग लिया। कुछ वर्ष पहले एस.सी. में 2000 और एस.एस.सी. में 200 परीक्षार्थी हुआ करते थे।

स्मरण रहे कि वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी माध्यमिक स्तर पर वैकल्पिक विषयों के साथ समानता का स्थान रखती है। एस.एस.सी. परीक्षा में जो परीक्षार्थी हिंदी विषय में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान पर आते हैं, उन्हें भारत सरकार की ओर से उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। हिंदी प्रचारिणी सभा, मानव सेवा निधि आदि संस्थाएँ भी हर वर्ष योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करती हैं।

माध्यमिक हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठनों का भी योगदान रहा है, जिनमें आर्य-सभा और हिंदी प्रचारिणी सभा विशेष उल्लेखनीय हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा हर साल हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की निम्नलिखित परीक्षाओं का आयोजन करती हैपरिचय, प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा प्रथम खंड और उत्तमा द्वितीय खंड। इन परीक्षाओं में प्रतिवर्ष 2000 से ऊपर छात्र भाग लेते हैं। आज मॉरीशस में करीब 20 ऐसे माध्यमिक शिक्षण-केंद्र हैं, जहाँ अंशकालिक रूप में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पाठ्यक्रमानुसार हिंदी भाषा एवं साहित्य के पठन-पाठन का प्रबंध है।

उच्च स्तरीय हिंदी शिक्षण

'महात्मा गांधी संस्थान' ने उच्च स्तर पर भी हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की है। सन् 1988 से हिंदी का एक डिप्लोमा कोर्स चलाया जा रहा है। वैसे संस्थान द्वारा माध्यमिक हिंदी शिक्षकों के लिए पी.जी.सी.ई. डिप्लोमा आदि कोर्स भी चलाए जाते हैं।

सन् 1990 में हिंदी भाषा शिक्षण के क्षेत्र में एक अपूर्व घटना घटी। पहली बार मॉरीशस विश्वविद्यालय के शिक्षाक्रम में हिंदी को स्थान प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी संस्थान के सक्रिय सहयोग से बी.ए. ऑनर्स, हिंदी का त्रिवर्षीय कोर्स कई वर्षों से चला रहा है। इस डिग्री कोर्स के आरंभ हो जाने से यहाँ के छात्रों को हिंदी भाषा तथा साहित्य का गहरा अध्ययन करने का अवसर सुलभ हो गया। आजकल बी.ए. में हिंदी पढ़नेवाले छात्रों की संख्या संतोषजनक है। महात्मा गांधी संस्थान ने एम.ए. हिंदी की शिक्षा भी प्रारंभ कर दिया है।

माध्यमिक हिंदी शिक्षण की समस्याएँ

हिंदी भाषा के शिक्षण तथा उन्नयन के लिए सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक संगठनों को महात्मा गांधी संस्थान के साथ सहयोग करना चाहिए। संस्थान ने अपने अस्तित्व के 25 सालों में न केवल प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर हिंदी शिक्षण की नींव सुदृढ़ की, बल्कि इसे विश्वविद्यालय स्तर तक पहुँचाने का भगीरथ प्रयास भी किया है।

सन् 1976 में मॉरीशस में जब द्वितीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया, तब हिंदी शिक्षण की व्यवस्था उच्चतर माध्यमिक एच.एस.सी. तक की गई थी, और सन् 1993 में जब यहाँ चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ, तब हिंदी की पढ़ाई विश्वविद्यालय तक पहुँच गई। यह हिंदी शिक्षण क्षेत्र की अपूर्व उपलब्धि कही जाएगी। किंतु जब तक सभी स्तरों पर हिंदी शिक्षण की समस्याओं का संतोषजनक हल नहीं हो जाता, तब तक हमें हिंदी भाषा के उत्तरोत्तर उत्थान के लिए प्रयास करते रहने की आवश्यकता है।

माध्यमिक हिंदी भाषा शिक्षण से संबंधित कई समस्याएँ पाई जाती हैं, जैसे-हमारे छात्रों में मौखिक अभिव्यक्ति का अपेक्षित

स्तर का न होना, उनका उच्चारण दोषपूर्ण होना, उनके लेखन में अशुद्धियों का होना, उनके लेखन तथा पठन में प्रायः असंतुलन का होना आदि। अकसर यह देखा गया है कि छात्रों का भाषा पर पर्याप्त अधिकार नहीं होता। वे भूलों को पहचानकर उनके कारणों का पता नहीं लगा सकते। वे व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध, परिमार्जित तथा साहित्यिक भाषा के प्रयोग में असमर्थ होते हैं। उनमें साहित्य को परखने की दृष्टि का विकास नहीं हो पाता है। उन्हें साहित्य के आस्वादन और मूल्यांकन में सहायक उपकरणों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। सरकारी स्तर पर एक राष्ट्रीय शिक्षाक्रम केंद्र की स्थापना हुई है, जहाँ आजकल प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का नवीनीकरण एवं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए हिंदी के भी पैनल कार्यदलों का गठन हुआ है। अतः माध्यमिक स्तर पर गुणात्मक हिंदी शिक्षण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं तथा निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जा रहा है :

1. पाठ्यक्रम आज के संदर्भ में उपयुक्त हो और हमारे छात्रों की आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुकूल हो।
2. नवीन पाठ्यपुस्तकें एवं पूरक पुस्तकें लिखी जाएँ।
3. हर विद्यालय के निजी पुस्तकालयों में हिंदी पुस्तकों एवं संदर्भ ग्रंथों को स्थान मिले।
4. साहित्यिक पत्रिकाओं की व्यवस्था की जाए।
5. माध्यमिक स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण का प्रावधान हो, ताकि अध्यापक बंधु नवीन प्रशिक्षण विधियों से अवगत हो सकें।
6. संगोष्ठी, चर्चा-सभा और वक्तव्य स्पर्धा में हमारे छात्रों को साहित्यिक पत्रिकाएँ उपलब्ध कराना तथा उनमें सौंदर्यानुभूति और सृजनशीलता का विकास करना।
7. छात्रों की आलोचनात्मक दृष्टि के विकास हेतु अध्यापक बंधु मार्गदर्शन प्रदान करें।
8. छात्रों को साहित्यिक पत्रिकाएँ उपलब्ध कराना तथा उनमें सौंदर्यानुभूति और सृजनशीलता का विकास करना।
9. निम्नतर माध्यमिक कक्षाओं की वार्षिक परीक्षाओं में मौखिक परीक्षण का स्थान दिया जाए।
10. दृश्य-श्रव्य साधनों एवं शिक्षण के अन्य आधुनिक साधनों का प्रयोग किया जाए।

इसमें संदेह नहीं कि माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण को विकासोन्मुख स्थिति तक पहुँचाने में स्वैच्छिक संस्थाओं, मॉरीशस सरकार तथा महात्मा गांधी संस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

तीसरी सहस्राब्दी की चुनौतियाँ

तीसरी सहस्राब्दी में विश्व हिंदी परिवार के सदस्यों में आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू करना एक बड़ी चुनौती है।

हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में मॉरीशस अपना अनुभव बाँटना चाहेगा और दूसरे देशों में हुए सफल प्रयोगों से लाभ भी उठाना चाहेगा। उदाहरण के लिए, मॉरीशस ने पिछले कुछ वर्षों से प्राथमिक स्तर पर दक्षता (competence) पर आधारित शिक्षण चालू किया और उसमें हमें सफलता भी मिली है।

पाठ्य-पुस्तक लेखन की दिशा में काफी अच्छा काम हुआ है। एन.सी.सी.आर.डी एक राष्ट्रीय पाठ्य-पुस्तक एकक है, जो प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं के लिए पुस्तकें तैयार करता है। ये पाठ्य-पुस्तकें कई देशों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकेंगी। अब हमारे विद्यार्थी पूरक पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं। वे साल भर में मात्र एक पाठ्य पुस्तक से संतुष्ट नहीं हैं। इस दिशा में पी.टी.ए. परिवार-शिक्षक सभाएँ फंड तैयार करने में लगी हैं, ताकि पूरक पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ स्कूलों में उपलब्ध कराई जा सकें। इधर महात्मा गांधी संस्थान 'रिमझिम' बाल-पत्रिका प्रकाशित कर रहा है। अभी हाल ही में 'हिंदी संगठन' ने एक बाल पुस्तक मेले का आयोजन किया था, जिसके दौरान बच्चों के लिए बहुत सारी पुस्तकें प्रदर्शित की गई थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्कूल, शिक्षक, परिवार तथा हिंदी संस्थाएँ मिलकर हिंदी पुस्तकों के अभाव की पूर्ति कर रहे हैं। यह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है। इक्कीसवीं सदी में हमारे बच्चों के पठन की भूख और बढ़ेगी तथा उस भूख का शमन करना हमारे लिए सचमुच एक चुनौती होगी।

मॉरीशस में एम.ई.एस. ने राष्ट्रीय परीक्षा सी.पी.ई. की अच्छी व्यवस्था कर रखी है। विश्वसनीयता और वैज्ञानिकता की दृष्टि से इसे काफी सफलता मिली है। अफ्रीकी तथा अन्य देश एम.ई.एस. के लंबे अनुभवों से अवश्य लाभ उठा सकेंगे। मूल्यांकन के क्षेत्र में निरंतर जाँच (Continous Assessment) पर बल दिया जाएगा। भाषा के मूल्यांकन में मौखिक परीक्षा का आयोजन अवश्य एक चुनौती बनकर सामने आएगा।

हिंदी भाषा शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रचुर मात्रा म

प्रयोग की अपेक्षा रहेगी। टी.वी. टेप-रिकॉर्डर, कंप्यूटर आदि का प्रयोग प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं में शुरू किया जाएगा। इन मशीनों को कारगर रूप से प्रयोग करने के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य हो जाएगा। शिक्षकों की संख्या में वृद्धि होगी। स्नातक तथा डिप्लोमा कोर्स के छात्रों के लिए ट्यूटोरियल का प्रबंध अनिवार्य हो जाएगा। दूरस्थ शिक्षण की माँग बढ़ती जाएगी। विद्यालयों में पाठ्येतर गतिविधियों का समावेश होगा; जैसे-वाद-विवाद, साहित्यिक प्रतियोगिताएँ, नाटक मंचन आदि। गैर-हिंदुओं या गैर-भारतीयों के लिए हिंदी शिक्षण की अच्छी व्यवस्था होगी।

मॉरीशस कॉलेज ऑफ द एयर (M.C.A) का कार्यक्षेत्र व्यापक बनता जाएगा। प्रतिदिन रेडियो पर तथा टी.वी. के शैक्षिक कार्यक्रमों में हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

अतः हिंदी शिक्षण को हर स्तर पर अधिकाधिक कारगर एवं रोचक बनाने का प्रयास किया जाना-नई सहस्राब्दी का चुनौतीपूर्ण कदम होगा।

निष्कर्ष

यह हम मानते हैं कि यहाँ हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में काफी अच्छा कार्य हुआ है, उसकी कई उपलब्धियाँ सामने आई हैं, किंतु समस्याएँ भी कम नहीं। हिंदी शिक्षण को गतिमान बनाने की दृष्टि से पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री तथा पाठ्य-विधि में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। पाठ्य-पुस्तकों, पूरक पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों, कोशों आदि का अभाव तीसरी दुनिया के हर देश की समस्या है। विश्व की अन्य भाषाओं के कालजयी साहित्य के हिंदी में अनुवाद को बढ़ावा देना होगा।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि विदेशों में हिंदी शिक्षण को कारगर बनाने हेतु भारत को नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। वैश्विक स्तर पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन हो, जिसके माध्यम से हिंदी भाषा शिक्षण के संबंध में नवीन जानकारी हर सदस्य देश को प्राप्त हो। विश्व में हिंदी शिक्षण-सामग्री तथा शिक्षकों की कमी, हिंदी पुस्तकालयों में स्तरीय आलोचनात्मक ग्रंथों का अभाव तथा अन्य बाधाओं को दूर करने की दिशा में विश्व हिंदी परिवार के सदस्यों के बीच सभी स्तरों पर आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू करने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा एवं साहित्य के शिक्षण तथा प्रचार-प्रसार के संदर्भ में एक देश दूसरे देश का सहायक एवं पूरक कैसे बन सकता है, इसके संबंध में हमें तत्काल विचार करना होगा।

Dr. Moonishwarlal Chintamunee
23, Ave. des Manguiers,
Quatre Bornes
Mauritius

कोटि-कोटि कंठों की भाषा,
जन-गण की मुखरित अभिलाषा।
हिंदी है पहचान हमारी,
हिंदी हम सबकी परिभाषा।

-डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

2

राष्ट्रभाषा हिंदी

कैलाशचंद्र भाटिया, मोतीलाल चतुर्वेदी

हिंदी के लिए समय-समय पर अनेक नामों का प्रचलन हुआ; यथा भाषा, भाखा, हिंदवी, हिंदुई, रेख़ता, दक्खिनी, दकनी, खड़ीबोली, हिंदुस्तानी, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, राजभाषा, संघ सरकार की संपर्क भाषा आदि। 'कौरवी' या 'मेरठी' के नाम से पुकारी जानेवाली दिल्ली-मेरठ के आस-पास के क्षेत्र में प्रचलित हिंदी की 'पश्चिमी हिंदी' नामक शाखा की बोली से हमारा अभिप्राय खड़ीबोली से है। यही बोली देवनागरी में लिखे जाने पर राजभाषा के रूप में मानी जाती है। इसके साहित्यिक भाषा के रूप में विकास पर चर्चा करने से पूर्व समीचीन होगा कि 'खड़ीबोली' के संबंध में कुछ समझ लिया जाए।

इसका जन्म शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ और यह पश्चिमी हिंदी की प्रमुख बोली के रूप में जानी-मानी गई। अधिक विशाल क्षेत्र में, प्रयुक्त होने के कारण यह दिल्ली, मेरठ, रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अंबाला तथा पटियाला के कुछ भागों तक फैली है। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम क्षेत्र खड़ीबोली का प्रमुख क्षेत्र था। आज यह खड़ीबोली इन सीमाओं को पार कर चुकी है और भारत तथा भारत के बाहर (भारतीय मूल के निवासियों द्वारा) शिक्षा, साहित्य, सामाजिक व्यवहार और सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में अपनाई जा रही है।

स्पष्ट नाम के साथ 'खड़ीबोली' का अस्तित्व तो बाद में ही आया, जबकि इसका विकास शौरसेनी प्रसूत अन्य बोलियों के साथ ही हो गया था। यह जैन आचार्यों, सिद्धों, नाथपंथियों, चारणों आदि की अभिव्यक्ति-संपदा के रूप में प्रयुक्त होती रही। तदनंतर संत वाणी में मुखरित हुई और परवर्ती सूफियों की भाषा में यत्र-तत्र प्रकट हुई तथा रीतिकाल की रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ भी चमकती-गमकती रही। आधुनिक युग में काव्यभाषा के रूप में इसका बाल्यकाल आरंभ हुआ, जो बीसवीं शती में चारों ओर फैल गया।

स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास

स्वाधीनता संघर्ष का श्रीगणेश सन् 1857 से होता है। यह संघर्ष पूरे नब्बे वर्ष चला। संघर्ष के दौरान विदेशी सरकार ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार कानून बनाकर भारतीय जन-जीवन को प्रभावित किया। प्रतिक्रियास्वरूप नवजागरण आया और विरोध हुआ। बंग-भंग आंदोलन, रॉलेट ऐक्ट का विरोध, साइमन कमीशन बहिष्कार आदि के परिणामस्वरूप देश में एकसूत्रता बढ़ी। इस एकसूत्रता को पुष्ट करने के लिए एक सक्षम अभिव्यक्ति साधन के रूप में हिंदी को अपना राष्ट्रीय कर्तव्य निर्वाह करने का अवसर ही नहीं मिल, वरन् उसने अपना राष्ट्रीय स्वरूप स्थापित किया। हिंदी का अखिल भारतीय रूप राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से निखरा। जनसाधारण से जब कभी कोई हिंदू, सिख, मुसलमान, ईसाई नेता अपनी बात कहना चाहते थे तो बातचीत का माध्यम हिंदी ही होती थी।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में स्वाधीनता संग्राम की ज्योति जगी, संघर्ष तीव्रतर हुआ, स्वदेशी की भावना प्रबल हुई जिससे राष्ट्रीयता को बल मिला। विदेशी वस्तु हो या भाषा, उसके बहिष्कार में राष्ट्रीयता का आभास मिला और राष्ट्रसेवा की गरिमा की अनुभूति हुई। यह राष्ट्रीयता नकारात्मक राष्ट्रीयता न थी, वरन् एक ऐसी अजस्र धारा थी जिसमें ऐतिहासिक और आर्थिक परंपराओं की धाराएँ मिल गईं। राष्ट्रीयता के साथ राजा राममोहन राय, श्री अरविंद, सुब्रह्मण्यम भारती जैसे नाम जुड़े।

उपर्युक्त परिस्थितियों में राष्ट्रभाषा की संकल्पना को, राष्ट्रभाषा-प्रेम को देश-प्रेम की संज्ञा दी जाने लगी थी। स्वामी

दयानंद का उद्घोष इस संदर्भ में कितना सार्थक है, ''भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने को तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाएँ।'' स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों, पुस्तकों एवं साहित्य के प्रकाशनों से तथा पत्राचार के रूप में हिंदी का प्रयोग कर उसको राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने में उल्लेखनीय और प्रेरणादायक प्रयास किए।

उधर 1879 तक संयुक्त प्रांत की अदालतों में हिंदी का प्रवेश आंदोलन तीव्र हो चुका था। कैलॉग की 'हिंदी ग्रामर' में हिंदी को विशाल जनसमूह की भाषा के रूप में स्वीकारा गया। 1880 तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन बन गया। हिंदी के राष्ट्रीय महत्त्व को मानते हुए हैदराबाद में विद्वानों ने हिंदी का समर्थन किया तथा भारतेंदु ने इस आंदोलन को शक्ति प्रदान की। 1882-86 में क्रमशः राजनारायण बोस और भूदेव मुखर्जी व नवीनचंद्र राय ने राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी की उपयोगिता पर बल दिया। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, अनेक पुस्तकों की रचना, हिंदी पाठ्य पुस्तकों का प्रचलन एवं लेखादि ने हिंदी की काफी सेवा की। महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी के अथक प्रयासों के फलस्वरूप तत्कालीन लार्ड मैकडोनल को 18 अप्रैल, 1900 को अदालतों में नागरी लिपि में लिखी हिंदी को मान्यता देने का आदेश निकालना पड़ा। इस संदर्भ में तिलक ने कहा था, ''राष्ट्र संगठन के लिए आज ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे सर्वत्र समझा जा सके। हिंदी राष्ट्रभाषा बन सकती है। मेरी समझ में हिंदी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए, यानी समस्त हिंदुस्तान में बोली जानेवाली भाषा होनी चाहिए।''

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में स्वाधीनता संग्राम की ज्योति जगी, संघर्ष तीव्रतर हुआ, स्वदेशी की भावना प्रबल हुई जिससे राष्ट्रीयता को बल मिला। विदेशी वस्तु हो या भाषा, उसके बहिष्कार में राष्ट्रीयता का आभास मिला और राष्ट्रसेवा की गरिमा की अनुभूति हुई। यह राष्ट्रीयता नकारात्मक राष्ट्रीयता न थी, वरन् एक ऐसी अजस्त्र धारा थी जिसमें ऐतिहासिक और आर्थिक परंपराओं की धाराएँ मिल गईं। राष्ट्रीयता के साथ राजा राममोहन राय, श्री अरविंद, सुब्रह्मण्यम भारती जैसे नाम जुड़े।

स्वाधीनता संघर्ष और हिंदी का उद्घोष

''देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है देश भर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन होना। अगर आज हिंदी मान ली गई है तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण। वह किसी प्रांत विशेष की भाषा नहीं, बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है।''

-सुभाषचंद्र बोस

हिंदी की सेवा के लिए 'पंजाब केसरी' का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने मालवीय जी के साथ सहयोग करके, उर्दू-हिंदी विवाद में हिंदी का समर्थन करके, शिक्षा क्षेत्र में हिंदी को प्रवेश दिलाकर, डी.ए.वी. विद्यालयों की स्थापना कर अनेक प्रकार से हिंदी की सेवा की। वह लाला लाजपतराय ही थे जिन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन के मंच से सर्वप्रथम हिंदी में भाषण देकर हिंदी को राष्ट्रभाषा की दृष्टि से सक्षम ठहराया। भारत के संविधान निर्माताओं में अग्रणी कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कहा था, ''भारत के भविष्य का निर्माण राष्ट्रभाषा भारती (हिंदी) के उद्भव और विकास के साथ संबद्ध है।'' उन्होंने यह माना था कि अंग्रेजी का स्थान हिंदी ही ले सकती है।

हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा

''अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब अंग्रेजी का अंत हो जाए तो फिर उसके स्थान पर समस्त भारतवर्ष के लिए एक सामान्य भाषा होना आवश्यक है। विभिन्न प्रांतीय भाषाओं का अपना प्राचीन इतिहास और साहित्य है, अतः उनकी स्थिति अक्षुण्ण रहनी भी परमावश्यक है। यह देखते हुए भी हमें अंतरप्रांतीय संपर्क के लिए एक भाषा चुननी ही पड़ेगी। प्रजातांत्रिक देश में अधिकतम जनसमुदाय द्वारा बोली और समझी जानेवाली भाषा ही यह कार्य संपादन कर सकती है। इस दृष्टि से हिंदी इस कसौटी पर खरी उतरती है। हिंदी संस्कृत के निकटतम

है। इसमें हमारी प्राचीनतम संस्कृति भी सुरक्षित है और यह सबसे अधिक भाग में भारतीयों द्वारा बोली, समझी और लिखी-पढ़ी जाती है। इसमें प्रत्येक प्रकार के भाव व्यक्त करने की क्षमता है।''

अनंत शयनम् आयंगर

अंग्रेजी कायम रखना देश के साथ द्रोह है

''हिंदी में सात लाख के करीब शब्द हैं, जबकि अंग्रेजी में अढ़ाई लाख के आस-पास। इसके अलावा, अंग्रेजी की शब्द गढ़ने की शक्ति नष्ट हो चुकी है, जबकि हिंदी को अभी अपनी जवानी ही नहीं चढ़ी। संसार की सबसे धनी भाषा है हिंदी; लेकिन बरतनों की भाँति इन शब्दों पर धरे-धरे काई जम गई है। ये बरतन मँजने पर ही चमकेंगे, किसी रसायनशाला के अनुसंधान से नहीं। जब काई जमे हुए ऊबड़-खाबड़ शब्दों का इस्तेमाल विश्वविद्यालय, न्यायालय, विधायिकाओं वगैरह में होने लगेगा, तब ये चमकेंगे और इनका अर्थ जमेगा। हो सकता है कि कुछ समय के लिए गड़बड़ी और अव्यवस्था हो; लेकिन वह हर हालत में होगी जब कभी अंग्रेजी से हिंदी का पलटाव किया जाएगा, चाहे जितने असंख्य शब्दकोश क्यों न बना लिये गए हों।''

डॉ. राममनोहर लोहिया

हिंदी वैसे तो संतों, महात्माओं, साधुओं, फकीरों, व्यापारियों, सैनिकों तथा तीर्थयात्रियों द्वारा दीर्घकाल से भारत की आत्मा की अभिव्यक्ति करती रही थी और इसे राष्ट्रव्यापी स्थान एवं महत्त्व प्राप्त था; लेकिन उन्नीसवीं शती में भाव प्रकाशन के लिए हिंदी गद्य का उपयोग होने लगा। विनोबा भावे ने तो मातृभाषा और राजभाषा को भारत माता की दो आँखों की संज्ञा दी थी।

राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने नाटकों और कविताओं में विदेशी शासन पर गहरी चोट की। 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' सामने आई। पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' द्वारा उग्र राष्ट्रीयता का शंखनाद किया। बालमुकुंद गुप्त ने 'शिवशंभु का चिट्ठा' खोला तो शासन तिलमिला उठा। श्रीधर पाठक का राष्ट्रीय गीत और 'भारत चेतहु नीर निवारौ' इस काल की देन हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए इन संस्थाओं ने उल्लेखनीय कार्य किया: नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिंदुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; हिंदी विद्यापीठ, बंबई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, बंगलौर। धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ भी इस प्रचार-प्रसार में अग्रणी थीं: ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, राधास्वामी संप्रदाय विशेष उल्लेखनीय हैं। राजनीतिक संस्थाओं में कांग्रेस का नाम सबसे आगे है। इन संस्थाओं के अलावा इनके कार्यकर्ताओं और संगठनकर्ताओं ने राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रव्यापी रूप देने में, अखिल भारतीय प्रयोग, प्रचार-प्रसार में सहायता की। इन अग्रणी नेताओं में से प्रमुख हैं: महर्षि दयानंद, स्वामी गणेशदत्त, गांधीजी, सुभाषचंद्र बोस, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, पं. मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, काका साहब कालेलकर, सेठ गोविंददास।

बीसवीं शताब्दी में मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' राष्ट्रीयता की पाठ्य पुस्तक के रूप में अवतरित हो चुकी थी। प्रसाद के नाटक के गीतों में राष्ट्रभाषा हिंदी का राष्ट्रीय रूप स्पष्टता से परिलक्षित हुआ। गोकुल चंद शर्मा के 'गांधी गौरव', 'तपस्वी तिलक' में राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। तत्कालीन कवियों ने अनेक राष्ट्रीय कविताएँ लिखकर राष्ट्रीय आंदोलन को निखारा। इस प्रकार हिंदी तत्कालीन परिस्थितियों में प्रकाशनों के माध्यम से राष्ट्र संबंधी विचारों के साथ आगे बढ़ती रही। यह काल था राष्ट्रभाषा हिंदी का आरंभिक काल। जिस प्रकार आज की खड़ीबोली आज से शताब्दियों पूर्व बिना नाम और ज्ञान के साहित्य-सेवा करती रही, लेकिन उसका नामकरण संस्कार बाद में हुआ, उसी प्रकार आज की संवैधानिक हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में वर्षों से पनपती रही, मगर नामकरण बाद में हुआ।

प्रथम महायुद्ध के बाद स्वाधीनता की संकल्पना और आकांक्षा स्पष्ट तथा प्रबलतर हुई। राष्ट्रभाषा हिंदी ने इसका जन-जन में प्रसारण किया। साहित्य में द्विवेदी युग और छायावादी युग के संधिकाल में राष्ट्रीयता का उद्घोष गुप्तबंधु, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने किया। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए', 'कोकिल बोलो रे', 'मुझे तोड़ लेना वनमाली' और बाद में 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो' राष्ट्रभाषा के विकास में आगे-पीछे के अनन्य सोपान हैं।

इस प्रकार राजनीतिक राष्ट्रीयता के विकास के साथ

राष्ट्रभाषा की कल्पना राष्ट्रीय एकता के प्रतीकों के रूप में पल्लवित होने लगी। राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। भिन्न भाषा-भाषी राष्ट्र के सदस्यों के भावों के आदान-प्रदान के लिए एक भाषा की परिकल्पना मूर्त रूप धारण करने लगी। यही नहीं, भावनात्मक एकता के लिए भाषा की एकता का विचार पुष्ट हुआ, और तब हिंदी अपनी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रहण की गई।

सन् 1918 में इंदौर के आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन में अध्यक्षता करते हुए महात्मा गांधी ने कहा, ''मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए। आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए।'' इससे पूर्व सन् 1917 में गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में गांधीजी ने हिंदी के प्रति कहा था, ''राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में 'एस्पेरेंटो' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।'' गांधीजी ने यह निर्णय दक्षिण अफ्रीका से लौटने के दो-तीन वर्षों में ही कर लिया कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।

जैसाकि सर्वविदित है, तिलक, गोखले और गांधी के उदय के साथ भारतीय राजनीति में पर्याप्त हलचल हुई। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ नवीन कल्पना और भावना के स्रोत उन्मुक्त हुए। पुस्तकों के रूप में स्वतंत्र रचनाएँ आईं; समाचार-पत्रों में, मासिक पत्रों में, अनेक अग्रलेखों और संपादकीयों ने राजनीति और हिंदी के चोली-दामन के साथ को महसूस किया और इसका डटकर समर्थन किया। यह वह समय था जब हिंदी का परिनिष्ठित रूप हमारे सामने निखरने लगा था। हिंदी का व्यवहार प्रायः देश के एक कोने से दूसरे कोने तक होने लगा था। देश की अधिकांश जनता उसे हृदयंगम करने लगी थी और तदनुरूप हिंदी का साहित्य भंडार लहलहा रहा था, व्याकरण में सरलता थी; पाचनशक्ति के कारण अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ रही थी और हिंदी देश की संस्कृति, राजनीति और आंदोलन को तथा उनसे संबंधित विचारों को मुखरित करने में समर्थ थी, जिसके द्वारा देश की भावात्मक एकता को बल मिला। यही कारण था कि नई चेतना के नए वातावरण में इन्हीं कसौटियों पर कसते हुए नए शब्द की परिकल्पना के साथ हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' कहकर संबोधित किया जाने लगा। हिंदी भाषा के संदर्भ में राष्ट्रभाषा का पर्याय स्वाधीनता संघर्ष की देन है। राष्ट्रीय आंदोलन ने हिंदी का प्रचार-प्रसार किया और यह भाषा राष्ट्रभाषा का सही पर्याय बन गई। इसके (हिंदी) नाम को लगाकर संस्थाओं, समितियों का नामकरण होने लगा। हिंदी तथा अहिंदीभाषी लोग हिंदी को राष्ट्रभाषा कहकर एक राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति करते थे।

1935 में हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने बताया कि असम में बाबा राघव दास, उत्कल में गोपबंधु चौधरी अपनी धर्मपत्नी के साथ, बंगाल में रामानंद चटर्जी किस प्रकार हिंदी-सेवा में लगे हैं। यहीं नहीं, प्रारंभ में केवल अंग्रेजी में प्रकाशित 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' जैसे पत्रों को हिंदी और गुजराती में प्रकाशित करवाया। गांधीजी ने 1920 में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। यही नहीं, बेलगाँव के कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी का जोर था कि अदालतों तथा विधानसभाओं में प्रांतीय भाषाओं और हिंदी का प्रयोग किया जाए। सन् 1935 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में गांधीजी ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के समान एक अन्य सभा के गठन पर अपने विचार प्रकट किए, जो अन्य क्षेत्रों में हिंदी प्रचार का काम कर सके। सन् 1936 में हिंदी प्रचार समिति के मंच से यह घोषणा गांधीजी की ही थी, ''अंग्रेजी का इससे आगे बढ़ना मैं असंभव समझता हूँ, चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाए। अगर हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है; क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता।'' 'भारत छोड़ो' का नारा बुलंद करने से लगभग एक वर्ष पूर्व गांधीजी ने देश के रचनात्मक कार्यों में हिंदी प्रचार को भी शामिल किया। कांग्रेस आंदोलन का उद्घोष हिंदी में था। इस उद्घोष में दक्षिण भी पीछे नहीं रहा। दक्षिण में हिंदी ने राष्ट्रीय निर्माण की भूमिका निभाई। इसमें सक्रिय थेः सी.पी. रामास्वामी अय्यर, डॉ. ऐनी बेसेंट, टी.आर. वेंकटराम शास्त्री, एन. सुंदरय्या आदि।

हिंदी का भारत व्यापी प्रचार-प्रसार

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राज्यों में भी हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में अविरल प्रवाह बना रहा। राष्ट्रीय चेतना के बाल्यकाल में हिंदी प्रचार के लिए असम में स्व. श्यामनाथ शर्मा का नाम सर्वप्रथम आता है, जिन्होंने हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था के साथ साहित्यिक विचार-विनिमय का भी श्रीगणेश किया। स्व. भुवनचंद्र

गांधी ने 'असम पॉलिटेक्निक इंस्टीट्यूट' में हिंदी शिक्षा का प्रारंभ किया। हिंदी के प्रति रुचि का बड़ा सुंदर उदाहरण तरुण राम फुकन का सन् 1926 का मौलाना शौकत अली के भाषण का असमिया अनुवाद है। बाबा राघवदास का उल्लेख हिंदी सेवाओं के प्रति किया ही जा चुका है। इसी कड़ी में पीतांबर देव गोस्वामी के सभापतित्व में प्रांतीय हिंदी प्रचार समिति का गठन हुआ और कृष्णनाथ शर्मा, शिवसिंहासन मिश्र, सूर्यवंश मिश्र, अंबिका प्रसाद त्रिपाठी, ध्यानदास आदि ने हिंदी प्रचार कार्य किया। असम हिंदी प्रचार समिति स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राष्ट्रभाषा हिंदी के कार्य के लिए आगे आई, जो विकसित होकर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के रूप में अवतरित हुई। इसके प्रतिष्ठापक अध्यक्ष गोपीनाथ बारदोलई की हिंदी सेवाएँ प्रेरणादायक हैं तथा डॉ. हरिकृष्ण दास, रमेशचंद्र, शीलवती देवी, नीलमणि फुकन, भुवनचंद्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिंदी-असमिया साहित्य परिषद्, जिसके साथ स्व. यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव का नाम जुड़ा है, असम के प्रमुख नगरों में हिंदी प्रचार का सशक्त साधन तो थी ही, हिंदी-शिक्षण की प्रबल उद्घोषक भी थी। विविध सोपानों में विभिन्न व्यक्तियों और संस्थाओं ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्न जारी रखे। इन प्रयत्नों को बल मिला गांधीजी, काका कालेलकर, मोटूरि सत्यनारायण, दादा धर्माधिकारी, श्रीमन्नारायण, बाबा राघवदास के सत्प्रयासों और आशीर्वाद से।

सुदूर कर्नाटक भी स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राष्ट्रभाषा की सेवा में पीछे नहीं रहा। कांग्रेस अधिवेशनों में इस निमित्त काफी सहयोग मिला। हिंदी प्रचारकों ने हिंदी के प्रसार के लिए वातावरण बनाने में काफी सहायता की। गांधीजी द्वारा संबोधित बेलगाँव अधिवेशन हो या प्रथम अखिल कर्नाटक हिंदी प्रचार सम्मेलन अथवा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के नामकरण का विचार--ये सभी वे सूत्र थे जिन्होंने कर्नाटक ही नहीं, वरन् समस्त दक्षिण में हिंदी का सूत्रपात किया।

असम से चलकर हम जब जगन्नाथ धाम में पदार्पण करते हैं तो देखते हैं कि जगन्नाथजी के संरक्षण में सन् 1930 से हिंदी का श्रीगणेश कांग्रेस अधिवेशन के निमित्त हुआ। हिंदी शिक्षण मंदिर स्थापित हुए। इसके बाद 'उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा' का जन्म हुआ। इसमें तत्कालीन व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग रहा, जनता का स्नेह मिला और हिंदी परीक्षाओं की शुरुआत हुई। पुरी में भी हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई और बाद में हिंदी शिक्षण केंद्रों ने हिंदी सेवा का कार्य आरंभ किया। जब कांग्रेस सरकार आई, तब हिंदी के काम में पर्याप्त प्रगति हुई। यह प्रोत्साहन कांग्रेस सरकारों से बराबर मिलता रहा। उड़ीसा में भी स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान इस संघर्ष के साथ ही हिंदी का प्रचार-प्रसार भी होता रहा।

संघर्षशील बंगाल हिंदी के प्रचार-प्रसार में भी अग्रणी रहा। राजनीतिक संघर्ष से पूर्व राजा राममोहन राय ने 'वेदांतसार' का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत कर बंगाल को हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी रखा। 'बृहत् समाज' की स्थापना और हिंदी में 'बंगदूत' का प्रकाशन उल्लेखनीय कड़ियाँ हैं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'बेताल पचीसी' का बँगला अनुवाद करवाकर हिंदी को जनप्रिय बनाया और जब कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तो हिंदी को सर्वप्रथम विश्वविद्यालयीन प्रतिष्ठा मिली। 'कविवचन सुधा' के हिंदी लेखों ने हिंदी को बल प्रदान किया। आचार्य सेन के बहुआयामी प्रयासों में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का कार्यक्रम सर्वप्रमुख था। वह हिंदी को एकरूपता का महामंत्र मानते थे। वास्तव में, जैसे राष्ट्रीयता की भावना का जन्म राजा राममोहन राय के साथ बंगाल से हुआ, उसी प्रकार हिंदी को राष्ट्रभाषीय रूप देने का श्रेय भी बंगाल को जाता है। इसके लिए हिंदी के प्रति रुचि जागरण, देवनागरी की सेवा और हिंदी का प्रसार, अनेक पत्रों का संपादन, पुस्तकों में हिंदी पाठ्यक्रमों का समावेश, कचहरी में हिंदी का प्रगामी प्रयोग, महिला रुचि की पत्रिका 'सुगृहिणी' का प्रकाशन और हिंदी सेवा ने एक पहिए पर नहीं, वरन् दोनों पहियों पर हिंदी के रथ को आगे बढ़ाया। यही नहीं, हिंदी साहित्य की समृद्धि में योगदान, बँगला साहित्य का हिंदी में अनुवाद, हिंदी में मौलिक कहानियों की रचना, बंकिम बाबू और रवींद्र बाबू का हिंदी भाषा साहित्य के उन्नयन में सक्रिय योगदान, बँगला पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार, बंगाली विद्वानों की साहित्यिक प्रतिष्ठा, हिंदी रचनाओं का बँगला में प्रसारण, बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बंगीय हिंदी परिषद् जैसी संस्थाओं के जन्म ने राष्ट्रभाषा हिंदी को आगे बढ़ाने में मदद की। इस राष्ट्रीय कार्य में संलग्न थे असंख्य बंगपुत्र, जिन्होंने अपनी प्रतिभा, देशप्रेम से अपने साहित्य के साथ-ही-साथ हिंदी के साहित्य को भी भरा।

दक्षिण भारत के राज्यों में आंध्र प्रदेश का हिंदी के संदर्भ में प्रमुख स्थान है। तीर्थयात्रियों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों के आवागमन से तो हिंदी पनप ही रही थी, मगर इसकी गति में तेजी लाने का श्रेय आर्यसमाज और गांधीजी को जाता है। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की आंध्र प्रदेश शाखा की स्थापना, जातीय कलाशाला और महाविद्यालयों में हिंदी का प्रवेश, कांग्रेस का अधिवेशन, नगरपालिका के स्कूलों में हिंदी का अध्ययन, कांग्रेस नेताओं का हृदय से हिंदी को सहयोग एवं आशीर्वाद, उत्तर भारतीयों (प्राध्यापकों) का प्रशिक्षण के लिए वहाँ जाना, विभिन्न राजनीतिक पार्टियों का योगदान, आंध्र राष्ट्र हिंदी प्रचार संघ का विकास, साहित्यिक प्रकाशन, लेखकों का आदान-प्रदान, आंध्र के अनेक मूर्धन्य विद्वानों की हिंदी सेवा में सक्रिय रुचि, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार में गति लाना आदि ऐसे कदम हैं जिनसे आंध्र प्रदेश में मुख्यमंत्री, मंत्री से लेकर विद्वानों और जन-जन में हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ा।

सुदूर कर्नाटक भी स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राष्ट्रभाषा की सेवा में पीछे नहीं रहा। कांग्रेस अधिवेशनों में इस निमित्त काफी सहयोग मिला। हिंदी प्रचारकों ने हिंदी के प्रसार के लिए वातावरण बनाने में काफी सहायता की। गांधीजी द्वारा संबोधित बेलगाँव अधिवेशन हो या प्रथम अखिल कर्नाटक हिंदी प्रचार सम्मेलन अथवा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के नामकरण का विचारये सभी वे सूत्र थे जिन्होंने कर्नाटक ही नहीं, वरन् समस्त दक्षिण में हिंदी का सूत्रपात किया। अखिल कर्नाटक हिंदी प्रचारक सम्मेलनों ने वातावरण निर्माण के साथ प्रचार तो किया ही, बड़े-बड़े विद्वानों को मंच प्रदान कर हिंदी को आशीर्वाद देने का कार्य किया। इन सम्मेलनों के प्रयासस्वरूप कर्नाटक के प्रमुख नगरों में, गाँवों में हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ, पाठ्यक्रमों में हिंदी आई। बाद में हिंदी प्रचारक विद्यालय ने हिंदी प्राध्यापकों को तैयार कर हिंदी प्रचार की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। कर्नाटक हिंदी शिक्षक विद्यालय ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिंदी के प्रचार को बढ़ाया, हिंदी के अध्यापकों को पनपाया और परीक्षाओं में हिंदी को स्थान दिलाकर कर्नाटक को भाषाई राष्ट्रीयधारा के साथ जोड़ा।

केरल में हिंदी प्रचार का कार्य मद्रास सभा द्वारा आरंभ किया गया। 'एक चना भी भाड़ फोड़ सकता है', यदि इस बात को सिद्ध करना है तो केरल में मद्रास सभा द्वारा प्रेषित उस प्रचारक (के.एम. दामोदरन उण्णि) को नमन करना चाहिए, जिसने केंद्र-केंद्र पर हिंदी का अलख जगाया। उनके प्रयासों से अधिकांश केंद्र हिंदी प्रचार के लिए स्वावलंबी बने। अनेक छात्र मद्रास के हिंदी प्रचारक विद्यालय के छात्र बने। इन सबके प्रयासस्वरूप स्कूल और कॉलेजों में हिंदी प्रवेश पाने लगी। हिंदी वैकल्पिक भाषा के रूप में स्थान पा गई। इसमें स्वतंत्रता आंदोलन की भावना ने काम किया। फिर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास ने एर्णाकुलम् में प्रादेशिक शाखा की स्थापना कर हिंदी के प्रचार को बढ़ाया। फिर और भी शाखाएँ खुलीं, हिंदी केंद्र खुले और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अनेक विद्वान् आगे आए। धीरे-धीरे हिंदी को अतिरिक्त भाषा के रूप में मान्यता मिली और दो महिला विद्यालय खोले गए, जहाँ हिंदी पढ़ाने का काम भी प्रारंभ हुआ। इस प्रकार महिला वर्ग में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ। तदंतर एर्णाकुलम् में केरल प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा का गठन हुआ, तब हिंदी प्रचार में गति आ गई। केरल में हिंदी संबंधी मेलों/आयोजनों/सम्मेलनों आदि ने हिंदी प्रचार को प्रोत्साहन दिया। इसमें केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम् का अभूतपूर्व योगदान है।

तमिलनाडु में राजनीति कुछ भी कहती हो, मगर दक्षिण में हिंदी के प्रचार-प्रसार का इतिहास तमिलनाडु के प्रयासों का प्रतिफल है। देवदास गांधी की सन् 1918 की मद्रास की सरस्वती यात्रा से हिंदी की यात्रा शुरू होती है। हिंदी प्रचार सभा की स्थापना, हिंदी वर्गों का उद्घाटन, दाक्षिणात्यों की हिंदी प्रशिक्षण के लिए प्रयाग-यात्रा, हिंदी प्रचारकों का दक्षिण आगमन और हिंदी प्रचार प्रेस की स्थापना ऐसे प्रारंभिक कदम थे जिनके कारण तमिलनाडु में सन् 1922 तक हिंदी का काफी प्रचार हुआ और हुआ 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' का अवतरण। सलेम से यह कार्य आरंभ होकर अन्य स्थलों पर प्रोत्साहन पाने लगा। ईरोड का प्रथम हिंदी प्रचारक विद्यालय अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। सभा के सद्प्रयासों से पाठ्य पुस्तकों की छपाई, हिंदी संबंधी पुस्तकों की छपाई, अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिनसे हिंदी का प्रचार हुआ। उधर पत्रिकाओं के प्रकाशन ने भी प्रचार को गति प्रदान की। सभा के तत्त्वावधान में परीक्षाओं का आयोजन प्रारंभ किया गया। सन् 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडल के समय में हिंदी प्रचार में अभूतपूर्व प्रगति हुई। मद्रास विश्वविद्यालय में हिंदी परीक्षाओं के देने का प्रावधान हुआ। प्रेक्षकों के अनुसार, सन् 1937 के बाद का समय तमिलनाडु ही के लिए क्या, संपूर्ण दक्षिण के लिए हिंदी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था। इसी अवधि में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन संपन्न हुआ। कांग्रेस ने समितियों की कार्यवाही अंग्रेजी में न करने पर

विचार किया। इसी बीच सभा का प्रकाशन साहित्य गुणात्मक और संख्यात्मक रूप में बढ़ा। प्रादेशिक भाषाओं और हिंदी में परस्पर आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त हुआ।

यदि बापू के जन्म-प्रदेश पर नजर डालें तो देखते हैं कि मराठी साहित्य परिषद् और गुजराती साहित्य परिषद् में राष्ट्रभाषा के प्रति सद्भावना अभिव्यक्त करते हुए हिंदी सीखने की आवश्यकता पर विचार किया गया। ठाकरसी महिला विद्यापीठ द्वारा शिक्षा माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को स्वीकारना भाषा प्रोत्साहन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। राष्ट्रीय विद्यापीठों में हिंदी की पढ़ाई अनिवार्य की गई। यही नहीं, गुजरात के आश्रमों में भी हिंदी एक आवश्यक विषय के रूप में आगे बढ़ी। गांधीजी के प्रयासों में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था। बाद में हिंदुस्तानी प्रचार सभा को जन्म दिया गया। परीक्षाओं की व्यवस्था की गई। हिंदी प्रचार के लिए सन् 1936 से ही हिंदी कक्षाएँ प्रारंभ हो गई थीं। मई 1936 में ही सरदार पटेल ने हिंदी वर्ग का श्रीगणेश किया और 'काठियावाड़ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' नामक संस्था की स्थापना की गई। उधर सौराष्ट्र में विभिन्न संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाने लगीं। गुजरात में गांधी और पटेल के सद्प्रयासों से राष्ट्रभाषा का समुचित प्रचार हुआ।

पंजाब में हिंदी कवियों और विद्वानों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान किया। इनके अलावा सिख संप्रदाय के गुरु हिंदी के पक्षधर रहे। बाद में सनातन धर्म का आंदोलन प्रमुखतः हिंदी माध्यम से ही था। सनातन धर्म सभा ने रात्रि पाठशालाओं, स्कूलों, कॉलेजों के रूप में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। आर्यसमाज की स्थापना कर स्वामी दयानंद इन सबमें अग्रणी थे। जन्म से गुजराती ऋषि ने हिंदी के राष्ट्रीय महत्त्व को पहचानते हुए राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। राष्ट्रीय जागरण का संदेश राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से फैल गया। इनके (आर्यसमाज) द्वारा स्थापित स्कूलों/कॉलेजों में हिंदी की प्रधानता रही। धार्मिक आधार पाकर भाषा का प्रवाह महिलाओं की ओर भी गया। लाला लाजपतराय जैसे राष्ट्रीयख्याति के नेताओं ने स्वयं हिंदी सीखकर राष्ट्र के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया। यही नहीं, हिंदी में स्वाधीनता संघर्ष की गतिविधियाँ संचालित की जाती थीं। नेता अपने भाषण, वार्त्ता, अपनी चर्चा हिंदी में करते थे। प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में सक्रिय सहयोग दिया।

राष्ट्रभाषा के प्रचार की दिशा में महाराष्ट्र की उल्लेखनीय भूमिका रही है। दक्षिण में हिंदी प्रचार के साथ-ही-साथ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, हिंदी प्रचार समिति, महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति/महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, वर्धा समिति, राष्ट्रभाषा सभा, बंबई हिंदी विद्यापीठ, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, हिंदुस्तानी सेवादल, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे, बंबई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बंबई, हिंदी शिक्षक विद्यालय, हिंदी महाविद्यालय, बंबई, हिंदी सभा, बंबई, भारतीय विद्यापीठ, बंबई जैसी अनेक संस्थाओं और इन संस्थाओं से संबंधित विद्वानों तथा नेताओं ने राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नयन में उल्लेखनीय कार्य किया। यही नहीं, मराठी भाषी हिंदी लेखकों ने हिंदी की तन-मन-धन से सेवा की, जिनमें प्रचारक, पत्रकार, साहित्यकार सभी थे। इनमें पुरानी और नई पीढ़ी के व्यक्ति सम्मिलित रहे। यह उन लोगों की हिंदी सेवा का ही सुपरिणाम है कि महाराष्ट्र में हिंदी के प्रचार में हिंदी की सभी विधाओं की पुष्टि हुई और स्वतंत्रता संघर्ष में विचारों की जो देशव्यापी प्रेषणीयता हुई, उसका माध्यम हिंदी ही थी। हिंदी विषय, हिंदी माध्यम, हिंदी परीक्षा, हिंदी प्रचारक, हिंदी विद्वान्-यहाँ तक कि 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की कल्पना और राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को प्रश्रय यदि कहीं मिला तो वह महाराष्ट्र की भूमि में ही मिला। वहीं से राष्ट्रभाषा नहीं, वरन् विश्वभाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने का अंकुरण हुआ। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना वर्धा में हो चुकी है। इस प्रकार महाराष्ट्र का योगदान ऐतिहासिक है।

उपर्युक्त पंक्तियों से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता संघर्ष की तीव्रता के साथ-साथ हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ा। देश के प्रत्येक राज्य में, प्रत्येक प्रदेश में वहाँ की जनता ने सक्रिय सहयोग दिया। हिंदीभाषी राज्यों में तो हिंदी को बढ़ना ही था, हिंदीतरभाषी राज्यों में स्व और राष्ट्र की भावना से प्रेरित होकर हिंदी के प्रचार-प्रसार में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, वरन् सबने एक कंठ से हिंदी को राष्ट्रभाषा/संपर्क भाषा के रूप में ग्रहण कर यथासंभव उसको आगे बढ़ाया। उसकी संपुष्टि राष्ट्रनायकों ने हिंदी को संविधान में मान्यता दिलाकर की।

(डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया तथा श्री मोतीलाल चतुर्वेदी की पुस्तक 'हिंदी भाषा : विकास और स्वरूप', प्रकाशक : ग्रंथ अकादमी से साभार।)

3

फीजी में हिंदी
स्थिति और संभावनाएँ

डॉ. विमलेश कांति वर्मा

दुनिया के नक्शे पर एक छोटा बिंदु, जिसे वहाँ भारतीय 'रमणीक द्वीप' कहते हैं, जहाँ तुलसीदास द्वारा लिखित 'रामचरितमानस' को 'रामायण महरानी' कहकर पूजा जाता है, जहाँ देश की आधी से अधिक जनता हिंदी बोलती है और लगभग सारा देश हिंदी समझता है, जहाँ भारतीय अच्छे-अच्छे पदों पर कार्यरत हैं और उनकी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा है, जहाँ प्रकृति की सुरम्य स्थली है-वह देश भारत से हजारों मील दूर है। उसके लिए लंबी हवाई यात्रा करनी पड़ती है, वहाँ की धरती आपका मन मोह लेगी। उस देश का नाम आप जानते हैं? वह फीजी देश है। प्रशांत महासागर का एक सुरम्य द्वीप! दूर तक फैले हुए सागर की ऊँची-ऊँची लहरें, शस्य श्यामला पहाड़ियों की हरीतिमा, सैकड़ों लाल, नीले, पीले रंग के फूल, षोडशी के मान-सा क्षण-क्षण बदलनेवाला मौसम, कभी तेज धूप तो कभी रिमझिम पानी-फीजी की विशेषताएँ हैं।

फीजी में भारतीयों का आगमन शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत गन्ने के खेतों में मजदूर के रूप में काम करने के लिए ब्रिटिश सत्ता के आदेश के अधीन 1879 ई. से प्रारंभ होता है, जब ब्रिटिश एजेंटों ने पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोले-भाले भारतीयों को बहला फुसलाकर तथा सुनहरे भविष्य का सपना दिखाकर फीजी के 'लेवनीदास' नामक जहाज पर उन्हें बैठाकर रवाना कर दिया था। यह सबकुछ 1916 ई. तक चलता रहा, जब तक कि यह प्रथा बंद नहीं हुई। 38 वर्षों में लगभग 61,000 भारतीय मजदूर फीजी पहुँच चुके थे। इन मजदूरों को 'गिरमिटिया' नाम दिया गया, जो 'ऐग्रीमेंट' का अपभ्रंश था। ये भारतीय फीजी पहुँचे तो थे मजदूर के रूप में, किंतु अपनी लगन, अपने परिश्रम से इन्होंने फीजी को सजाया, सँवारा और संपन्न किया। आज इन गिरमिटियों की तीसरी-चौथी पीढ़ी है, जो सुशिक्षित है, संपन्न है और सामाजिक दृष्टि से सुप्रतिष्ठित भी है।

फीजी एक बहुजातीय देश है। जहाँ भारतीय, काईवीती, जो मूल फीजियन निवासी हैं, ब्रिटिश, ऑस्ट्रेलियन, न्यूजीलैंडर तथा टोंगा, रोटुमा आदि कई जातियों के लोग निवास करते हैं। विभिन्न देशों की विभिन्न संस्कृतियों तथा परंपराओं ने देश को बहुरंगी और आकर्षक बना दिया है। यहाँ हर जाति का, हर धर्म का, हर भाषा का सम्मान है।

जो भारतीय मजदूर फीजी गए, उनमें अधिकांश संख्या हिंदी प्रदेश के भारतीयों की था, जो अवधी या भोजपुरी भाषा का प्रयोग करते थे। कालांतर में गुजरात, पंजाब, मद्रास आदि अन्य कई प्रांतों से भी भारतीय फीजी पहुँचे, जिनकी भाषाएँ अलग-अलग थीं। वे अपनी भाषाओं का प्रयोग भी करते थे, किंतु चूँकि अधिकांश भारतीय जो शर्तबंदी में गए थे, प्रधानतः किसान थे, गन्ने के खेतों में काम करते थे और उत्तर प्रदेश या बिहार के थे, वे हिंदी का ही व्यवहार करते थे। इसलिए भारतीयों के मध्य आपसी वार्त्तालाप में हिंदी को ही प्रधानता मिली। फीजी में हिंदी का उदय तथा विकास इन्हीं गिरमिट भारतीयों के माध्यम से हुआ। ये गिरमिटिए दिन भर के कड़े परिश्रम के बाद रात को तारों की छाँव में बैठकर तुलसी की रामचरितमानस की चौपाइयाँ पढ़ते, हारमोनियम, ढोलक तथा तंबूरे और खँजड़ी के साथ कबीर, मीरा तथा सूरदास के भजन गाकर दिन भर की थकान दूर करने का प्रयत्न करते। परोक्ष रूप में ये हिंदी पढ़ते, सीखते व हिंदी में भजन गाकर हिंदी का अभ्यास करते। धीरे-धीरे सभी गिरमिटियों के बीच हिंदी संपर्क का माध्यम बनी। हिंदी का फीजी में वृक्षारोपण हुआ। आज हिंदी का यह 1879 ई. में लगाया गया पौधा वट वृक्ष बन गया है, जो समय के साथ बढ़ता तथा सुदृढ़ होता जा रहा है।

फीजी में बसे भारतीयों की आपसी व्यवहार की तथा बोलचाल की हिंदी अलग है, जबकि औपचारिक अवसरो पर वे परिनिष्ठित हिंदी का व्यवहार करते हैं। चूँकि बोलचाल की हिंदी प्रारंभ में किसानों तथा मजदूरों की भाषा थी, कई भाषाओं का उस पर प्रभाव था। आज भी फीजीवासी भारतीय अपनी बोलचाल की

हिंदी को टूटी-फूटी, बिगड़ी हुई और भ्रष्ट कहते हैं तथा विशेष औपचारिक अवसरों पर वे अपनी सहज स्वाभाविक फीजी हिंदी का प्रयोग न कर शुद्ध परिष्कृत शब्दावली प्रधान हिंदी का प्रयोग कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। आज किसी भी भारतीय को देखकर वे संस्कृत प्रधान हिंदी में बोलने का प्रयास करते हैं। शुद्ध भाषा का मोह तथा परिष्कार की यह बात भारत से गए पंडितों ने उन्हें समझाई है। परिणामतः फीजी में हिंदी के दो स्वरूप विकसित हो रहे हैं। पहला रूप बोलचाल की हिंदी का है जिसे वे 'फीजी बात' या 'फीजी हिंदी' कहते हैं। दूसरा रूप संस्कृत शब्दावली प्रधान हिंदी का है। यह दूसरा रूप शिक्षा व प्रसारण का रूप है जिसका प्रयोग विद्यालयों में होता है, फीजी रेडियो में होता है, समाचार-पत्रों में तथा औपचारिक अवसरों पर भाषणों में, सामाजिक व सांस्कृतिक उत्सवों में होता है। दूसरा हिंदी का रूप परिनिष्ठत खड़ीबोली का है, जबकि पहला रूप अवधी का है। फीजीवासी भारतीय साहित्यिक रचना में खड़ीबोली हिंदी का प्रयोग करना चाहता है। उसकी दृष्टि में खड़ीबोली में रचना करने से ही उसकी रचना को साहित्यिक मान्यता मिल सकती है।

फीजी में हिंदी के विकास का इतिहास भारतवंशियों की साधना और उनके विकास का इतिहास है। हिंदी के इस विकास में कितने ही लेखकों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, व्यवसायियों तथा सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं का सक्रिय सहयोग रहा है। फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय, सरकारी उपक्रम फीजी रेडियो ने भी हिंदी को निरंतर प्रश्रय दिया है तथा सुविचारित एवं सुव्यवस्थित ढंग से हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फीजी स्थित भारतीय हाई कमीशन के माध्यम से फीजी में हिंदी के विकास में भारत सरकार का सहयोग भी महत्त्वपूर्ण है।

फीजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार में जिन संस्थाओं की वंदनीय भूमिका रही है उनमें आर्य प्रतिनिधि सभा, फीजी का उल्लेखनीय स्थान है। फीजी में विद्यालय स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण तथा हिंदी को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने में आर्य समाज के प्रचारकों का प्रयास सराहनीय रहा है।

जहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा, फीजी ने हिंदी भाषा अध्ययन को व्यवस्थित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वहीं श्री सनातन धर्म महासभा, फीजी ने हिंदी भाषा को जन-जन तक पहुँचाने तथा प्रवासी भारतीयों को रामायण के माध्यम से संगठित करने का सराहनीय कार्य किया है।

फीजी में हिंदी के विकास का इतिहास भारतवंशियों की साधना और उनके विकास का इतिहास है। हिंदी के इस विकास में कितने ही लेखकों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, व्यवसायियों तथा सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं का सक्रिय सहयोग रहा है। फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय, सरकारी उपक्रम फीजी रेडियो ने भी हिंदी को निरंतर प्रश्रय दिया है तथा सुविचारित एवं सुव्यवस्थित ढंग से हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

फीजी में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय की देखरेख में होती है। शिक्षा मंत्रालय में पाठयक्रम विकास एकक के अंतर्गत हिंदी इकाई है, जिसका कार्यभार सीनियर ऑफिसर (हिंदी) पर है।

हिंदी को फीजी में जन-जन तक पहुँचाने में फीजी रेडियो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्री दिवाकर प्रसाद और भास्कर मिश्र के प्रयासों ने फीजी रेडियो में हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया है। फीजी रेडियो में हिंदी के कार्यक्रम दिन भर प्रसारित होते हैं, जिनमें हिंदी में समाचार, फिल्मी गाने तथा अन्य हिंदी के कार्यक्रम होते हैं। इन हिंदी कार्यक्रमों के लिए फीजी रेडियो की सहायता भारतीय हाई कमीशन भी करता है और आकाशवाणी से टेपांकित सामग्री मँगाकर प्रसारणार्थ देता रहा है।

आज भी फीजी का भारतीय समुदाय हिंदी में ही भावाभिव्यक्ति चाहता है। हिंदी में ही कहानी-कविताएँ लिखता है। उसकी इन रचनाओं का प्रकाशन वहाँ के समाचार पत्रों में होता है। छपाई महँगी भी बहुत है। हिंदी का संबंध चूँकि रोजगार और प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ नहीं है, इसलिए हिंदी के बड़े पाठक समुदाय के होते हुए भी हिंदी पुस्तकों के ग्राहक नहीं हैं। परिणामतः हिंदी रचनाओं का प्रकाशन या तो वहाँ के हिंदी पत्रों में होता है, जो संख्या में बहुत थोड़े हैं या फिर रेडियो फीजी के साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से उनका प्रसारण होता है। समग्रतः हिंदी लेखक का जीवन संघर्ष का जीवन है।

हिंदी प्रेमी लेखकों ने हिंदी समिति तथा हिंदी केंद्र बनाए हैं, जो वहाँ के प्रतिष्ठित लेखकों के निर्देशन में गोष्ठियाँ, सभाएँ तथा प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं। जिनमें हिंदी कार्यक्रम होते हैं, कवि और लेखक अपनी रचनाएँ सुनाते हैं। फीजीवासियों में अपनी भाषा हिंदी के प्रति विशेष मोह है। वे हिंदी को अपनी अस्मिता से जोड़ते हैं तथा उनका दृढ़ विश्वास है कि अपनी भाषा की प्रतिष्ठा और सुरक्षा के माध्यम से ही वे अपनी संस्कृति को जीवित और सुरक्षित रख सकते हैं।

आज फीजी में हिंदी लेखक कविता, कहानी, लेख, संस्मरण, यात्रावृत्त, नाटक आदि सभी विधाओं में साहित्य रचना कर रहे हैं। उनकी रचनाएँ वहाँ के हिंदी पत्रों में या तो प्रकाशित होती हैं या फिर रेडियो फीजी से प्रसारित होती हैं। इन विधाओं में भी सबसे अधिक रचनाएँ काव्य रचनाएँ ही हैं। फीजी में हिंदी की साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन की अपनी समस्याएँ हैं। वहाँ न तो हिंदी के अच्छे बड़े प्रकाशक हैं और न मुद्रण की समुचित व्यवस्था ही है। अनेक लेखकों ने अपनी रचनाओं को [illegible] प्रकाशित करने के [illegible] सभी के लिए यह संभव नहीं था।

फीजी के हिंदी साहित्यकारों में कमला प्रसाद मिश्र, महावीर मित्र, काशीराम कुमुद, राम नारायण, ज्ञानी सिंह, हजरत आदम, जोगिंद्र सिंह कँवल, सलीम बख्श, अनुभवानंद आनंद, ईश्वर प्रसाद चौधरी आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। गद्य शिल्पियों में महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद', सुब्रमणी, ब्रिज विलास लाल, रेमंड पिल्लई, गुरुदयाल शर्मा, जोगिंद्र सिंह कँवल, भरत वी. मोरिस की रचनाएँ प्रभावशाली हैं। प्रो. सुब्रमणी को तो भारत सरकार ने उनके उपन्यास 'डउका पुरान' पर सूरीनाम में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में अंतरराष्ट्रीय हिंदी पुरस्कार से सम्मानित भी किया है।

फीजी में मुद्रण और प्रकाशन महँगा भी था तथा सर्व सुलभ भी नहीं था, इसलिए साहित्यिक ग्रंथों के प्रकाशन नहीं के बराबर हुए। पत्रिकाओं में प्रकीर्ण रूप से छपने तथा रेडियो प्रसारण के कारण वे रचनाएँ किसी पुस्तकालय की शोभा नहीं बन पाईं और जनसुलभ नहीं हो सकीं। जो थोड़ी-बहुत रचनाएँ निजी प्रयासों से छपीं भी, वे उपयुक्त वितरण व्यवस्था न होने के कारण आज उपलब्ध नहीं हैं। परिणामस्वरूप फीजी की साहित्यिक हिंदी रचनाओं की खोज के लिए सामान्यतः फीजी में प्रकाशित छोटी-छोटी पत्रिकाओं तथा पुरानी फाइलों का ही सहारा लेना पड़ा है। आज आवश्यकता है कि विदेशों में रचित हिंदी साहित्य का विशाल स्तर पर अध्ययन और अनुसंधान देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के माध्यम से हो, जिसमें हिंदी के अंतरर्राष्ट्रीय स्वरूप का आकलन प्रमाणिक रूप से किया जा सके।

औपचारिक रूप से फीजी में हिंदी शिक्षण का प्रारंभ इस शताब्दी के पहले दशक से ही शुरू हो सका, जब भारतीय मूल के बच्चों के लिए पाठशालाओं का निर्माण हुआ। राकीराकी की वाइरूकू पाठशाला फीजी की प्रथम भारतीय पाठशाला थी। जैसे-जैसे भारतीय मूल के लोगों की आबादी बढ़ती गई, हिंदी पढ़ाने के लिए पुस्तकों की आवश्यकता भी बढ़ती गई। पुस्तकें पहले भारत से मँगाई जाती थीं, किंतु द्वितीय महायुद्ध के शुरू होते ही भारत से पुस्तकों का आयात बंद हो गया और अब पाठ्यपुस्तकों की समस्या सामने आई। इसी समय भारत से गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं. अमीचंद विद्यालंकार आर्य समाज के प्रचार के लिए फीजी आए हुए थे। उन्होंने पाठ्यपुस्तकों के अभाव की समस्या को दृष्टि में रखकर हिंदी पढ़ाने के लिए प्रारंभिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों का निर्माण प्रारंभ किया तथा पहली से लेकर पाँचवीं कक्षा तक के लिए पाँच पोथियाँ लिखीं, किंतु जब वे अभी आधी [illegible], उनका देहांत हो गया और पाठ्यपुस्तक लेखन का काम अधूरा रह गया। ए.डब्ल्यू. मैकमिलन नामक एक अंग्रेज विद्वान् ने देश में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की महत्ता को ध्यान में रखकर अमीचंद जी की सारी पोथियों का पुनरीक्षण किया। एड्रयू गया प्रसाद, जयराम शर्मा, शिव प्रसाद तथा रामहरख जी ने मैकमिलन को पूर्ण सहयोग दिया तथा हिंदी पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में सहायता दी।

आज फीजी में हिंदी शिक्षण की अच्छी व्यवस्था है तथा फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने हिंदी को पूरी मान्यता दी हुई है। आज कक्षा एक से लेकर उच्च सेकेंड्री स्कूल की तेरहवीं कक्षा तक हिंदी पढ़ाई जाती है। फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय के हिंदी पाठ्यक्रम एकक के पूर्व वरिष्ठ शिक्षा अधिकारी श्री नेतराम शर्मा का कहना है कि फीजी के तमाम काईबीती विद्यार्थी हिंदी को पहली कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार सीखते हैं। शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सभी प्रमुख परीक्षाओं में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। कक्षा छह के इंटरमीडिएट एक्जाम, कक्षा आठ के लिए फीजी एट्थ ईयर एक्जाम, कक्षा दस के लिए फीजी जूनियर सर्टिफिकेट एक्जाम, कक्षा बारह के लिए फीजी स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट एक्जाम तथा कक्षा तेरह या फार्म सात के लिए फीजी सेवेंथ ईयर एक्जाम में हिंदी का एक विषय के रूप में अध्ययन होता है। दक्षिण प्रशांत के एकमात्र विश्वविद्यालय में हॉबी कोर्स के रूप में फीजी स्थित

भारतीय उच्चायोग के प्रथम सचिव (शिक्षा तथा हिंदी) डॉ. विमलेश कांति वर्मा के निर्देशन में हिंदी भाषा अध्ययन का पाठ्यक्रम सन् 1985-1986 में प्रारंभ हुआ था, फिर उनके भारत वापस लौटने के कारण वह बंद हो गया था। सन् 1995 में फिर एक लघु विषय (माइनर) के रूप में विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन का प्रारंभ हुआ तथा डॉ. नेतराम शर्मा ने ढाई वर्षों तक वहाँ अध्यापन किया। अब यहाँ हिंदी डिग्री स्तर पर न होकर डिप्लोमा स्तर पर पढ़ाई जाती है। आज फीजी के विश्वविद्यालय-यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक में हिंदी पाठ्यक्रम डॉ. इंदु चंद्र के निर्देशन में चल रहा है। वे प्रयत्नशील हैं कि विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर भी हिंदी पाठ्यक्रम चले।

अब आवश्यकता इस बात की है कि उच्चतम कक्षा तक हिंदी पढ़कर आनेवाले विद्यार्थी, जो हिंदी भाषा तथा साहित्य के उच्च अध्ययन में रुचि रखते हैं, उनके लिए विश्वविद्यालय में शोध स्तर पर भी हिंदी अध्ययन-अनुसंधान की व्यवस्था हो। फीजी में आज हिंदी का विशेष सम्मान है। फीजी का हर भारतीय हिंदी को अपनी अस्मिता का परिचायक मानता है। फीजी में केवल भारतीय ही नहीं, लगभग सभी शिक्षित काईबीती हिंदी भाषा समझते हैं, बोलते हैं तथा संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का व्यवहार करते हैं। हिंदी के प्रति उनके मन में और अधिक रुचि जाग्रत् करने के लिए आवश्यक है कि भारत सरकार की प्रेरणा से तथा वहाँ की स्थानीय सरकार तथा प्रवासी भारतीयों के सहयोग से वहाँ एक विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की जाए। जहाँ हिंदी से संबंधित विभिन्न भाषा तथा साहित्य के पाठ्यक्रम चलाए जाएँ, अच्छा हिंदी पुस्तकालय हो तथा हिंदी भाषा और साहित्य पर उच्च स्तर के शोध तथा अध्ययन की व्यवस्था हो। हिंदी की जिस विदेशी भाषिक शैली फीजीबात का फीजी में विकास हुआ है, उसके संवर्धन के सार्थक प्रयासों, हिंदी के विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम नाटक, कवि सम्मेलन आदि हों, जो वहाँ के हिंदी-प्रेमियों की सांस्कृतिक क्षुधा को तो शांत करें ही हिंदी की संचार शक्ति का भी परिचय दें, तथा साथ ही ऐसी योजनाएँ भी कार्यान्वित की जाएँ जहाँ काईबीती तथा भारतीय भाषा समाज के बीच हिंदी संपर्क सेतु बन सके। काईबीती-हिंदी-काईबीती भाषाकोश इस दिशा में पहला प्रभावी चरण हो सकता है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि उच्चतम कक्षा तक हिंदी पढ़कर आनेवाले विद्यार्थी, जो हिंदी भाषा तथा साहित्य के उच्च अध्ययन में रुचि रखते हैं, उनके लिए विश्वविद्यालय में शोध स्तर पर भी हिंदी अध्ययन-अनुसंधान की व्यवस्था हो। फीजी में आज हिंदी का विशेष सम्मान है। फीजी का हर भारतीय हिंदी को अपनी अस्मिता का परिचायक मानता है।

फीजी द्वीप में हिंदी पत्रकारिता का इतिहास पर्याप्त पुराना है। आज से पचासी वर्ष पूर्व डॉ. मणिलाल ने भारतीयों को, जो गिरमिट मजदूर के रूप में फीजी पहुँचे थे, संगठित करने के लिए सन् 1913 में 'द सेटलर' नाम से एक अंग्रेजी पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया था। यह पत्र भारतीय समाज में अति लोकप्रिय हुआ। इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर तथा यह सोचकर कि जो भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में बसे हुए हैं वे भी इसके समाचारों से लाभान्वित हो सकें, इसका हिंदी संस्करण साइक्लोस्टाइल रूप में निकाला गया। यह हिंदी संस्करण पं. शिवराम शर्मा की देख-रेख में प्रकाशित हुआ। 'दे सेटलर' के इसी हिंदी संस्करण को फीजी का पहला हिंदी समाचार पत्र होने का गौरव दिया जा सकता है।

दूसरे दशक में फीजी में कई हिंदी पत्रों का प्रकाशन हुआ। फीजी समाचार, भारतपुत्र, वृद्धि तथा वृद्धिवाणी आदि पत्र प्रकाशित हुए, किंतु फीजी समाचार के अतिरिक्त अन्य हिंदी पत्र अधिक समय तक नहीं चल सके और शीघ्र ही बंद हो गए। फीजी समाचार का प्रकाशन सन् 1923 में प्रारंभ हुआ और यह पत्र सन् 1957 तक निकलता रहा। इस पत्र का प्रकाशन इंडियन प्रिंटिंग तथा पब्लिशिंग कंपनी द्वारा किया जाता था तथा इसके प्रथम संपादक बाबू राम सिंह तथा अंतिम संपादक नौसोरी के पं. चंद्रदेव सिंह थे।

अगले दशक (1930-1940) में दो और हिंदी मासिक पत्र फीजी में प्रकाशित हुए। पहला पत्र हिंदी मासिक 'वैदिक संदेश' था, जिसका प्रकाशन आर्य समाज के कार्यकर्ता पं. श्रीकृष्ण शर्मा करते थे। दूसरा मासिक पत्र सनातन धर्म था, जिसका प्रकाशन सन् 1927 में प्रारंभ हुआ था तथा यह फीजी की सनातन धर्म महासभा द्वारा नियंत्रित होता था। आपसी ईर्ष्या और द्वेष तथा पारस्परिक विरोध के कारण दोनों ही पत्र शीघ्र ही काल

कवलित हो गए। देशी हिंदी पत्रकारिता में जो यश व सम्मान फीजी के साप्ताहिक समाचार पत्र 'शांतिदूत' ने अर्जित किया है वह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि यदि विश्व के भारतीयों को संगठित करने का कोई सशक्त व सार्थक माध्यम है तो वह हिंदी भाषा ही है। 'शांतिदूत' दक्षिण प्रशांत का एकमात्र हिंदी साप्ताहिक समाचार पत्र है, जो फीजी की राजधानी सूवा में छपता है। किंतु फीजी के अतिरिक्त वह ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा प्रशांत महासागर के अनेक द्वीपों में बसे हुए भारतीयों द्वारा नियमित रूप से पढ़ा जाता है और प्रति सप्ताह इसकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से की जाती है। यह समाचार साप्ताहिक पिछले तिरसठ वर्षों से निरंतर निकल रहा है तथा राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय समाचारों के साथ ही भारत के समाचार भी पाठकों तक पहुँचाता है। कितने ही संकट आए, कितनी ही उथल-पुथल हुई, देश को राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक संकट का सामना करना पड़ा, किंतु आज भी 'शांतिदूत' अलख ज्योति जगाए अपनी लक्ष्यपूर्ति में लगा हुआ है। निश्चय ही 'शांतिदूत' विदेशी हिंदी पत्रकारिता का कीर्तिस्तंभ है।

संप्रति फीजी द्वीप समूह हिंदी भाषा-भाषी देश है, जहाँ फीजी के भारतीय तथा मूल निवासी काईबीती दोनों ही हिंदी भाषा का पारस्परिक बोलचाल में प्रयोग करते हैं। फीजी के भरतवंशियों के लिए हिंदी उनकी भारतीय अस्मिता की प्रतीक है। उन्होंने हिंदी की सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए यथेष्ट प्रयत्न भी किए हैं। वहाँ हिंदी का निरंतर सुव्यवस्थित विकास हो सके, स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य के पाठ्यक्रम चलें, वहाँ के हिंदी लेखकों को पुस्तक प्रकाशन में प्रोत्साहन मिले तथा मॉरीशस के ही समान वहाँ भी हिंदी के प्रचार-प्रसार की योजनाएँ चलें, तो फीजी में हिंदी की नींव और सुदृढ़ होगी तथा विदेश में हिंदी की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. विमलेश कांति वर्मा, फीजी में हिंदी : स्वरूप और विकास, प्रकाशक : पीतांबरा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ.सं. 210
2. विमलेश कांति वर्मा (सं.) : गगनांचल, विदेश में हिंदी : पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध, वर्ष 27, अंक 3-4, अक्तूबर-दिसंबर, 2004, प्रकाशक : भारतीय सांस्कृतिक एवं संबंध परिषद्, नई दिल्ली, 2004, पृ.सं. 222, 226।
3. कँवल, जे.एस. : 'अ हंड्रेड इयर्स ऑफ हिंदी इन फीजी', फीजी टीचर्स यूनियन, सूवा, फीजी 1980, पृ.सं. 118।
4. दया प्रकाश सिन्हा (सं.)-गगनांचल (फीजी विशेषांक), प्रकाशक : भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली 1979, पृ.सं. 162।
5. रोडने मोग : फीजी हिंदी (ए बेसिक कोर्स एंड रिफरेंस ग्रामर), प्रकाशक : ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस तथा यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक, सूवा, फीजी 1977, पृ.सं. 291।
6. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, 'फीजी में प्रवासी भारतीय', प्रकाशक : भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली, 1983, पृ.सं. 363।
7. ओम प्रकाश केजरीवाल (सं.) 'विदेश में हिंदी : स्थिति और संभावनाएँ', प्रकाशक : नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली, 2004, पृ.सं. 338।
8. सुरेश ऋतुपर्ण, 'कमला प्रसाद मिश्र की काव्य साधना', गौरव प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ.सं. 168।
9. रामनारायण गोविंद, फीजी में प्रचलित हिंदी लोकगीत, प्रकाशक : लेखक, 1984, पृ.सं. 171।
10. सुब्रमणी, डउका पुरान, हिंदी बुक सेंटर, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, 2001, पृ.सं. 521।
11. सूजन संस, फीजी-हिंदी-इंगलिश-फीजी हिंदी डिक्शनरी, शिक्षा मंत्रालय, फीजी, 1985, पृ.सं. 204।
12. राजेंद्र मेस्त्रा, लैंगुएज इन इनडेंचर, विटवाटर्सरैंड यूनिवर्सिटी प्रेस, जोहानेसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका, 1991, पृ.सं. 325।
13. बाल गणेश, द हिंदी लैंगुएज इन साउथ अफ्रीका, 1998, पृ.सं. 325।
14. रेमंड पिल्लई, बियोंड सेरीमनी, एन एंथालोजी ऑफ ड्रामा फ्राम फीजी, पैसिफिक राइटिंग फोरम, 2001।

Dr. Vimlesh Kanti Varma
73, Vaishali, Pitampura,
Delhi-110034 (INDIA)
Mobile: +91-9810441753
Email: vimleshkanti@hotmail.com

4

सूरीनाम में हिंदी भाषा और साहित्य

प्रो. पुष्पिता अवस्थी

भारत में जिसे हम हिंदी या मानक हिंदी के नाम से पहचानते हैं सूरीनाम के भारतवंशियों द्वारा प्रायः इसका प्रयोग नहीं होता है। इसका प्रयोग विशेष स्थितियों एवं अवसरों पर किया जाता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों, हिंदी शैक्षिक केंद्रों, रेडियो, टेलीविजन, मंदिर, मसजिद, नाटक, कविता पाठ एवं संगीत के अवसरों पर इस हिंदी का प्रयोग होता है। लेकिन सरकारी स्कूलों में [illegible] अतिरिक्त इस देश में [illegible] अखबार। हिंदी भाषा की पुस्तकों का कोई प्रकाशन नहीं होता है। भजनावली और हिंदू तिथियों के कैलेंडर आदि का प्रकाशन वर्ष में एक बार होता है। प्रकाशन, पत्रिका, समाचार-पत्र के अभाव के कारण पेशेवर लेखकों की भी कमी है।

भारतीय मजदूर किसानों के साथ आई कहानियाँ, किस्से और लोकगीत ही हिंदी-साहित्य की थाती थी, जो वाचिक परंपरा से चलती रही। इसी तरह से रामलीला और रासलीला का प्रचलन सन् 1920 से प्रारंभ हुआ। इनके लिए भारत से मँगवाई पुस्तकों की भाषा का उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त हरीशचंद्र तारामती, रूप बसंत, रास रंग बहार, भक्त प्रहलाद, हकीकत राय, भक्त प्रहलाद, श्रवण कुमार, नवलखाहार, कृष्णावतार, महाभारत, गरीबों की पुकार आदि नौटंकियों का भी मंचन हुआ। जो प्रायः भारत के हिंदी साहित्य की देन रहीं।

सन् 1970 से सन् 1985 के बीच प्रसिद्ध सामाजिक नाटक दूसरी बीबी, आजकल और आज, हाय रे पैसा, बहू भी बेटी है, मैं औरत हूँ, सैनिक के पिता, प्रवासी, कृष्ण और सुदामा, प्रवासी, रक्षाबंधन आदि लिखे गए और अनेकानेक बार मंचित हुए। हिंदुस्तानी बोली और हिंदी भाषा के मिले-जुले स्वरूप ने जन-मन को बहुत आकृष्ट किया। जिन्हें पुस्तक के रूप में जनता तक पहुँचाया गया।

सन् 1918 के बाद धार्मिक सत्संगों में हिस्सा लेनेवाले प्रचारकों के द्वारा परचे लिखे जाते थे, जबकि हिंदी लिपि जाननेवाले अल्प संख्या में थे। सन् 1940 के बाद आर्य समाज, सारामाका के हिंदी कार्यकर्ताओं द्वारा साइक्लोस्टाइल परचे [illegible] से इसी तरह की [illegible] और एक पृष्ठ के लेख का ही चलन था। टंकण और मुद्रण यंत्रों के अभाव के कारण हिंदी का विकास भारी कठिनाई से जूझ रहा था। पंडित लक्ष्मीप्रसाद बलदेव ने 'सत्यदर्शक' पुस्तक लिखी, जिसकी पाँच सौ प्रतियाँ प्रकाशित हुईं। इनका जीवनकाल सन् 1915 से सन् 1951 के बीच रहा, जिसमें इन्होंने 'बग्घा' के नाम से भी साहित्य सेवा की।

सूरीनाम देश की आजादी के बाद निबंध एवं आलेख लिखने में प्रगति हुई। सूरीनाम के लेखकों को प्रायः तीन भाषाओं से नियमित गुजरना पड़ता हैः डच, सरनामी, हिंदी। वे एक साथ तीन भाषाओं में लिखने का अभ्यास करते हैं, जिसमें हिंदी भाषा में लिखने की आदत कम-से-कम है; क्योंकि एक तो इस लिपि के भाषा के पाठकों की संख्या कम है, दूसरे उसकी इनके जीवन और संस्कृति में न के बराबर आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त टंकण, मुद्रण यंत्रों का अभाव है और हिंदी का कोई प्रकाशक नहीं हैं। 'सरस्वती' नाम से एक प्रकाशन ने सन् 2000 से कुछ कार्य प्रारंभ किया है लेकिन वह इतना अधिक व्ययपूर्ण है कि किसी लेखक द्वारा साधना सहज नहीं है। वैसे ही यहाँ की महँगाई के कारण लोगों का जीवन कठिन है। यदि किसी दानवीर की सहायता से वह छप भी जाए तो उसको पढ़ने वाली पाँच प्रतिशत आबादी भी नहीं मिलेगी।

सूरीनाम में दो विभूतियों के कारण हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार संभव हो सका है। देवी सरस्वती के उपासकों की दो कोटियाँ हैं। शब्द और कला के उपासक भक्त अपनी ज्ञानात्मक संवेदना के द्वारा सरस्वती की साधना में अपने कृतित्व के फल अर्पित करते हैं। अपने श्रम के द्वारा अर्जित पूँजी को, धन-संपत्ति को, कला साहित्य-संस्कृति प्रेमी जनों पर अर्पित करनेवालों की एक महान परंपरा विश्व के अनेक देशों में रही है।

इसी क्रम में 23 अप्रैल, 1889 ई. श्री लक्ष्मण सिंहजी सूरीनाम गंगा-1 नामक जहाज से आए। सूरीनाम देश में जमीनें खरीदीं और धार्मिक, सांस्कृतिक केंद्र, मंदिर, पाठशालाओं के लिए अपनी संपति दान कर दी। भारत से आए हिंदुस्तानियों के कल्याण के लिए अनेक संगठन बनाए, जिसमें सूरीनाम आप्रवासी संगठन प्रमुख है। सन् 1910 में इसी संस्था ने 'भारत उदय' संस्था के [illegible] भारतीयों को परम संतोष की अनुभूति होती थी। श्री लक्ष्मण सिंह जी की उपस्थिति सूरीनाम के आप्रवासी भारतवंशियों के लिए वरदान सिद्ध हुई। श्री लक्ष्मण सिंह जी को जनवत्सल और कल्याणकारी आचरण के कारण, दृढ़ चरित्र बल और आत्मबल के परिणामस्वरूप उस समय उच्च सत्ताधारियों का बड़ा-से-बड़ा अधिकारी प्राणपण से उनका सम्मान करता था और वे जिधर से गुजरते थे, सम्मानस्वरूप गोरे लोगों का शरीर झुक जाता था। कई बड़े सत्ताधारियों से उन्होंने भारतवंशियों की प्राणरक्षा की। भारत देश और भारतीयों के प्रति ऐसी पारिवारिक और सघन आत्मीयता के उदाहरण विरले हैं।

> **श्रीमती इंदिरा गांधी कहा करती थीं कि इतने बडे देश [illegible] देश की एकता के लिए आवश्यक है कि कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला-जुलाकर रख सके। इसलिए हिंदी को बढ़ाना हम सबका कर्तव्य है।**

सन् 1922, 10 जनवरी में बंबई में श्री लक्ष्मण सिंह का निधन हुआ, तो उनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए भारत से लक्ष्मण सिंह जी की मूर्ति बनवाकर मंगवाई गई। भाई लक्ष्मण सिंह जी की भूमि और संपति को अनेक मंदिरों और संस्कृतिकर्मियों में बाँट दिया गया था, जिनके द्वारा धर्म-संस्कृति के कार्य चलाए और बढ़ाए जा रहे हैं, जिसमें सूरीनाम हिंदी परिषद् का भवन प्रमुख है। जिसमें आजकल एक चायनीज सुपरमार्केट की दुकान चल रही है। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर (2003) पर 'हिंदी लॉन' स्थित मार्ग पर बन रहे सूरीनाम हिंदी परिषद् के नए भवन के कक्ष में बाबू लक्ष्मण सिंह की मूर्ति पूर्व विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह के करकमलों द्वारा स्थापित हुई। जिनके प्रत्यक्षदर्शी संरक्षण में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का कार्य संपन्न होता है। सन् 2006 से सूरीनाम हिंदी परिषद् की गतिविधियाँ उसी भवन में केंद्रित हैं जहाँ से प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, परिचय और प्रवेशिका के स्तर की कक्षाएँ होती हैं और प्रतिवर्ष 26 जनवरी के आस-पास वार्षिक परीक्षाएँ संपन्न होती हैं। उत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए उनके क्षेत्र के मंदिरों के उत्सवों में प्रमाण-पत्र वितरण समारोह संपन्न होता है।

माता गौरी संस्थान

माता गौरी संस्थान की स्थापना स्व. [illegible] की दूरदर्शिता एवं तत्कालिक भारत के सांस्कृतिक प्रवक्ता श्री महातम सिंह की प्रेरणा के फलस्वरूप, सूरीनाम की समग्र जनता के सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए 12 जून, सन् 1968 में हुई। आठ हजार वर्गमीटर जमीन पर लगभग दस मिलियन सूरीनाम गिल्डर्स की लागत पर बनकर तैयार हुआ।

संस्थान की ध्यान-मुद्रा में प्रमुख स्थान दीपक का है, जो ज्ञान का द्योतक है। दीपक के दोनों ओर सूरीनाम का राष्ट्रीय फूल पालूल है, जो आनंद का प्रतीक है। संस्थान की मान्यता है कि आध्यात्मिक और लौकिक पक्षों में समन्वय स्थापित करते हुए आत्मा और शरीर की स्वाभाविक समस्वरता को प्राप्त करने और उसे बनाए रखने में ही मानवजाति का कल्याण है।

विश्वबंधुत्व की पृष्ठभूमि में सूरीनाम में आए भारतीय अनुवंशीय तथा अन्य लोगों द्वारा बोली जानेवाली हिंदुस्तानी, सरनामी भाषा, मानक हिंदी और संस्कृत भाषा, की शिक्षा प्रदान की जाती है।

संस्थान हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसंधान की दिशा में व्यवस्था करता है। साथ ही संस्कृत की

प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। संस्थान हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित गतिविधियाँ नियमित बनाए रखने का प्रयत्न करता है।

इसी परिसर में गोस्वामी तुलसीदास की पंचशती के अवसर पर भारत से आई विद्वत्मंडली द्वारा तुलसीदास की मूर्ति लगाई गई थी। प्रो. विद्यानिवास मिश्र और प्रो. विष्णुकांत शास्त्री के नेतृत्व में 'विशेष हिंदी महोत्सव' और तुलसीदास के महत्त्व पर सम्मेलन हुआ था।

साहित्य मित्र संस्था

अगस्त, 2001 में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में बतौर प्रोफेसर आसीन, प्रो. पुष्पिता ने साहित्यिक लेखन की क्षीणता को देखकर वहाँ के कवि-लेखकों के समुदाय को भूतपूर्व सूरीनाम हिंदी परिषद् के निदेशक रह चुके भाषाकर्मी श्री हरिदेव सहतू के आवास पर सबको एकत्रित किया। प्रत्येक शनिवार-रविवार के अवकाशी दिनों में बैठकें करके 'साहित्य मित्र संस्था' का 25 नवंबर, 2001 को गठन किया। वर्ष भर बाद उनके अतिथि संपादन में 'शब्द शक्ति' पत्रिका का प्रथम अंक जनवरी, 2003 को प्रकाशित हुआ। इसके बाद संस्था प्रो. पुष्पिता के नेतृत्व में निकेरी, सरमका के अनेकानेक क्षेत्रों में साहित्यिक सभाओं और गोष्ठियों का आयोजन करने लगी और सूरीनाम में इस तरह से साहित्यिक सक्रियता का पुनः शंखनाद हुआ।

सूरीनाम देश में भारतवंशियों के प्रयत्न से सन् 1980 से सन् 1990 के बीच होली, दीपावली के अवसर पर 16 या बीस पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित होती थी, जो पर्याप्त नहीं थी। ऐसे में अपने कार्यकाल में हिंदी 'शब्द शक्ति' और 'हिंदीनामा' पत्रिका का प्रकाशन कार्य प्रारंभ किया, जिससे (हिंदी लिपि) देवनागरी लिपि में हिंदुस्तानियों को पढ़ने और उसके लिए लिखने की आदत बने। इस प्रयत्न से बहुत सफलता भी प्राप्त हुई। भाषाविद् डॉ. ग्रियर्सन का मानना रहा है कि हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो भारत में सर्वत्र बोली और समझी जाती है। मुझे लगता है कि शीघ्र ही वह दिन आएगा, जब लोग यह मानने लगेंगे कि हिंदी विश्व में सर्वाधिक समझी और बोली जानेवाली भाषा है। विनोबा भावे ने हिंदी भाषा की शक्ति को स्वीकार करते हुए माना है कि हिंदी की प्रगति को कोई शक्ति नहीं रोक सकती।

श्रीमती इंदिरा गांधी कहा करती थीं कि इतने बड़े देश में जहाँ इतनी भाषाएँ हैं वहाँ देश की एकता के लिए आवश्यक है कि कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला-जुलाकर रख सके। इसलिए हिंदी को बढ़ाना हम सबका कर्तव्य है।

इसी संदर्भ को यदि आगे बढ़कर देखें तो विश्व के अन्य देशों में बस रहे आप्रवासी भारतवंशियों को संगठित रखने के लिए और अन्य देशों के आप्रवासी भारतवंशियों को भारत से जोड़े रखने के लिए 'हिंदी' ही भारत की, भारतीयता की और भारतवंशियों की प्रतिनिधि भाषा बन सकती है; क्योंकि यह भारतवंशियों की सांस्कृतिक और जीवन की भाषा है।

सूरीनाम के संविधान के अनुच्छेद 16 के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित होने का अधिकार है। अनुच्छेद 7(6) के अनुसार माँ-पिता अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए भी स्वतंत्र हैं। 1 जनवरी, 1975 से सभी को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है। तीन से पंद्रह वर्ष के बच्चों को स्कूली शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। स्कूली पढ़ाई एक अक्तूबर से लेकर अगस्त के तीसरे सप्ताह तक होती है। कुल पढ़ाई चालीस सप्ताह होती है। सूरीनाम में 44 प्रतिशत सरकारी पाठशालाएँ हैं और 56 प्रतिशत स्वैच्छिक संस्थाओं की पाठशालाएँ हैं, जिसके अंतर्गत कैथोलिक, आर्य-समाजी और सनातनी संस्थाएँ आती हैं। जिसमें सरनामी, देवनागरी लिपि और हिंदी की शिक्षा प्रदान की जाती है। जिनके अध्यापकों का संबंध सूरीनाम हिंदी परिषद् से होता है। जिसके शिक्षण और परीक्षण का काम 'सूरीनाम' हिंदी परिषद् के द्वारा प्रतिवर्ष संपन्न होता है।

सूरीनाम के इतिहास में एक समय ऐसा भी था जब सरकारी प्राइमरी स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती थी। जब अंग्रेजों के द्वारा हिंदुस्तानियों को मजदूरी के लिए सूरीनाम और अन्य देशों में भेजा जाता था। हिंदुस्तानियों की माँग पर हॉलैंड सरकार ने हिंदी स्कूल खुलवाए, जिन्हें 'कुली स्कूल' भी कहा गया। हिंदी पढ़ाने-लिखाने का एक कारण यह भी था कि सबको पढ़ने के लिए स्कूल जाना अनिवार्य था। मुंशी नाथूराम मास्टर द्वारा निर्मित हिंदी की पहली पुस्तक हॉलैंड सरकार के द्वारा निःशुल्क वितरित की गई थी।

सूरीनाम में हिंदुस्तानियों की संख्या चालीस प्रतिशत के आस-पास है। हिंदुस्तान से आए होने के कारण यह अपने को भारतवंशी कहलाने से अधिक हिंदुस्तानी कहलाए जाना पसंद करते हैं और अपनी संवाद भाषा को भी वे प्रायः हिंदुस्तानी कहते

हैं। आधुनिक समय के भारतवंशी अपनी वाणी को सरनामी कहते हैं।

यहाँ की पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। शर्तबंदी की प्रथा से मुक्त होने के बाद, सूरीनाम देश के आजाद होने के बाद यहाँ के हिंदुस्तानियों ने राजनीति, शिक्षा में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया। ज्ञानाधीन के प्रयत्न से 'सरनामी' हिंदुस्तानी की मान्यता प्राप्त कर सकी। इसके बाद पत्रकारिता ने जन्म लिया।

सूरीनाम में 'सरस्वती प्रेस' नाम से एक ही प्रकाशन है, जो देवनागरी में प्रकाशन कार्य करता है। इससे पूर्व भारतीय राजदूतवास की सहायता से प्राप्त टाइपराइटर की सहायता से हिंदी में कुछ कविताएँ (कहानियाँ), किस्सा, चुटकुले और सूचनाओं की तीस-बत्तीस पृष्ठ की स्टैपल या पंच की हुई पत्रिकाएँ वर्ष में दो या तीन बार प्रायः दीवाली और होली के अवसर पर प्रकाशित होती थीं।

सन् 1975 में सूरीनाम देश के 'स्वतंत्र राष्ट्र' घोषित होने के बाद अनेक धर्मनिष्ठ हिंदुस्तानी नीदरलैंड आ बसे और हिंदी सरनामी के प्रचार-प्रसार का कार्य करने लगे और शेष हिंदुस्तानी सूरीनाम में रहते हुए सरनामी और हिंदुस्तानी में अठारह से पच्चीस पृष्ठों के बीच की अर्द्धवार्षिक या त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन में प्रवृत्त हो गए।

सरनामी की लिपि रोमन या डच है। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। इसलिए यहाँ से प्रकाशित होनेवाली तथाकथित लघु पत्रिकाओं में कुछ विषयवस्तु डच भाषा में रहती है, कुछ सामग्री रोमन लिपि की सरनामी भाषा में रहती है और दो-चार पृष्ठ हिंदी को समर्पित रहते हैं।

देवनागरी (हिंदी) लिपि के अभ्यास के अभाव के कारण यहाँ के लोगों को हिंदी पढ़ने-लिखने की बहुत आदत नहीं है, इसलिए यहाँ समकालीन भारतीय साहित्य की जानकारी की कोई जिजीविषा नहीं है। मॉरीशस, फीजी जैसे भारतवंशी बहुल देशों के लोग जिस तरह से अपनी हिंदी और समकालीन साहित्य और साहित्यकारों से परिचित रहते हैं उसका यहाँ अभाव है। सरनामी या हिंदी भाषा का आज तक यहाँ कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ है।

पुरनिया हिंदुस्तानी और भारतवंशी अध्यापकों के घर-घर दौरा करने पर बहुत संघर्ष के बाद कुछ पत्रिकाएँ (तथाकथित) हाथ लगीं, जिनमें सर्वाधिक प्राचीन हिंदी की पत्रिका 'शांतिदूत' प्राप्त हुई। इसका प्रकाशन सन् 1971 के आस-पास प्रारंभ हुआ। जिसका वार्षिक मूल्य तीन गिल्डर था तथा एक प्रति एक चवन्नी की मिलती थी। गयाना और त्रिनिदाद के लिए इसका मूल्य चार डॉलर था। जिसमें आवरण को लेकर चौदह पृष्ठ होते थे। जिसमें कुछ कविताएँ, कुछ संस्मरण, विचारात्मक लेख (जो प्रायः एक पृष्ठ के भी नहीं होते थे। इसी में बालजगत् की सामग्री और इसी में विज्ञापन जो सिर्फ सूचना भर होते थे) भी सँजोए रहते थे। टाइप की हुई देवनागरी लिपि की यह पत्रिका साइक्लोस्टाइल होकर प्रकाशित होती थी। शीर्षकहीन छपी कविता पर शीर्षक लिखकर भेजे जानेवाले व्यक्ति को एक डॉलर की पुस्तकें प्रदान की जाती थीं। अखबारों में प्रकाशित होनेवाले समाचारों की शैली में ही 'शांतिदूत' के अंतिम पृष्ठों पर भारत के समाचार भी प्रकाशित होते थे। इस पत्रिका के आवरण पर कभी 'रश्मिरथी' की कुछ पंक्तियाँ, तो कभी रहीम और कबीर के दोहे प्रकाशित किए जाते थे। मॉरीशस में हिंदी प्रचार की खबरें भी समय-समय पर प्रकाशित होती थीं।

सन् 1955 से हिंदी और हिंदुस्तानियों की सेवा में संलग्न अमरसिंह रमण ने सन् 1968 में 'सरहिंद सांस्कृतिक सभा' का निर्माण किया। इसके पाँच वर्ष पूर्ण होने पर 'विद्यासागर' नाम से बीस पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित की। जिसमें अनेक सिखावनी, कार्टून और एक आधे पृष्ठ के आलेख थे। जिसमें सूर्य प्रसाद बीरे की उपदेशात्मक सूक्तियाँ का भी स्थान-स्थान पर संयोजन किया गया। इस पत्रिका की विशिष्टिता यही थी कि हिंदी की हस्तलिपि में लिखित थी और साइक्लोस्टाइल करके लोगों को यह उपहारस्वरूप पढ़ने के लिए प्रदान की गई थी।

सन् 1984 से 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' के प्रयत्न से एक-दो वर्षों के अंतराल पर 'सूरीनाम दर्पण' नाम से 24 पृष्ठ की लघु पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जिसके प्रथम अंक के आवरण पर 'लालारुख भवन' की तसवीर प्रकाशित हुई थी, जो आज खंडहर की अवस्था में पड़ा हुआ है। इसके संपादक मंडल में जानकी प्रसाद सिंह, हरिदेव सहतू, सूर्यप्रसाद बीरे, शूरबीर और अमर सिंह रमण थे। सन् 1989 के मई-जून अंक में परामर्शमंडल के रूप में डॉ. ज्ञान हंसदेव अधीन, डॉ. रामचंद्र पुरी, डॉ. प्रकाश दीक्षित थे। प्रधान संपादक हरिदेव सहतू थे। 'सूरीनाम दर्पण'

पत्रिका के अंकों में रचनात्मक लेखन का प्रायः अभाव था। इसमें 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' की गतिविधियों, हिंदी परीक्षा, परीक्षा परिणाम, अध्यापकों की सूचनाओं, उत्तीर्ण विद्यार्थियों का लेखा-जोखा ही प्रायः देखने को मिला। पत्रिका की दृष्टि से पठनीय सामग्री का प्रायः अभाव रहा। हिंदुस्तानी प्रवासियों के एक सौ पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के हर्ष में 'सूरीनाम दर्पण' का विशेषांक प्रकाशित हुआ। अट्ठावन पृष्ठों की पत्रिका का प्रति अंक एक डॉलर का था। जिसमें कई आलेख, कविताएँ प्रकाशित हुई। इसके साथ ही इस अंक में हिंदी के साथ-ही-साथ डच भाषा में भी संक्षिप्त आलेख प्रकाशित हुए। सूरीनामी हिंदुस्तानियों के पुरखों की संघर्ष गाथा के कुछ अंश भी आए। इसी वर्ष सूरीनाम में हिंदी परीक्षा के भी पच्चीस वर्ष पूर्ण हुए थे। इस तरह से 'सूरीनाम दर्पण' पत्रिका से सूरीनाम में हिंदी की विकास-यात्रा की एक झलक मिलती है।

सरनामी और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सरनामी के प्रथम कवि जीत नाराइन हॉलैंड में चिकित्सा की नौकरी करते हुए देन हॉग से 'सरनामी' नाम से पाँच वर्षों तक लगातार पत्रिका निकालते रहे। स्वयं चिकित्सक होने के नाते वे स्वास्थ्य-शरीर की जानकारी सामान्य जनता तक वैसे ही पहुँचाना आवश्यक समझते थे, जैसे भाषा का पहुँचना जरूरी है। बीस पृष्ठों की पत्रिका में शब्दकोश, कविता, संस्मरण, संगीत सबको स्थान प्राप्त था। पत्रिका के आवरण पर देवनागरी के अक्षर और 'सरनामी' देवनागरी में लिखा हुआ अवश्य है लेकिन पूरी पत्रिका में सामग्री रोमन लिपि में ही प्रकाशित है। कुछ पठनीय सामग्री डच भाषा में प्रस्तुत है तो अन्य सामग्री रोमन लिपि में लिखित सरनामी भाषा में है। नीदरलैंड में डॉ. दम्स्त्यैरव, डॉ. जीत नाराइन और एच. फ्रूखिनिक इसके वितरक थे, जो स्वयं भी सरनामी और हिंदी के गंभीर विचारक थे। इसमें डॉ. तेयो दम्स्त्यैरव के सरनामी भाषा के आधार पर शृंखलाबद्ध रूप से डच भाषा में लेख प्रकाशित हुए। (मार्च 1984, अगस्त 1984, भाषा) सरनामी भाषा के प्रचार का आधार डच भाषा बनी। डच भाषा की सहायता से हिंदुस्तानियों ने सरनामी का व्याकरण रचा और इसे एक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया, जबकि यह हिंदी भाषा की बोलियों के परिवार से मिलकर बनी हुई ही एक बोली है, जिसके सूरीनाम में पहुँचने पर लिपि डच या रोमन हो गई, जो इस भाषा के विकास के लिए दुर्भाग्य सिद्ध हो रहा है। भाषा पत्रिका में 'भाषा' आवरण में छपे शब्द के अतिरिक्त कहीं देवनागरी लिपि नहीं है। पूरी पत्रिका की सामग्री डच या रोमन लिपि में (लिखित) छपित सरनामी में उपलब्ध है।

देवनागरी (हिंदी) लिपि के अभ्यास के अभाव के कारण यहाँ के लोगों को हिंदी पढ़ने-लिखने की बहुत आदत नहीं है, इसलिए यहाँ समकालीन भारतीय साहित्य की जानकारी की कोई जिजीविषा नहीं है। मॉरीशस, फीजी जैसे भारतवंशी बहुल देशों के लोग जिस तरह से अपनी हिंदी और समकालीन साहित्य और साहित्यकारों से परिचित रहते हैं उसका यहाँ अभाव है। सरनामी या हिंदी भाषा का आज तक यहाँ कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ है।

सूरीनाम में पत्रिकाओं के प्रकाशन को देखते हुए भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की प्रो. पुष्पिता ने साहित्यिक पत्रिका प्रकाशन का बीड़ा उठाया। आपने सन् 2001 से सन् 2003 के बीच में अनुभव किया कि इस देश में साहित्यिक गतिविधियों के विकास का अभाव है। इसलिए इन्होंने वहाँ के सांस्कृतिक, साहित्यिक कर्मियों और कवियों के सहयोग से 'साहित्य-मित्र' संस्था का गठन किया। 25 नवंबर, 2001 से 'साहित्य मित्र' संस्था ने कार्य करना शुरू किया। जनवरी, 2003 में 'शब्द-शक्ति' नाम से छत्तीस पृष्ठों की पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। जिसके संपादकीय में संस्था के प्रधान श्री हरिदेव सहतू ने लिखा''इस कार्य को सँभालने के लिए 25 नवंबर, सन् 2001 को 'सूरीनाम साहित्य मित्र के संस्था' प्रो. पुष्पिता के प्रयत्न से गठित हुई। इस दिन की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि हम अपने हिंदीभाषियों को रचनाएँ लिखने के लिए तैयार करेंगे तथा सरनामी और हिंदी कृतियों को प्रकाशित करने-कराने का प्रबंध करेंगे। ('शब्द-शक्ति' साहित्य मित्र संस्था, सूरीनाम, त्रैमासिक 'प्रवेशांक' जनवरी, 2003।)

प्रवेशांक में सरनामी हिंदी भाषा के संदर्भ में सहतू के संक्षिप्त आलेख के अतिरिक्त जीत नाराइन, श्रीनिवासी, पुष्पिता, सुरजन परोही, रामदेव महाबीर, हरिदेव सहतू, सुशीला बलदेव, देवानंद

शिवराज, तेज प्रसाद, खेदू की पारामारिबो से और सुशीला बीरबल सुक्खु, तारा बदलू पूरन और साधुराम खेदु की निकेरी से कविताएँ प्रकाशित हुई। अप्रैल 2003 में पत्रिका का दूसरा अंक प्रकाशित हुआ, जिसमें सहतू जी के सूरीनाम की हिंदी भाषा पर संक्षिप्त आलेख के साथ समकालीन कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई। इसके संपादकीय में लिखा गया'शब्द शक्ति' साहित्यिक पत्रिका के प्रथम वर्ष के प्रथम अंक का विमोचन दिनांक 23 फरवरी, 2003 को हुआ। इस पत्रिका की पहली प्रति शिक्षा मंत्रालय के सांस्कृतिक विभाग के निदेशक श्री जॉन पाविरोरेजो (John Pawiroredjo) को पत्रिका की जन्मदात्री प्रो. पुष्पिता की ओर से अर्पित की गई। (शब्द-शक्ति, सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था, त्रैमासिक आप्रवासी अंक, अप्रैल-जून, 2003)

इसी क्रम में प्रो. पुष्पिता ने 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' संस्था के अंतर्गत 'विद्यानिवास साहित्य संस्था' का गठन किया। साहित्यिक विमर्श और काव्य-सृजन की कार्यशालाएँ चलाई। काव्य-पाठ आयोजित किए और 'हिंदीनामा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ करवाया, जिसमें समकालीन हिंदी कवियों और साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित कीं, जिससे सूरीनाम के हिंदीभाषी रचनाकार उन साहित्यकारों के साहित्य से परिचित हो सकें। जिसमें विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, कन्हैयालाल नंदन, गिरधर राठी, तेजेंद्र शर्मा (लंदन), गौतम सचदेव (लंदन), मोहन राणा (लंदन) की कविताएँ अन्य सूरीनाम देश पर केंद्रित सामग्री के साथ प्रकाशित हुई। 'हिंदीनामा' प्रवेशांक के संयोजक और परिषद् के अध्यक्ष ह. जानकी प्रसाद सिंह ने लिखा''प्रो. पुष्पिता जी की लगन और काम करने के तरीके को देखकर हम सबको इन पर भरोसा हुआ और हम सबके कर्मफल का परिणाम 'हिंदीनामा' पत्रिका आप सबके हाथों में है। सरनामी मातृभाषा के उपयोग के बावजूद देवनागरी लिपि के अभ्यास के अभाव के कारण भाषा के प्रचार में कठिनाई हो रही थी। सरनामी हिंदी और हिंदी के बीच वाचिक दूरी न होते हुए भी हस्तलिपि की दूरियाँ बनी हुई हैं। सरनामी को देवनागरी लिपि में लिखना और पहचानना सीखने के बाद भाषा, साहित्य और संस्कृति की वास्तविकता को जानने के लिए हम किसी के मोहताज न रहेंगे।'' (हिंदीनामा, वर्ष-1, अंक-1, मार्च-अप्रैल-2003)

सूरीनाम के प्रवासी भारतवंशियों ने भारत की आत्मा में बसी भारतीय संस्कृति की पवित्र उज्ज्वल जल-धार को भागीरथी की तरह प्रवाहित किया है। इस देश के प्रवासी भारतवंशियों की मातृभूमि सूरीनाम अवश्य हो सकती है, लेकिन उनकी आत्मा का स्वदेश आज भी भारत है।

Prof. Pushpita Awasthi
BKK M & C BV
P.O. Box 1080, 1810 KB
Alkmaar
The Netherlands
email : pushpita.awasthi@bkkvastgoed.nl

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिसके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में आसीन हो सकती है।

-राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

5

गयाना में आलोकित है हिंदी का सूर्य

नारायण कुमार

सर्वप्रथम विश्वविख्यात नाविक कोलंबस ने सन् 1498 में दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पूर्वी तट को देखा था। चूँकि इस भूभाग में अपार जल-भंडार था, इसलिए इसे 'गाईना' कहा जाने लगा जो एक एमेरिइंडियन शब्द है, जिसका अर्थ है अनेक जलराशियों की भूमि। आज भी एमेरिइंडियन लोगों के बीच पानी के लिए 'वाइना' शब्द का प्रयोग होता है। 83000 वर्गमील के इस भूभाग पर 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक स्पेन, डच, फ्रेंच तथा ब्रिटिश उपनिवेशवादियों का प्रभुत्व रहा। अंततः सन् 1803 में ब्रिटेन ने इस क्षेत्र के एक बड़े भाग पर स्थायी रूप से अपना अधिकार जमा लिया तथा सन् 1814 में गयाना विधिवत् ब्रिटिश उपनिवेश का हिस्सा बन गया। उपनिवेश बनने के बाद से ही वहाँ दासप्रथा के अंतर्गत अफ्रीकी नीग्रो गन्ने के बागानों में काम करने के लिए बुलाए गए। सन् 1834 में ब्रिटिश सरकार ने निर्मम, क्रूर और अमानवीय दासप्रथा को समाप्त करने की घोषणा की। इस घोषणा के चार वर्ष बाद तक 'एप्रेंटिसशिप' के प्रावधान के अंतर्गत अफ्रीकी नीग्रो को गयाना के बागानों में काम करना पड़ा। किंतु जब नीग्रो मजदूर दासप्रथा से पूर्णतः मुक्त हो गए और बागानों में काम करना बंद कर दिया तो ब्रिटिश बागान मालिकों ने कुछ पड़ोसी देशों के अतिरिक्त चीन, पुर्तगाल आदि देशों से मजदूरों को बुलाया, जो गर्म मौसम तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण वहाँ टिक नहीं सके। इसके बाद इस उपनिवेश के एक बागान मालिक ग्लैडस्टोन ने ईस्ट इंडिया कंपनी के अध्यक्ष सर जान कैम हॉन हाउस को 23 फरवरी, 1837 को तथा ब्रिटेश के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर द कॉलोनिज लार्ड ग्लेनेलज को मार्च 1837 में पत्र भेजकर भारत से मजदूरों के आयात की अनुमति माँगी। इससे चार वर्ष पूर्व भारत से गिरमिटिया प्रथा के अंतर्गत मॉरीशस में मजदूरों को भेजा गया था, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के अनुसार काफी मेहनत से वहाँ काम कर रहे थे। अतः ग्लैडस्टोन के प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया गया।

13 जनवरी, 1838 को 'ह्विटवी' नामक जहाज 249 श्रमिकों को लेकर तथा ठीक उससे 16 दिन बाद 'हेसपरस' नामक जहाज 165 श्रमिकों को लेकर कलकत्ता से गयाना के लिए विदा हुआ। इन 414 यात्रियों में 14 की मृत्यु यात्रा के दौरान हो गई, जिनके शव समुद्र में फेंक दिए गए। दोनों जहाज 5 मई, 1838 को डेमररा (गयाना की वर्तमान राजधानी जार्जटाउन) पहुँचे। इनमें से 150 मजदूरों की भरती छोटानागपुर (संथाल परगना) के आदिवासी इलाके से की गई थी, जिन्हें अंग्रेज 'हिल कुली' कहते थे, तथा शेष मजदूर बंगाल के वर्धमान और बाँकुरा जिले के थे। उन्हें कुछ भी नहीं मालूम था कि वे कहाँ जा रहे हैं। बाद में बिहार, उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण भारत के कुछ राज्यों के मजदूर गयाना भेजे गए।

इन मजदूरों को शर्तबंद प्रथा या गिरमिटिया मजदूर के रूप में भेजा गया परंतु क्रूर ब्रिटिश मालिक इनके साथ भी 'दास' जैसा ही व्यवहार करते थे। गयाना के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. छेदी जगन ने लिखा है कि इन गिरमिटिया मजदूरों को सूर्योदय से सूर्यास्त तक खेतों में मालिकों के भय से काम करने, शक्ति से अधिक काम करने के कारण अस्पताल में इलाज कराते या मालिकों का कोपभाजन बन कारावास में सजा भुगतते देखा जा सकता था। परंतु इन तीनों स्थानों के अतिरिक्त इन गिरमिटिया मजदूरों ने ऐसे 'बैठका' बना लिये थे जहाँ वे 'रामायण' और 'हनुमान चालीसा' का पाठ करते थे तथा डिबिया जलाकर अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाते थे। जाहिर है कि भारत से सन् 1838 में तथा उसके बाद गिरमिटिया मजदूर

बनकर जानेवाले लोग बहुत शिक्षित और विद्वान् नहीं थे, लेकिन बागान मालिकों के अत्याचार और अनाचार से तंग आकर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व को बचाने के लिए वे संकटमोचक के रूप में हिंदी भाषा और भारतीय जीवन-पद्धति की ओर मुड़े थे। यह सिर्फ कैरेबियन के लिए ही नहीं, बल्कि मॉरीशस, फीजी आदि देशों के लिए भी सच है। लेकिन गयाना से पहले सिर्फ मॉरीशस में ही भारतीय श्रमिक भेजे गए थे, जो अपेक्षाकृत भारत से निकट था। अतः गयाना में गिरमिटिया मजदूर ज्ञात तथा अज्ञात यातना और कष्ट से अधिक उत्पीड़ित थे।

सन् 1838 से सन् 1917 के बीच जो मजदूर भारत से गयाना आए, वे अपने साथ भारतीय रीति-रिवाज, परंपरा, धर्म, भाषा और संस्कृति लाए, जो आज भी न्यूनाधिक मात्रा में गयाना में सुरक्षित है। यही कारण है कि भारतीय भोजन, भारतीय त्योहार, जन्मोत्सव, मुंडन, विवाह-संस्कार, श्राद्ध आदि की परंपरा भारतवंशियों के बीच विद्यमान है। दीपावली, फगवा (होली), ईद जैसे त्योहार गयाना में राष्ट्रीय त्योहार माने जाते हैं। गंगा स्नान तथा रमजान देश भर में निष्ठापूर्वक मनाए जाते हैं। यद्यपि हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन को ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के अंतर्गत मान्यता मिल गई थी। लेकिन हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भारत के धार्मिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। भारत के महान् क्रांतिकारी तथा समाज सुधारक भाई परमानंद तथा महात्मा गांधी के अनन्य सहयोगी दीनबंधु सी.एफ. एंड्रयूज के सद्प्रयासों से गयाना के सभी आर्यसमाज मंदिरों एवं भारतवंशियों के अन्य समाजसेवी संगठनों में हिंदी की शिक्षा प्रारंभ हो गई थी। इन हिंदी विद्यालयों के शिक्षकों को बागान मालिक मामूली वेतन भी देते थे। गयाना के स्वतंत्र होने से पहले ही भारत सरकार गयाना में भारत से हिंदी तथा संस्कृत पढ़ाने के लिए अध्यापक भेजती थी जो देश के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में हिंदी पढ़ाते थे। आज भी गयाना के भारतीय समुदाय श्रीमती रत्नमयी दीक्षित, श्री योगीराज, श्री महातम सिंह का नाम आदर से स्मरण करते हैं। 30 दिसंबर, 1974 को भारत तथा गयाना के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान समझौता संपन्न होने के बाद हिंदी शिक्षण को आधिकारिक रूप से बल मिला। सन् 1973 में गयाना की राजधानी जार्जटाउन में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना हो चुकी थी। सन् 1974 से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् में भी हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की गई तथा गयाना विश्वविद्यालय में भी विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया। गयाना के कुछ सेकेंडरी स्कूलों में भी पहले हिंदी पढ़ाई जाती थी।

संप्रति गयाना के कुछ धार्मिक एवं सामाजिक संगठनों द्वारा हिंदी के अनौपचारिक शिक्षण की व्यवस्था की गई है। मैंने अपने चार वर्षों के कार्यकाल में गयाना में हिंदी के प्रति व्यापक उत्साह देखा। गयाना हिंदू धार्मिक सभा, महात्मा गांधी संगठन, गयाना हिंदी प्रचार सभा द्वारा संचालित हिंदी विद्यालय की कक्षाओं में पाँच वर्ष से अस्सी वर्ष के शिक्षार्थी हिंदी भी पढ़ने आते थे। इन कक्षाओं में सब्जी विक्रेता से लेकर उच्च प्रशासनिक अधिकारी तक शामिल थे। हिंदी कक्षा प्रारंभ होने से पहले छात्रगण प्रार्थना के रूप में 'हिंदी ध्वज गीत' गाते थे, जिसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं :

जय हिंदी जय भाषा माँ,
तू है देश की आशा माँ।
उठो बचाओ माँ का मान
गूँजे तन मन प्राण जहान,
यही धर्म कर्तव्य सुजान
सत्य-सभ्यता दया-महान।
आओ भाषा-ध्वज फहराएँ
माँ पूजा से जग सरसाएँ,
माँ की ममता मेल की भाषा
परम पुनीत है हिंदी भाषा।
जय हिंदी जय भाषा माँ
तू है देश की आशा माँ।

गयाना हिंदी प्रचार सभा का यह ध्वज गीत वहाँ के भारतीय समुदाय के लिए सिर्फ प्रार्थना या वंदना नहीं बल्कि उनके मन में हिंदी के प्रति स्नेह और सद्भाव का प्रतीक था। इसी प्रकार एक अन्य हिंदी प्रेमी पं. कूपचंद ने 'हिंदी सीखो, हिंदी बोलो' नामक इस प्रयाण गीत के माध्यम से हिंदी शिक्षण को लोकप्रिय बनाया :

आओ बच्चों हिलमिल गाओ
रक्षा करो ईमान की
हिंदी सीखो - हिंदी बोलो
यह भाषा स्वाभिमान की।

इस प्रकार भारतवंशी हिंदी को गयाना में ईमान और स्वाभिमान की भाषा मानते हैं। आज भी प्रायः सभी धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में हिंदी का प्रयोग होता है। हिंदी को वे अपनी मातृभाषा नहीं बल्कि अपने पुरखों की मातृभाषा मानकर श्रद्धा और सम्मान देते हैं।

गयाना में हिंदी गीत, भजन और सिनेमा अत्यधिक लोकप्रिय हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब इस देश में हिंदी बोलनेवाले बहुत कम लोग रह गए हैं। हिंदी कक्षा के छात्रों के अलावा गयाना के भारतवंशी हिंदी पढ़ भी नहीं पाते। सनातन धर्म एवं आर्य समाज के मंदिरों के पुरोहित भी प्रारंभ के दो-चार हिंदी वाक्यों एवं संस्कृत मंत्रों के अलावा अपना प्रवचन अंग्रेजी में ही देते हैं। लेकिन भारतीय समुदाय के अधिकांश लोग हिंदी गीत और भजन इतनी तन्मयता और श्रद्धा के साथ गाते हैं कि किसी को यह विश्वास नहीं होता कि वे हिंदी नहीं जानते हैं। उन्हें 'रामायण' और 'हनुमान चालीसा' के महत्त्वपूर्ण अंश कंठाग्र हैं तथा वेद, पुराण, गीता आदि उनके पूज्य एवं प्रिय ग्रंथ हैं। मुझे स्मरण होता है कि गयाना विश्वविद्यालय में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् से प्रतिनियुक्त प्रो. शेरबहादुर झा तथा उनकी धर्मपत्नी ने हिंदी फिल्मों के लोकप्रिय गीतों के आधार पर हिंदी शिक्षण का प्रयोग किया था, जो अत्यंत सफल रहा। इसी प्रकार मुंबई विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. रामजी तिवारी ने 'रामचरितमानस' के दोहों और चौपाइयों को आधार बनाकर भारतीय सांस्कृतिक केंद्र जार्जटाउन में जब हिंदी पढ़ाने की एक नई शुरुआत की, तो इतने लोग वहाँ हिंदी पढ़ने के लिए आने लगे कि छोटे कमरे से बदलकर बड़े सभागार में हिंदी कक्षा लगानी पड़ी।

गयाना में सामान्य रचनात्मक स्तर पर भी कुछ भारतवंशियों ने लेखन कार्य किया है, जिनमें पं. रिपुदमन प्रसाद, पं. रामलाल, पं. कूपचंद, पं. दुर्गाप्रसाद, रंडल बूटी सिंह, के.डी. तिवारी, बी.डी. मिसिर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन इनके लेखन में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, भारत माता की वंदना, हिंदू देवी-देवताओं की उपासना, भारतीय महापुरुषों की प्रशंसा और यशोगान की ही प्रधानता है। साहित्यिक दृष्टि से इनके लेखन का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। यहाँ के भारतवंशियों ने कुछ भोजपुरी और हिंदी लोकगीतों की रचना की है, जो देश भर में ही नहीं, बल्कि अन्य पड़ोसी देशों में भी लोकप्रिय हैं।

गयाना में सन् 1838 में हिंदी का प्रवेश हुआ था। आज हिंदी यहाँ व्यवहार की भाषा नहीं बल्कि भारतवंशियों की अस्मिता और पहचान की भाषा बन गई है। भारतवंशियों की चौथी पीढ़ी अपनी पहचान की तलाश में भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। उन्हें अब यह अनुभव हो रहा है कि जिस हिंदी भाषा से वे बिल्कुल अलग-थलग हो गए हैं, उसके बिना वे अपने स्वाभिमान और अपनी संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकते। गयाना में हिंदी भारतवंशियों की अस्मिता के लिए एक अनिवार्य तत्त्व बन गई है। भारतीय श्रमिकों की पहली पीढ़ी ने यातना एवं प्रताड़ना झेलकर अपने बच्चों को शिक्षित किया, जिसके कारण उनकी दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी ने सरकार तथा प्रशासन के उच्च पदों पर विराजमान होकर भारतीय समुदाय का सम्मान बढ़ाया। डॉ. छेदी जगन वहाँ के राष्ट्रपति बने तो श्रीदत्त रामफल कॉमनवेल्थ के महासचिव चुने गए तथा सैय्यद शाहबुद्दीन अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश। पं. रिपुदमन प्रसाद, श्री यशप्रसाद, कामनीशंकर जैसे अनेक नाम हैं जो सरकार, व्यापार और कृषि के क्षेत्रों में शीर्ष पदों पर हैं। आज संसार में सिर्फ गयाना और मॉरीशस दो ऐसे देश हैं जहाँ के राष्ट्रपति भारतवंशी गिरमिटिया मजदूर के वंशज हैं। लेकिन इन श्रमिकों की चौथी पीढ़ी अपनी भाषा भूल चुकी है तथा भाषा के बिना संस्कृति एवं जीवन मूल्यों को बचाए रखना कठिन प्रतीत होता है।

गयाना के भारतवंशियों में हिंदी की प्रासंगिकता इसलिए भी है कि यह उनके संघर्ष, शौर्य और मुक्ति की भाषा है। आज भी उपनिवेशवाद में विश्वास रखनेवाले लोग गयाना में हिंदी का विरोध करते हैं। गयाना के स्कूलों में अंग्रेजी के अतिरिक्त फ्रेंच और स्पेनिश भाषाओं की शिक्षा तो दी जाती है, लेकिन हिंदी नहीं पढ़ाई जाती है। मेरा सुझाव है कि वहाँ के विद्यालयों में वैकल्पिक विषय के रूप में फ्रेंच तथा स्पेनिश के साथ-साथ हिंदी शिक्षण की भी व्यवस्था की जाए तथा गयाना विश्वविद्यालय एवं भारतीय

सांस्कृतिक केंद्र में पुनः उच्च स्तर पर अत्याधुनिक वैज्ञानिक शिक्षण पद्धति से हिंदी पढ़ाई जाए। गयाना के विद्यालयों में तो भारत के केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी की शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश वापस जानेवाले छात्र भी हिंदी पढ़ा सकते हैं। इससे उन्हें भी हिंदी प्रशिक्षण की सार्थकता सिद्ध होगी और आर्थिक लाभ भी मिलेगा। गयाना विश्वविद्यालय और भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में भारत सरकार आई.सी.सी.आर. की ओर से प्राध्यापक भेज सकते हैं, जो पूरे देश में हिंदी शिक्षण को सही दिशा प्रदान करेंगे तथा हिंदी शिक्षण में समन्वय स्थापित करेंगे।

वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव और शिक्षण की सुविधा के अभाव में आज गयाना में हिंदी का अस्तित्व समाप्त हो रहा है। लेकिन पं. रिपुदमन प्रसाद अपने भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में तथा नेशनल सेंटर फॉर एजुकेशनल रिसर्च के निदेशक मोहनदत्त गुलशरण और गयाना हिंदी प्रचार सभा के सद्प्रयत्नों से हिंदी भाषा के शिक्षण एवं प्रचार-प्रसार का कार्य गयाना में चल रहा है। न्यूयॉर्क में जुलाई, 2007 में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में गयाना का प्रतिनिधित्व करते हुए श्रीमती वार्शिनी जगदेव ने यह विचार व्यक्त किया था कि हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि हमारे देश में पाँच वर्षों के अंदर लोग हिंदी बोलने लगें। उन्होंने इसके लिए एक तेरह सूत्री सुझाव भी दिया था, जो अत्यधिक व्यावहारिक और उपयोगी है। भारत सरकार और गयाना सरकार को इन सुझावों पर तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए।

मुझे विश्वास है कि गयाना में हिंदी पुनः अपना गौरवशाली स्थान प्राप्त करेगी। गयाना के सुप्रसिद्ध हिंदीसेवी श्री रंडल बूटी सिंह ने हिंदी भाषा के लिए पुनर्जागरण का आह्वान अत्यंत सशक्त एवं प्रभावशाली रूप में किया है :

'जागो प्यारे सूर्य देवता को कर जोड़ो,
नव आशा-अभिलाषा लेकर बढ़ते जाओ,
हिम्मत बाँधो, आलस त्यागो, रुको न पल भर,
हिंदी होगी विजयी पुनः गयाना में,
आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में।'

गयाना में भारतवंशियों की अस्मिता तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए श्री रंडल बूटी सिंह की इस कामना को कार्य रूप प्रदान करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

B-30 Manas Apartment,
Mayur Vihar, Phase-I
Delhi-110091 (INDIA)
Tele : +91-9268766150

भारत की सच्ची आत्मा का ज्ञान हिंदी द्वारा ही हो सकता है।

-डॉ. ग्रियर्सन

6

दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की संघर्ष गाथा

प्रो. उषा देवी शुक्ला

भारतीय मूल के शर्तबंद मजदूर सन् 1834 से सन् 1911 तक अंग्रेजी, डच और अन्य यूरोपीय उपनिवेशों में जीविकोपार्जन के लिए गए। मॉरीशस, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, गयाना और फीजी में ये 'गिरमिटिया' अर्थात् शर्तबंद मजदूर बस गए। मातृभूमि के कष्टपूर्ण जीवन को त्यागकर वे एक सुखी और समृद्ध जीवन की खोज में निकले थे। लेकिन उत्तर प्रदेश और बिहार छोड़ते समय हिंदीभाषी गरीब कल्पना भी नहीं कर सके कि उनका आगामी जीवन कितना कष्टपूर्ण होगा। सन् 1860 में ऐसे ही भारतीय गरीब दक्षिण अफ्रीका पहुँचे।

ये मजदूर हिंदी की उपभाषा भोजपुरी का प्रयोग करते थे। इन श्रमिकों और उनकी भाषा के बारे में प्रो. रामभजन सीताराम ने लिखा है-''श्रमिक के रूप में आए हुए भारतीय प्रायः अशिक्षित थे, फिर भी उन्हें अपनी 'भाषा' पर गर्व था। परंतु वे अपनी संस्कृति तथा धर्म के संबंध में सचेत और प्रयत्नशील थे। उनका निरक्षर होना इस दृष्टि से कोई बाधा नहीं पहुँचाता था। अतः भोजपुरी भाषा का दैनिक जीवन में प्रयोग और धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन में अवधी में विरचित 'रामचरितमानस' का पारायण और सीमित मात्रा में ब्रजभाषा की कृष्णचरित संबंधी रचनाओं का गायन, सभी हिंदी भाषा की समुन्नति के प्रतीक हैं।''

ये मजदूर भौगोलिक तथा काल की दृष्टि से भी अपने देश और परिजनों से दूर थे। पाँच वर्ष की अनुबंध की अवधि लंबी थी, जिसे उन्हें कठिनाइयों से काटना था। संघर्षपूर्ण जीवन में धार्मिक-सांस्कृतिक आयोजनों से मातृभूमि की मधुर स्मृतियाँ जीवंत हो जाती थीं। यहाँ तुलसीकृत 'रामायण' का योगदान सर्वोपरि था। पूरे दिन के श्रम के बाद वे थके-माँदे खेतों से लौटकर 'रामचरितमानस' के दोहों-चौपाइयों में शांति, साहस और धीरज पाते थे। इनके दुस्सह्य जीवन की झाँकी दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध स्वामी भवानी दयाल ने अपने ग्रंथ 'प्रवासी की आत्मकथा' में दी है-''कितने तो उस गुलामी के जीवन से ऊबकर नदी में डूब मरे, कितने फाँसी की डोरी पर झूल पड़े और कितने ही विषपान कर अपमान से छुटकारा पा गए।''

जब कोई भी मनुष्य अपने प्राकृतिक वास से अलग हो जाता है तो उसकी 'पहचान' गहरा अर्थ रखने लगती है। पहचान अपनी भाषा, संस्कृति, परंपरा, मूल्यों और धर्म से ही जुड़ी होती है। विश्व में जहाँ भी भारतीय लोग बसे हैं, उन्हें इस बात का गर्व है कि वे भारतीय मूल के हैं। यद्यपि अपने को सूरीनामी, त्रिनीडाडियन या दक्षिण अफ्रीकी मानते हैं, तथापि उनके लिए भारतवंशी होना महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए वे हमेशा इस प्रयत्न में रहे हैं कि उनकी भाषा, संस्कृति, जीवन मूल्य और धर्म जीवित और सुरक्षित रहें। यही स्थिति दक्षिण अफ्रीका में है। जब से शर्तबंद हिंदीभाषी मजदूर उत्तर भारत से दक्षिण अफ्रीका पहुँचे, वे अपनी पाठशालाओं, स्वैच्छिक संस्थाओं, रामायण सभाओं और मंदिरों द्वारा अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति को कायम और सुरक्षित रखने के प्रयास में रहे। यही एकमात्र कारण है कि 148 वर्षों के बाद दक्षिण अफ्रीका में एक प्रबल और सुदृढ़ भारतीयता विद्यमान है।

मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह न तो अपने अस्तित्व, न अपने व्यक्तित्व और न अपनी पहचान को खोना चाहता है। कुछ हद तक वह आस-पास की संस्कृतियों को अपना लेता है, जैसे वस्त्राभूषण, भोजन, भाषा, संगीत आदि। परंतु आमतौर पर उन्हें अपनी निजी संस्कृति, धर्म, भाषा और जीवन मूल्यों पर ही गौरव

है। बाह्य रूप से दक्षिण अफ्रीका के भारतीय साउथ अफ्रीकन हैं पर उनकी अंतरात्मा कहती है कि हम हिंदू हैं, हिंदीभाषी हैं, भारतीय हैं। आज भी घर में और समाज में हमारे दैनिक आचार-विचार, मान-सम्मान, रहन-सहन हिंदू तथा भारतीय मूल्यों द्वारा संचालित और अंकित हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि दक्षिण अफ्रीका के हिंदुओं में या हिंदू समाज में कोई कमी या त्रुटियाँ नहीं हैं। कइयों का मानना है कि पाश्चात्य प्रभाव हम पर बढ़ गया है, बच्चे अपनी संस्कृति खो रहे हैं आदि। फिर भी जिस समाज में रामचरितमानस जैसा धर्मग्रंथ मूल्यों और ज्ञान का आधार है वहाँ दुष्प्रवृत्तियों के लिए स्थान नहीं है। इससे स्पष्ट है कि जो इसे अपनाते हैं, उनमें समाजविरोधी प्रवृत्तियाँ हो ही नहीं सकतीं।

भाषा और संस्कृति के निर्वाह के लिए भारतीय मजदूरों को संघर्ष करना पड़ा। ''दक्षिण अफ्रीका में भारतीय श्रमिकों की मान्यता या प्रतिष्ठा जितनी कम थी, उससे कम मान्यता उनकी भाषा और संस्कृति की थी। भारतीय श्रमिक उत्पादन के साधन मात्र थे, उनके प्रभुओं को उनकी धार्मिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं में कोई रुचि नहीं थीं'' (डॉ. आर. सीताराम)। इस विषय में डॉ. हेनिंग की राय है कि मजदूरों के स्वामियों की भाँति सरकार ने भी इन पर कोई ध्यान नहीं दिया-''प्रशासन शैक्षिक सुविधाएँ देने में अनिच्छा प्रकट करता था। परिणामतः सन् 1870 से सन् 1880 की कालावधि में भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था उनके सामाजिक प्रयत्नों पर निर्भर थी।''

स्पष्ट है कि हिंदी भाषा और श्रमिकों की संतानों के लिए स्कूल की व्यवस्था सरकार की ओर से नहीं की गई थी। हिंदी भाषा को दक्षिण अफ्रीका में कोई सरकारी सहयोग नहीं मिला। एक ओर मजदूर अपने स्वामियों की उपेक्षा और अत्याचार सहते थे और दूसरी ओर अधिकारियों के द्वारा लगाए हुए प्रतिबंधों और अवरोधों से पीड़ित हो रहे थे। उनके दैनिक श्रमिक जीवन में हिंदी भाषा अनुपयोगी थी, क्योंकि अंग्रेजी को उच्च स्थान प्राप्त था और मूल निवासियों की जूलू भाषा का महत्त्व था।

ऐसी कठिन परिस्थितियों में उन भारतीय श्रमिकों ने विविध चुनौतियों का सामना करके अपनी भाषा को जीवित रखा। हिंदी भाषा में ही उनकी संस्कृति, मूल्य और परंपरा केंद्रित थीं। दक्षिण अफ्रीका में आए हुए हिंदुओं की संतान चौथी और पाँचवीं पीढ़ी में हैं और अब तक वे अपने धर्म का पालन कर रही हैं।

शर्तबंद मजदूर अशिक्षित थे, पर उनके पास सांस्कृतिक निधि थी–रामायण, गीता, महाभारत। मौखिक परंपरा सदा ही एक प्रबल साधन थी, जो अशिक्षितों को भी आसानी से ज्ञान देती थी। विशेषतः रामचरितमानस के दोहों-चौपाइयों को वे हृदयंगम कर चुके थे। रिचर्ड बर्ज ने मॉरीशस की हिंदीभाषी जनता के संबंध में जो लिखा था, वही सत्य दक्षिण अफ्रीका के हिंदीभाषियों पर लागू है। मॉरीशस में रामचरितमानस की धार्मिक-सांस्कृतिक शक्ति ने ही हिंदी भाषा को गरिमा प्रदान की थी। दक्षिण अफ्रीका में आज भी लोग रामचरितमानस पढ़ने के लिए हिंदी सीखते हैं।

पहले रामचरितमानस के द्वारा प्रवासी लोग हिंदी सीखते थे। उस समय भाषा का विकास अनिश्चित और अनियमित ढंग से हो रहा था। अनुसंधान द्वारा पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हुआ कि भाषा और संस्कृति का परस्पर संबंध है और भाषा ही संस्कृति की वाहिका है। अतः धीरे-धीरे रामचरितमानस ने अशिक्षितों को शिक्षित बना दिया। संभवतः तुलसीदास जी ने भी कल्पना नहीं की होगी कि उनका रामचरितमानस आगे चलकर भारत के बाहर सिर्फ हिंदू धर्म की रक्षा ही नहीं, बल्कि हिंदी सीखने का माध्यम भी बनेगा। कहा जाता है तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस द्वारा उत्तर भारत में हिंदू धर्म की रक्षा की थी। पर मैं अपने शोधकार्य 'भारतेतर देशों में

पहले रामचरितमानस के द्वारा प्रवासी लोग हिंदी सीखते थे। उस समय भाषा का विकास अनिश्चित और अनियमित ढंग से हो रहा था। अनुसंधान द्वारा पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हुआ कि भाषा और संस्कृति का परस्पर संबंध है और भाषा ही संस्कृति की वाहिका है। अतः धीरे-धीरे रामचरितमानस ने अशिक्षितों को शिक्षित बना दिया। संभवतः तुलसीदास जी ने भी कल्पना नहीं की होगी कि उनका रामचरितमानस आगे चलकर भारत के बाहर सिर्फ हिंदू धर्म की रक्षा ही नहीं, बल्कि हिंदी सीखने का माध्यम भी बनेगा।

रामचरितमानस का योगदान और प्रासंगिकता' के आधार पर बेहिचक कह सकती हूँ कि जहाँ-जहाँ हिंदीभाषी बसे हैं वहाँ हिंदी भाषा और हिंदू धर्म की रक्षा करने के अतिरिक्त भाषा और धर्म के ज्ञान की अभिवृद्धि में रामचरितमानस का सबसे बड़ा श्रेय है- ''रामचरितमानस ने प्रवासियों की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति की। धर्मग्रंथ होने के कारण वह आध्यात्मिक जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्रोत था, उसकी कथा और घटनाएँ मनोरंजन का साधन बनीं और रामचरितमानस हिंदी सीखने के लिए पाठ्य-पुस्तक के रूप में उपयोगी सिद्ध हुआ, जिससे सैकड़ों लोग निरक्षरता से साक्षरता की ओर प्रवृत्त हुए।''

इस तरह लोग रामचरितमानस की चर्चा के लिए इकट्ठे होते थे और पाँच-छह दशकों की अवधि में कई रामायण सभाओं की स्थापना हुई। मंदिरों और पाठशालाओं में भी रामचरितमानस द्वारा हिंदी सिखाई जाती थी। उस समय प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव था। लेकिन मजदूरों के भाषा-प्रेम और धर्मनिष्ठा ने उन्हें भाषा सीखने की प्रेरणा दी। यह प्रयास सराहनीय था-''यदि माता-पिता अपढ़ थे तो गन्ने के खेतों और कोयले की खानों के श्रमिकों के बच्चे किसी पुरोहित या अन्य शिक्षित व्यक्ति के घर में प्रारंभिक शिक्षा पाने के लिए एकत्रित होते थे।''

एक धारावाहिक 'रामायण', जो रामचरितमानस पर आधारित है, की अंतिम पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं और उपनिवेशों के लिए प्रासंगिक हैं :

भारत की आत्मा रामायण,
है पावन गाथा रामायण
मानव की प्रेरणा रामायण,
युग-युग की चेतना रामायण।

जब से हिंदीभाषी मजदूर उपनिवेशों में पहुँचे, तब से आज तक तुलसीकृत रामायण उनकी प्रेरणा का स्रोत और चेतना का अंग बन गई है। इस संदर्भ में मेरे शोध प्रबंध में पर्याप्त प्रमाण है कि तुलसी का रामचरितमानस भारतेतर हिंदीभाषी देशों में धर्मरक्षक और हिंदी भाषा के रक्षक के रूप में अवतरित हुआ।

'रामायण न होती तो हमारी संस्कृति कहाँ होती?

रामायण न होती तो हमारा धर्म कहाँ होता?

रामायण न होती तो हमारी हिंदी भाषा बिलकुल नहीं होती।'

भाषा और संस्कृति की अन्योन्याश्रितता एक शोध प्रबंध में इस प्रकार व्यक्त की गई :

'दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रारंभिक प्रवासकाल में भाषा ने ही संस्कृति की रक्षा की, जबकि वर्तमानकाल में सांस्कृतिक विषयों में अभिरुचि लोगों को अपनी भाषा सीखने को प्रेरित करती है।'

बीसवीं सदी के प्रारंभ में दक्षिण अफ्रीका में भारतवंशियों ने स्वैच्छिक धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना की। तब से इन संस्थाओं द्वारा बच्चों को हिंदी सीखने का अवसर मिलने लगा। सन् 1927 में भारतीयों के उत्थान के लिए 'कैपटाउन एग्रीमेंट' में यह स्वीकृत हुआ कि भारतीयों को शिक्षा मिलनी चाहिए, लेकिन भारतीय भाषाओं को स्कूलों में स्थान नहीं मिला। पूरी कोशिश करने पर भी हिंदी को सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिला। यह स्थिति सन् 1977 तक जारी थी।

1947 में भारत से पंडित नरदेव वेदालंकार दक्षिण अफ्रीका आए। उस समय तक हिंदी भाषा अध्यापकों की सूझ-बूझ के अनुसार पढ़ाई जाती थीं। पंडित नरदेव एक ऐसे विद्वान् थे जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका में हिंदी भाषा का भाग्य पलट दिया। प्रो. रामभजन सीताराम ने लिखा-''पंडित नरदेव जी ने अपनी विद्वत्ता, मृदुल स्वभाव, हिंदी भाषा-प्रेम और हिंदू भावना से लोगों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली। पंडित जी की शिक्षा-दीक्षा गुजराती में थी इसके अतिरिक्त वैदिक ज्ञान हिंदी और संस्कृत में भी प्राप्त किया

था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में पंडित जी हिंदी अध्यापक का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे। अतः दक्षिण अफ्रीका में पंडित जी ने हिंदी शिक्षा संघ की पाठशालाओं में हिंदी पाठ्यक्रम में व्यवस्था एवं शैक्षिक मूल्यों की स्थापना की। पाठ्यक्रम में सुधार, उपयुक्त पुस्तकों की तैयारी, आधुनिक प्रशिक्षण एवं परीक्षण पद्धति का समावेश और हमारे विद्यार्थियों का राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं में प्रवेश पंडित जी की देन है।''

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि 25 अप्रैल, 1948 को हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना में पंडित नरदेव जी वेदालंकार की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण थी। सन् 1948 से आज तक सहस्रों विद्यार्थी हिंदी शिक्षा संघ द्वारा हिंदी शिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक संस्थाओं अर्थात् स्वैच्छिक संस्थाओं ने हिंदी भाषा की सुरक्षा और प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सन् 1961 से डर्बन वेस्टविल विश्वविद्यालय में हिंदी बी.ए. से लेकर एम.ए., पी-एच.डी. तक पढ़ाई जाती थी। प्रारंभ में भारत के विद्वान् श्री आचारयुलु हिंदी पढ़ाया करते थे। फिर दक्षिण अफ्रीका के प्रो. रामभजन सीताराम ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए., पी-एच.डी. प्राप्त कर, कुछ ही वर्षों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन स्तर को भारत के स्तर पर पहुँचा दिया। फलस्वरूप, असंख्य लोगों को हिंदी का उच्च ज्ञान प्राप्त हुआ।

सन् 1977 से सरकारी स्कूलों में भारतीय भाषाओं का प्रवेश हुआ, तथापि इनके अध्ययन-अध्यापन का मार्ग अपेक्षित रीति से प्रशस्त नहीं हुआ। दक्षिण अफ्रीका के नए संविधान में भी भाषाओं के लिए सम्मान दिलाने की बात है, परंतु शिक्षा व्यवस्था जो रूप धारण कर रही है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय भाषाएँ स्कूलों में किसी सार्थक हद तक प्रगति नहीं कर रही हैं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने का मुख्य कारण है-दक्षिण अफ्रीका के संविधान में ग्यारह आधिकारिक या राजभाषाओं की स्वीकृति। हरेक प्रांत में अंग्रेजी और अफ्रीकांस के साथ एक अफ्रीकी भाषा पढ़ाई जा रही है। इससे भारतीय भाषाओं को उचित स्थान नहीं मिलेगा।

दक्षिण अफ्रीका के नए संविधान में भी भाषाओं के लिए सम्मान दिलाने की बात है, परंतु शिक्षा व्यवस्था जो रूप धारण कर रही है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय भाषाएँ स्कूलों में किसी सार्थक हद तक प्रगति नहीं कर रही हैं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने का मुख्य कारण है-दक्षिण अफ्रीका के संविधान में ग्यारह आधिकारिक या राजभाषाओं की स्वीकृति।

सन् 1998 में डरबन वेस्टविल विश्वविद्यालय का भारतीय भाषा विभाग बंद कर दिया गया। इससे हिंदी के विकास में बाधा पड़ गई है। परिणामतः भाषा के इस क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाओं के उत्तरदायित्व और महत्त्व एक बार फिर से बढ़ गए हैं। दक्षिण अफ्रीका में अभी मॉरीशस जैसी स्थिति नहीं, जहाँ अनेक विद्वान्, साहित्यकार और कवि कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं, फिर भी यहाँ भाषा प्रेमियों का अकाल नहीं है। भौतिक सुख-सुविधा और सांस्कृतिक चेतना में सामंजस्य आने पर हिंदी की उन्नति निश्चित है।

एक और तथ्य है जो वर्षों से भारतीय लोगों में हिंदी के प्रति रुचि, स्नेह और लगाव जीवित रख रहा है और वह है हिंदी फिल्में। पृथग्वासन के दिनों में जब दक्षिण अफ्रीका और भारत के बीच कोई राजनीतिक-सांस्कृतिक संबंध नहीं था, तब हिंदी फिल्में और हिंदी गीत-संगीत हमारे लिए भारत से संबंध सूत्र बने।

वर्तमान काल में जिन घरों में हिंदी माध्यम के दूरदर्शन के कार्यक्रम आते हैं, उन घरों के बच्चे और युवक-युवतियाँ हिंदी भाषा, हिंदू धर्म और संस्कृति के प्रति रुचि अभिव्यक्त करते हैं, उन्हें पूरे फिल्मी गीतों के शब्द याद हैं, उन्हें भारतीय वस्त्राभूषण पसंद हैं और स्पष्ट है कि वे हिंदी के प्रति आकर्षित हैं। यह भविष्य के लिए एक सकारात्मक प्रतीक है।

हिंदी भाषा के प्रचार-संचार साधनों में सिनेमा और दूरदर्शन महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इसके साथ-साथ रेडियो भी जुड़े हुए हैं। हमारे दो रेडियो स्टेशन हैं जिन पर हिंदी सुनी जा सकती है। एक सरकारी रेडियो, 'लोटस एफ.एम.', जो दक्षिण अफ्रीका में प्रयुक्त पाँच भारतीय भाषाओं में संगीत प्रसारित करता है। यह स्टेशन सप्ताह में

केवल डेढ़ घंटे के लिए हिंदी भाषा के माध्यम में प्रसारण करता है। दूसरा स्टेशन 'हिंदवाणी' है, जो हिंदी की प्रगति के लिए हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ्रीका द्वारा स्थापित किया गया है।

हिंदी शिक्षा संघ हिंदी की सेवा सन् 1948 से कर रहा है। अपनी भाषा तथा संस्कृति संबंधी उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए सन् 1998 में संघ ने 'हिंदवाणी' नाम से दक्षिण अफ्रीका का प्रथम हिंदी रेडियो स्टेशन स्थापित किया। हिंदी संप्रेषण में प्राणवत्ता लाने के लिए 'हिंदवाणी' के कार्यक्रमों में रामचरितमानस, कबीर, सूर और मीरा के पद तथा हनुमान चालीसा इत्यादि को स्थान दिया जाता है। विविध कार्यक्रमों में, कम-से-कम पचास प्रतिशत हिंदी भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। 'हिंदवाणी' पर मनोरंजन के लिए गीत-संगीत के कार्यक्रम, जीवनोपयोगी स्वास्थ्य, भोजन, प्रसाधन, सुरक्षा, समाज-सुधार तथा अन्य लाभकारी विषय प्रसारित किए जाते हैं। इससे 'हिंदवाणी' के श्रोताओं और संघ के विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होती है। संघ और रेडियो स्टेशन का योगदान महत्त्वपूर्ण है, विशेषतः जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि सरकार की तरफ से भारतीय भाषाओं के संपोषण के लिए कोई प्रत्याभूति नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र में हिंदी की कोई खास उपयोगिता न होने से इस भाषा का लोप हो सकता था। किंतु धार्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में इसकी प्रतिष्ठा होने से और 'हिंदवाणी' तथा संघ के सतत प्रयत्न से यह स्थिति टल गई। यद्यपि ये प्रयास सफल होते दिखते हैं, तथापि अभी बहुत प्रगति अपेक्षित है।

दक्षिण अफ्रीका की मिट्टी में हम पले हैं। इसलिए दक्षिण अफ्रीका हमारी मातृभूमि है, परंतु भारत हमेशा हमारी सांस्कृतिक मातृभूमि रहा है और रहेगा। यह तो एक निर्विवाद तथ्य है कि हम हमेशा अपनी संस्कृति, भाषा और धर्म के भरण-पोषण के लिए भारतोन्मुख थे, होते हैं और रहेंगे। दक्षिण अफ्रीका की नवीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भारतीय संस्कृति के लिए द्वार खोल दिए हैं। यहाँ के हिंदी और संस्कृति प्रेमियों के लिए अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हो रही हैं। इनसे हम लाभान्वित हो रहे हैं। विश्व स्तर पर हिंदी की गरिमा स्थापित करना एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है, जिससे भारतेतर देशों में हिंदी प्रचार को प्रेरणा मिले। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हम हिंदीभाषी अपने ही देश और परिवेश में हिंदी भाषा में बोलें और उसका स्तर बढ़ाएँ।

अस्मिता और सांस्कृतिक मूल्य बिना मनुष्य खोखला बन जाएगा। इसलिए यदि हमें अपनी पहचान और अस्तित्व की परवाह है और संसार में उपयोगी, सफल और सामान्य बनना है तो भारतेंदु जी के भाव स्मरणीय एवं अनुकरणीय हैं :

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न उर को सूल।

Prof. Usha Devi Shukla
P.O Box 19238
Dormerton 4015
Durban
South Africa
Email: shukla@ukzn.ac.za

आधुनिक भाषाओं में हार की मध्य-मणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।

-गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर

7

त्रिनिडाड एवं टोबैगो में हिंदी : एक सर्वेक्षण

डॉ. कुमार महाबीर

कैरीबियन सागर में स्थित द्वीपीय देश त्रिनिडाड एवं टौबेगो में अनुबंधित मजदूरों के साथ लगभग 157 साल पहले हिंदी भाषा का प्रवेश हुआ। देश की तकरीबन 40 प्रतिशत आबादी की पुश्तैनी भाषा हिंदी है। देश की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत की खोज करनी हो तो उसका एक महत्त्वपूर्ण माध्यम हिंदी है।

त्रिनिडाड स्पेनी और त्रिनिडाड फ्रेंच क्रियोल की भाँति त्रिनिडाड भोजपुरी/हिंदी भी बहुसंख्यक आबादी की भाषा हुआ करती थी। पर आज यह केवल बूढ़े लोगों, जिनकी उम्र कम-से-कम 70 साल हो, द्वारा बोली जानेवाली भाषा बन गई है। ये बुजुर्ग जन भी छिटपुट रूप से ग्रामीण समुदायों में बिखरे पड़े हैं । उनके लिए हिंदी उनकी मातृभाषा है। आज त्रिनिडाड में सभी हिंदीभाषी हिंदी व त्रिनिडाड इंगलिश बोलते हैं। भारतीय समुदाय की तीसरी पीढ़ी के युवा सदस्य एकलभाषी हैं। अधेड़ उम्र के कुछ सदस्य अधकचरी हिंदी बोलते हैं और उस भाषा का मिले-जुले रूप में इस्तेमाल करते हैं। इन दोनों पीढ़ियों के हाथों हिंदी भाषा की शब्द संपदा और वाक्यों के व्याकरणीय विन्यास का भारी नुकसान हुआ है। भारतीय समुदाय में किशोरों का हिंदी ज्ञान तो खाने-पीने की चीजों, बरतनों, गीतों, स्थानों, समारोहों और रिश्ते-नाते बतानेवाले शब्दों तक ही सीमित है। इस दशा में जब तक कि सामाजिक-भाषिक चलन की दिशा मोड़ी नहीं जाती है तब तक लगता है कि देश में हिंदी बिलकुल लुप्त हो जाएगी; क्योंकि यह केवल बूढ़े हो चुके लोगों के बीच ही सिमटकर रह गई है। और ऐसे सभी लोग आज हाशिए पर हैं।

निःसंदेह हिंदी त्रिनिडाड व टौबेगो की द्वितीय भाषा है। त्रिनिडाडी अंग्रेजी की शब्दावली में भी इसकी अच्छी घुसपैठ है। नस्ल व जातियों के इतर देश के सभी नागरिकों की भाषा में हिंदी उपस्थित है। 'रोटी', 'साड़ी', 'दुलहिन' और 'नानी' जैसे शब्दों का प्रयोग सामान्य तौर पर किया जाता है। यह एक जीवंत भाषा है और फ्रांसीसी अथवा स्पेनी से अधिक बोली जाती है। किंतु विडंबना है कि अधिकांश वरिष्ठ विद्यालयों में ये दोनों विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। हिंदी की स्थिति विशेषतौर पर जटिल है, क्योंकि जो भारतीय जन यह कहते हैं कि वे इस भाषा के केवल कुछ शब्द ही जानते हैं वे भी अकसर धाराप्रवाह हिंदी बोलते दिखते हैं। त्रिनिडाड के सभी नागरिकों का रोजाना हिंदी भाषा से संपर्क होता है। घर में बड़े-बूढ़ों से उन्हें हिंदी में बातचीत करनी पड़ती है। पंडितों के उपदेश व भजन-कीर्तन हिंदी में सुनने पड़ते हैं। कैसेटों व सी.डी. प्लेयरों, लाउडस्पीकरों पर हिंदी गाने तथा संगीत सुनते हैं। इन सबके अलावा सिनेमा, वीडियो, टेलीविजन और रेडियो के माध्यम से भी वे हिंदी के संपर्क में आते हैं। हिंदी व भारतीय संस्कृति पर संगोष्ठियों, प्रतियोगिताओं, नाटकों, गीत व कवि सम्मेलनों का आयोजन भी होता रहता है। देश में दो रेडियो स्टेशनों से सप्ताह में आठ बार भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रसारण होता है। पाँच रेडियो स्टेशन चौबीसों घंटे और हफ्ते के सातों दिन भारतीय संगीत का प्रसारण करते हैं। त्रिनिडाड व टौबेगो टेलीविजन (टीटीटी) शनिवार को 'मस्ताना बहार' तथा/अथवा 'एम.टी.वी. इंडिया-चिट-ओ-चैट' का और रविवार को 'एम.टी.वी. इंडिया-मेड इन इंडिया' तथा 'इंडियन वैराइटी' का प्रसारण करता है। इसी तरह टी.वी. 6 शनिवार को 'म्यूजिक बॉक्स' व 'ओम नमः शिवाय' तथा रविवार को 'सितारे' तथा 'एम.टी.वी. इंडिया' का प्रसारण करता है।

त्रिनिडाड में हिंदी कैरोनी, कूवा, चौगुआनाज और सैन फर्नान्दो जैसे क्षेत्रों में बोली जाती हैं। इन क्षेत्रों में हिंदुओं व मुसलमानों की घनी आबादी है। त्रिनिडाड के लगभग दो-तिहाई भूभाग को 'हिंदी भाषी क्षेत्र' घोषित किया जा सकता है। किंतु

यह अपुष्ट अनुमान है, क्योंकि ईसाई भारतीयों की बड़ी आबादी भी हिंदी का पहली या दूसरी भाषा के रूप में इस्तेमाल करती है। इस कथन को उस सर्वेक्षण से भी बल मिलता है जिसे स्थानीय विश्वविद्यालय (यू.डब्ल्यू.आई.) ने सन् 1969 में प्राथमिक विद्यालय के बच्चों की भाषायी पृष्ठभूमि जानने के लिए किया था। इस सर्वेक्षण (कैरिंग्टन व अन्य 1974) ने स्पष्ट किया था कि प्राथमिक विद्यालयों के लगभग 46 प्रतिशत बच्चों का घरों में हिंदी से संपर्क होता था।

सन् 1910 में त्रिनिडाड की पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में भोजपुरी हिंदी शामिल की गई थी। सन् 1911 तक कनाडाई मिशन स्कूल की सभी शाखाओं में यह भाषा अनिवार्य विषय थी और शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रत्येक शिक्षक को उसे सीखना पड़ता था । किंतु विषय के रूप में यह अत्यंत सीमित थी। गाने व प्रार्थना में इसका उपयोग किया जाता था। आज भी हिंदी एक भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है, भले ही सीमित रूप से इसका पठन-पाठन किया जाता हो। सनातन धर्म महासभा (एस.डी.एम.एस.) के नियंत्रण में सभी प्राथमिक व उच्चतर विद्यालयों में इसका अध्ययन किया जाता है। भारतीय विद्या संस्थान (बी.वी.एस.) के 25 केंद्रों में लगभग 4000 विद्यार्थी हैं। उच्चतर स्तर पर दस सरकारी विद्यालयों में त्रिनिडाड एवं टौबेगो के हिंदी निधि न्यास की देखरेख में हिंदी पढ़ाई जाती है। सैकड़ों मंदिरों में भी छिटपुट व स्वैच्छिक रूप से हिंदी सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। सन् 1988 से भारतीय उच्चायोग तथा सेंट ऑगस्टाइन स्थित वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ाई जा रही है। कुछ त्रिनिडाडवासियों के लिए हिंदी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि सन् 1996 में पश्चिमी गोलार्ध में प्रथम हिंदी सम्मेलन वहीं आयोजित किया गया। यही नहीं, उसी वर्ष पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन का त्रिनिडाड में ही सफलतापूर्वक आयोजन किया गया।

रेडियो पर हिंदी का अध्यापन

त्रिनिडाड में हिंदी को रेडियो से पढ़ाने का प्रयत्न हुआ जिसकी गति कभी तेज तो कभी मंद रही ।

भारतीय प्रारूपवाले पाँच रेडियो स्टेशनों में से केवल 90.5 एफ.एम. के पास ही हिंदी भाषा का एक कार्यक्रम है, जबकि मसाला 101.1 के पास एक भी नहीं है। अन्य 91.1 एफ.एम., 103 एफ.एम. और 106 एफ.एम. पर एक निर्देश कार्यक्रम का प्रसारण होता था। पर अब इसका भी प्रसारण बंद है और इसे दुबारा शुरू करने की कोई योजना नहीं है। स्वर मिलन 91.1 पर स्थानीय प्राथमिक विद्यालय की शिक्षिका राजिन महाराज निर्माता व प्रस्तुतकर्ता थीं। सन् 1998 में संगीत 106 एफ. एम. पर फेलिसिटी (प्राथमिक) हिंदू विद्यालय की प्रशिक्षित शिक्षका सवी शिवशरण द्वारा निर्मित और प्रस्तुत हिंदी भाषा कार्यक्रम का आठ माह तक प्रसारण किया गया। इस कार्यक्रम का रोजाना एक बार प्रसारण किया जाता था। सोमवार से शुक्रवार तक शाम 5:30 से 6:00 बजे तक यह कार्यक्रम प्रसारित होता था, जब परिवार के सभी सदस्य साथ बैठकर भोजन कर रहे हों। 103 एफ.एम. पर हिंदी कार्यक्रम का शीर्षक था 'हिंदी सीखें'। इसका प्रसारण व प्रस्तुतीकरण पंडित रणधीर महाराज द्वारा किया जाता था। सन् 1995 से यह कई साल तक चलता रहा। पाँच-पाँच मिनट के स्लॉट में इसका दिन में तीन बार प्रसारण होता था- सुबह सवा सात (7:15) व सवा दस (10:15) बजे तथा शाम को साढ़े चार (4:30) बजे। फिर इसका प्रसारण केवल दो बार होने लगा और अंत में बंद ही हो गया। रणधीर व राजिन कभी-कभार यू.डब्ल्यू.आई. सेंट ऑगस्टाइन में हिंदी के विजिटिंग प्रोफेसर वी.आर. जगन्नाथन के साथ रेडियो 106 और फिर 103 पर कार्यक्रम का आयोजन किया करते थे। जब जगन्नाथन देश छोड़कर चले गए तो रणधीर ने कार्यक्रम को चलाया, जो सुबह व शाम को पाँच-पाँच मिनट के स्लॉट में प्रसारित होता था। इसके लक्षित श्रोता थे स्कूल व दफ्तर आने-जाने वाले लोग, जो सफर में रेडियो सुनते हैं। तीन मिनट का हिंदी शिक्षा कार्यक्रम 90.5 पर सुबह साढ़े नौ (9:30) व साढ़े दस (10:30) बजे रोजाना प्रसारित किया जाता है।

भारतीय प्रारूपवाले पाँच रेडियो स्टेशनों में से केवल 90.5 एफ.एम. के पास ही हिंदी भाषा का एक कार्यक्रम है, जबकि मसाला 101.1 के पास एक भी नहीं है। अन्य 91.1 एफ.एम., 103 एफ.एम. और 106 एफ.एम. पर एक निर्देश कार्यक्रम का प्रसारण होता था। पर अब इसका भी प्रसारण बंद है और इसे दुबारा शुरू करने की कोई योजना नहीं है।

विदेशी भाषा का रेडियो के माध्यम से प्रशिक्षण देने के

इच्छुक शिक्षक इस माध्यम विधि में प्रशिक्षित होना चाहिए। उन्हें उन पाठ्यक्रम डिजाइनों व शिक्षण विधियों का उपयोग करना सीखना होता है जो इस माध्यम के अनुकूल होते हैं। अधिकांश मंदिरों व अन्य शिक्षण केंद्रों के शिक्षकों की भाँति इन रेडियो कार्यक्रमों में भी प्रशिक्षक स्थानीय त्रिनिडाड निवासी ही थे। हिंदी पढ़ाने के लिए उनकी एकमात्र योग्यता केवल इतनी थी कि उन्होंने दो-तीन साल तक अंशकालिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। राजिन महाराज (91.1 एफ.एम. व 103 एफ.एम.) और हाइदी रामभरोसे (90.5 एफ.एम.) जैसे कुछ प्रशिक्षकों ने कुछ माह तक भारत में अध्ययन किया। राजिन सवी (103 एफ.एम.) प्रशिक्षित प्राथमिक/आरंभिक शिक्षक हैं। प्रोफेसर जगन्नाथन एकमात्र अपवाद थे, जो मूल हिंदीभाषी हैं और विश्वविद्यालय में 1993-1996 के दौरान विजिटिंग व्याख्याता थे। जब कभी भी वह उपस्थित होते, तो कार्यक्रमों में सहभागियों के साथ भाग लेते थे।

स्पष्ट है कि रेडियो पर विदेशी भाषा के अध्यापन की अपनी विशेष चुनौतियाँ होती हैं। त्रिनिडाड के सभी रेडियो कार्यक्रमों में निर्माताओं ने प्रशिक्षण सत्रों को अधिकाधिक इंटरएक्टिव बनाने का प्रयत्न किया। इसके लिए प्रशिक्षक को प्रसारण के दौरान स्टूडियो में अन्य व्यक्तियों से बातचीत करने व उन्हें पढ़ाने के लिए कहा गया। प्रशिक्षण प्रारूप को स्टूडियो में ही कक्षा का स्वरूप दिया गया। निजमुद्दीन कादिर, मनवंती चरण, राजिन महाराज व रणधीर महाराज ने इन रेडियो पाठशालाओं में 'विद्यार्थियों' की भूमिका निभाई। जब प्रोफेसर जगन्नाथन भारत लौट गए तो रणधीर व राजिन ने प्रशिक्षकों की भूमिका अपना ली। रशीदा मुसाई, जानकी व रेणुका बलदेव सिंह तथा देवकी हेरीलाल ने स्टूडियो में 101 छात्रों की भूमिका अपना ली। 90.5 एफ.एम. पर किरण महाराज व हाइदी रामभरोसे ने क्रमशः छात्र व शिक्षक की भूमिका निभाई। पाठशाला परिवेश में लचीली परिस्थिति का निर्माण किया, जिसमें रटकर व दुहराकर अभ्यास किया गया। इसका नाटकीय रूप से शक्तिशाली प्रभाव पड़ा। कभी-कभार कार्यक्रम के श्रोताओं को प्रसारण के दौरान फोन करने के लिए बोला गया। इससे भी दूरस्थ छात्रों को भाषा बोलने का अभ्यास करने का अवसर मिला। साथ ही प्रशिक्षकों को भी अपनी कुशलता के बारे में श्रोताओं की राय जानने का अवसर मिला। इन कार्यक्रमों में फोन करने की शुरुआत से शिक्षक-प्रशिक्षु के बीच द्विमार्गी संवाद स्थापित होने लगा, जो विदेशी भाषा के प्रशिक्षण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दूर अथवा तकनीकी प्रशिक्षण व पाठशाला प्रशिक्षण के बीच व्यक्तिगत प्रशिक्षण एक प्रमुख अंतर है।

रेडियो पर अधिकांश हिंदी भाषा कार्यक्रमों में शब्द-भंडार बढ़ाने पर बल दिया जाता है। संगीत 106 एफ.एम. में सवी शिवशरण तथा 90.5 एफ.एम. पर हाइदी रामभरोसे घरेलू व स्थानीय स्तर पर प्रयुक्त शब्दों को सिखाती थीं। वे रिश्ते-नाते बतानेवाले शब्दों, वर्तमान उत्सवों, धार्मिक समारोहों, खाना पकाने के बरतनों तथा दैनिक भोजन का उदाहरणों के रूप में उपयोग कर श्रोताओं का हिंदी शब्द-भंडार बढ़ाती थीं; क्योंकि मुख्यतः जब शब्दावली सिखाई जाती थी तो यह उम्मीद नहीं की जाती थी कि प्रशिक्षु हिंदी में पारंगत होंगे। हालाँकि इस उपाय से प्रशिक्षुओं का हिंदी से परिचय हो जाता था और वे और अधिक सघन अध्ययन के लिए तैयार हो जाते थे । प्रोफेसर जगन्नाथन, रणधीर व राजिन द्वारा तैयार कार्यक्रम शब्दावली से आगे जाकर व्याकरण, क्रियारूप तथा शब्द लिंग भी सिखाते थे। सभी कार्यक्रमों में लोकप्रिय नए-पुराने गीतों के पदों के अनुवाद किए जाते थे तथा इन पदों के निश्चित शब्दों व भंगिमाओं के उपयोग को चित्रित भी किया जाता था।

किसी को भी शब्द-भंडार पर जोर देने के तरीके, विशेषकर रेडियो 90.5 (और पूर्व में रेडियो 106) पर, को खारिज करने में शीघ्रता नहीं दिखानी चाहिए। बड़ी संख्या में परीक्षणात्मक अनुसंधान दरशाते हैं कि इस विधि से विद्यार्थियों को विदेशी भाषा सीखने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। शब्द-भंडार सभी भाषाओं के अनिवार्य अवयव हैं, और शायद भाषा सीखने में उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्यक्ष रूप से शब्द-भंडार सीखने में छात्र ऐसे अभ्यास व गतिविधियों को करते हैं जिनसे उनका ध्यान शब्द-भंडार पर केंद्रित हो जाता है। ऐसे अभ्यासों में शब्द-रचना, संदर्भों से शब्द का अनुमान लगाना, सूचियों में शब्दों को सीखना तथा शब्द भंडार खेल शामिल हैं। प्रोफेसर जगन्नाथन द्वारा प्रेरित कार्यक्रमों में अलग-अलग शब्दों को जोड़कर सार्थक संदर्भों अथवा वाक्यों की रचना करना भी सिखाया जाता था।

आज ये कार्यक्रम दुर्भाग्यवश बंद हो गए है, किंतु इन्हें फिर से आरंभ करने के लिए हिंदी प्रशिक्षक दबाव डाल रहे हैं ।

Dr Kumar Mahabir
10 Swami Avenue, Don Miguel Road,
San Juan, Trinidad & Tobago, West Indies
Tel: (868) 674-6008
Email: gmahabir@gmail.com,
kumarmahab@hotmail.com

8

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी

अखिलेश सुमन

सबसे बड़ा लोकतंत्र, घोषित परमाणु शक्ति और विश्व की दूसरी बड़ी आबादी होने के कारण, भारत को आज के विश्व में अपने औचित्यपूर्ण स्थान को हासिल करना है। हमें संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सीट हासिल करनी है और इस प्रकार हमें अपनी राष्ट्रीय भाषा को यू.एन.ओ. की राजभाषाओं में से एक के रूप में घोषित भी करवाना है।

लोकतांत्रिक राज्य और सुदृढ़ व्यवहार्य अर्थव्यवस्था होने के कारण हम एक विश्व शक्ति के मानदंड को पूरा करते हैं, परंतु एक कमी भाषा की है। हमारे पास हमारी अंतरर्राष्ट्रीय पहचान के प्रदर्शन के लिए एक भाषा होनी चाहिए। अब तक संयुक्त राष्ट्र में हमारी कोई भाषा नहीं है, परंतु अब जबकि संयुक्त राष्ट्र में सुधार का क्रम चल रहा है, हमें एक मामला प्रस्तुत करना है। भाषा राजनीतिक/सांस्कृतिक विश्व में हमारी पहचान को दरशाने का एक माध्यम/एक तंत्र है और हमें इसके लिए कार्य करना है। विश्व मानचित्र में औचित्यपूर्ण स्थान हासिल करने के लिए यह हमारी लड़ाई का हिस्सा है।

एक भाषा तंत्र के माध्यम से हम विश्व के सामाजिक-सांस्कृतिक मानचित्र में अपनी अलग उपस्थिति दर्ज करेंगे। यू.एन.ओ. की एक राजभाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने के प्रयास को तेज करने की हमें आवश्यकता है। शुरुआती दौर में यू.एन.एस.सी. में एक स्थायी सीट पाने के लिए हमारे प्रयास का यह हिस्सा है, और इसके साथ ही इसके लिए एक पृथक् कार्य का शुभारंभ किया गया है। यदि हम स्थायी सदस्य के रूप में चुन लिये जाते हैं, तो यू.एन.ओ. में हिंदी को शामिल करने के लिए अलग कदम उठाया जाएगा। वास्तविकता यह है कि भारत जैसा देश अब इस प्रश्न से बच नहीं सकता है। अपनी एक भाषा के बिना स्थायी सीट चाहनेवाले एक देश की बात तकरीबन बेतुकी और अतार्किक लगती है। हमें अपना प्रयास अविलंब प्रारंभ करना है, और देखना है कि राष्ट्रीय गौरव के हितार्थ अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर तथा बहुभाषायी एवं बहुसांस्कृतिक विश्व में भारतीयता के दावे के लिए हिंदी किस तरह से अपरिहार्य और अनिवार्य है।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी हमें क्यों आवश्यक है

यू.एन.ओ. के सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य के रूप में उपस्थित प्रत्येक सदस्य देश की यू.एन.ओ. की राजभाषाओं में एक अपनी भाषा है। यहाँ तक कि सुरक्षा परिषद् की सदस्यता नहीं रखनेवाले देशों ने यू.एन.ओ. में अपनी भाषाएँ स्वीकृत करवाई हैं। अरबी और स्पेनिश ऐसी दो भाषाएँ हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया किया गया है, जबकि संयुक्त अरब अमीरात या सऊदी अरब या स्पेन में से कोई भी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का सदस्य नहीं रहा है। अरबी या स्पेनिश अथवा फ्रेंच या रूसी से अधिक लोग भारत की हिंदी बोलते हैं या उनकी कुल आबादी से अधिक लोग एक साथ रहते हैं। इसलिए अधिकांश भारतीयों की यह प्रबल धारणा है कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में शामिल होने के काबिल है। एक देश के लिए भाषा का होना, बाहरी सांस्कृतिक आक्रमण से अपने-आपको बचाने तथा अपनी राष्ट्रीयता को निष्प्रभावित होने से बचाने के लिए एक परमाणु प्रक्षेपास्त्र के रूप में है। जब भारत ने सन् 1998 में पोखरन में अपने परमाणु बम का परीक्षण किया, तो इस पर चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार हुई। जिसमें वे भी शामिल थे, जिन्होंने इतिहास में पहली बार परमाणु बम का प्रयोग किया। परंतु इसके विपरीत इससे आप्रवासी भारतीयों या भारतीय मूल के लोगों को काफी गर्व महसूस हुआ। बाहर रहनेवाले किसी भी भारतीय से बात करें तो आप पाएँगे कि भारत ने अच्छा किया और विश्व को दिखा दिया कि वह क्या है! इसने समस्त भारतीयों के लिए आदरपूर्ण सम्मान सुनिश्चित किया, जिन्हें पहले साँपों तथा बिछुओं का राष्ट्रिक समझा जाता था। इसी तरह की स्थिति हिंदी के मामले में है। कई लोगों द्वारा भारत में इसका विरोध किया जाता है, परंतु एक बार यह संयुक्त राष्ट्र की राजभाषा सूची में

शामिल हो जाए तो आप विश्व में अपने-आपको विशेष महसूस करने लगेंगे।

परमाणु प्रौद्योगिकी के अनुसंधान और विकास पर रोक लगाने के लिए दबाव बनाने हेतु बहुत से देशों ने विभिन्न आयातों और निर्यातों पर व्यापारिक प्रतिबंध लगाया था। बहुतों ने भारत से कहा कि पोखरन में जो किया गया, उसके शीघ्र प्रतिकार स्वरूप भारत को अप्रसार संधि अथवा व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि पर हस्ताक्षर कर देने चाहिए। भारत ने ऐसे दबावों के समक्ष, झुकना उचित नहीं समझा और अंत में भारत को एक ऐसी शक्ति मान लिया गया जो अपने मूलभूत राष्ट्रीय सिद्धांतों के मामलों में समझौतापरस्त नहीं है। अब समय आ गया है, जब संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को शामिल किए जाने के लिए हमें अपनी गैर-समझौता वाली मन:स्थिति दिखा देनी चाहिए।

अब विश्व में हर दूसरा देश भारत के साथ नीतिगत संबंध बनाना चाहता है, क्योंकि हम वास्तव में विश्व की आपेक्षिक शक्ति हैं। विश्व की एक राष्ट्रीय शक्ति अपनी भाषा के बिना अपनी पहचान भला कैसे दिखा सकती है?

भारत के 50 प्रतिशत (500 मिलियन) से अधिक लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं और 72 प्रतिशत (720 मिलियन) से अधिक लोग हिंदी समझ सकते हैं। ब्रिटिश काउंसिल की एक रिपोर्ट के अनुसार, 33 करोड़ 60 लाख लोग अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि हिंदी को अपनी मातृभाषा माननेवाले 38.68 करोड़ हैं।

भारत की भाषा के रूप में हिंदी

भारत के 50 प्रतिशत (500 मिलियन) से अधिक लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं और 72 प्रतिशत (720 मिलियन) से अधिक लोग हिंदी समझ सकते हैं। ब्रिटिश काउंसिल की एक रिपोर्ट के अनुसार, 33 करोड़ 60 लाख लोग अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि हिंदी को अपनी मातृभाषा माननेवाले 38.68 करोड़ हैं। हिंदी संस्कृत, उर्दू और बहुत सी अन्य स्थानीय बोलियों के गुणों को साथ लेकर विकसित हुई है और इसमें माधुर्य, लचीलापन तथा ढलने की क्षमता है और यह सरलता से समझी जा सकती है।

हिंदी का लचीलापन ही इसकी ताकत और इसका सौंदर्य है। जब कोई पंजाबी किसी अन्य भाषा में कुछ कहना चाहता है तो हिंदी ही उसे सवार्धिक उपयुक्त लगती है। गुजराती हिंदी से मिलती-जुलती ही है। निश्चित तौर पर, कोई गुजराती हिंदी को अपनी भाषा जैसा ही मानता है। मराठी और हिंदी दोनों देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं।

उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगाली, उड़िया, नेपाली इत्यादि भाषाओं के बोलनेवाले लोगों को हिंदी काफी स्वतंत्रता देती है, ताकि वे इसे (हिंदी को) अपने शैली में बोल सकें। कोई भी व्यक्ति भारत में यात्रा करते समय बातचीत करने में हिंदी को सरल एवं उपयोगी पाता है।

हिंदी मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, झारखंड, इत्यादि प्रदेशों की राजकीय भाषा है। इनमें भारत के लगभग 600 मिलियन लोग रहते हैं। अन्य राज्यों में जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा, असम इत्यादि में भी यह बहुत व्यापक रूप से बोली जाती है। कुल 300 मिलियन अहिंदी लोग भी हिंदी को समझ सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं। आप बंगलोर में हों या हैदराबाद में, हिंदी में बातचीत करना कोई समस्या नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी भारत की अन्य भ्रातृवत् भाषाओं की संपूरक

भारत के कुछ राज्यों के लोगों तथा विदेशों में रहनेवाले उन्हीं राज्यों के लोगों के मन में प्रायः यह डर रहता है कि यदि हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में स्वीकार कर ली जाती है तो देश के अन्य भाषा-भाषी लोगों के ऊपर हिंदी हावी हो जाएगी। परंतु ऐसा नहीं है। आंतरिक स्तर पर भाषा राज्य का मामला है और रहेगा भी, जब तक कि नीचे से यह स्वीकार न कर लिया जाए, तब तक केंद्रीय सरकार के किसी आदेश के द्वारा हिंदी थोपे जाने की कोई संभावना नहीं है। यहाँ तक कि करुणानिधि जैसे राजनीतिक नेता ने भी कहा है कि वे हिंदी के विरुद्ध नहीं हैं। अतः हिंदी को थोपे जाने का भय सर्वथा निराधार है। संयुक्त राष्ट्र में हिंदी देश के

लिए राजनीतिक और सांस्कृतिक उद्देश्य से कार्य करेगी।

हिंदी के संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनने से हमें एक राष्ट्रीय पहचान मिलेगी। यदि हम यह दरशाने में असफल होते हैं या अन्यथा सोचते हैं तो हम युद्धरत भाषायी गुटोंवाले एक ऐसे देश की तसवीर प्रस्तुत करेंगे जो एक-दूसरे को तबाह कर रहे हैं। इस मसले पर कोई तमिल अथवा बंगाली उत्तर भारतीय व्यक्ति से भिन्न विचार रख सकता है, परंतु प्रत्येक व्यक्ति, जिसे इस देश के बाहर जाना जाता है, उसे भारतीय के नाम से ही जाना जाता है और भारत की राष्ट्रीय भाषा हिंदी है। हिंदी हमारी एकता की प्रतीक है और हमें विश्व मंच पर इसकी दावेदारी रखनी होगी। जब रूसी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया, तब सोवियत संघ में रहनेवाले सभी व्यक्ति रूसी भाषी नहीं थे तथा सोवियत संघ के अनेक राज्य अपनी भाषाओं का उपयोग कर रहे थे। अभी भी रूसी भाषा बोलनेवाले लोगों की संख्या हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या से काफी कम है।

हिंदी हमारी एकता की प्रतीक है और हमें विश्व मंच पर इसकी दावेदारी रखनी होगी। जब रूसी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया, तब सोवियत संघ में रहनेवाले सभी व्यक्ति रूसी भाषी नहीं थे तथा सोवियत संघ के अनेक राज्य अपनी भाषाओं का उपयोग कर रहे थे। अभी भी रूसी भाषा बोलनेवाले लोगों की संख्या हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या से काफी कम है।

उप-महाद्वीप की भाषा के रूप में हिंदी

हिंदी एक बहुराष्ट्रीय भाषा है और हिंदी बोलनेवालों की संख्या अरबी, जिसे अंत में संयुक्त राष्ट्र संघ की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किया गया, बोलनेवालों से अधिक है। भारतीय राजूदत डॉ. रमेश चंद्रा ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की वकालत करते हुए बहुभाषावाद की कार्यसूची मद 32 पर संयुक्त राष्ट्र महाधिवेशन में 21 दिसंबर, 2001 को इस तथ्य की पुष्टि की। यहाँ उनके भाषण को उद्धृत कर सकते हैं, ''उदाहरण के लिए हिंदी भारत में एक बिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है और शेष दक्षिण एशिया तथा भारतीय डायस्पोरा में लाखों लोगों द्वारा समझी जाती है। उदाहरण के लिए हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या फ्रेंच, रूसी और अरबी बोलनेवालो से अधिक है, परंतु हिंदी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा नहीं है। भारतीय संसद् में इससे संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं और यद्यपि हमने स्पष्ट किया कि प्रत्येक अतिरिक्त आधिकारिक भाषा से सम्मेलन-सेवाओं की लागत में काफी वृद्धि हो जाती है, परंतु हमें नहीं लगता कि इससे हमारे सांसद संतुष्ट होते होंगे, क्योंकि उन्हें लगता है कि छह आधिकारिक भाषाओं का चयन मनमाने ढंग से किया गया है, और उन्हें उन भाषाओं से बेहतर दर्जा दिया गया है जो विश्व भाषा बनने की समान अथवा बेहतर दावेदार हैं।''

हिंदी न सिर्फ मुख्यतः भारत में बोली जाती है बल्कि यह इस क्षेत्र के अन्य देशों के लिए संपर्क भाषा है। यहाँ तक कि अन्य महाद्वीपों के लोग भी अपने-आपको हिंदी से जोड़ते हैं। जहाँ तक सार्क का प्रश्न है, हिंदी एकमात्र भाषा है जो इस क्षेत्र के लोगों को एक साथ बाँधती है। दक्षिण एशिया की कुल जनसंख्या विश्व जनसंख्या का 25 प्रतिशत है। परंतु अफसोस की बात है कि किसी भी दक्षिण एशियाई भाषा को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने का विचार नहीं किया गया है। अभी अंग्रेजी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और अरबी संयुक्त राष्ट्र की भाषाएँ हैं। ये विश्व के विभिन्न भागों की गौरवशाली परंपराओं की भाषाएँ हैं। परंतु दुःख की बात है कि इसके अन्य गौरवशाली भाग अर्थात् सार्क क्षेत्र की कोई भी भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं है।

50 प्रतिशत (500 मि.) से अधिक भारतीय हिंदी बोलते हैं और 72 प्रतिशत (720 मि.) से अधिक भारतीय हिंदी समझ सकते हैं। चीनी भाषा के बाद यह विश्व में सर्वाधिक उपयोग की जानेवाली भाषा है। हिंदी को चाहने और इसका उपयोग करनेवाले लोग भारत, फिजी, मॉरीशस, सिंगापुर, अमेरिका, यू.के., पाकिस्तान इत्यादि देशों सहित विश्व के सभी भागों में हैं। यदि हम उन लोगों को गिनें जो हिंदी समझ सकते हैं तथा हिंदी फिल्में देखना और हिंदी संगीत सुनना पसंद करते हैं, तो यह संख्या काफी बढ़ जाएगी। अभी संपूर्ण विश्व में एक बिलियन से अधिक लोग हिंदी समझ सकते हैं।

एक संभावित विश्व राजनीतिक शक्ति के रूप में भारत

यदि भारत एक महाशक्ति बनने का स्वप्न देखता है तो इसके पास अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी कहने हेतु एक भाषा होनी चाहिए। कोई भी देश अपनी स्वयं की एक भाषा, अपने इतिहास और संस्कृति के बिना एक महाशक्ति बनने की बात नहीं सोच सकता है। हिंदी एक भाषा है, जो हमें हमारी भारतीय पहचान प्रदान करती है। यदि हम अपनी स्वयं की भाषा के लिए सम्मान करते हैं तथा लड़ते हैं तो दूसरे देश भी हमारी राष्ट्रीयता को सम्मान देंगे, जो सदियों तक दासता में रही थी, और दासता के विरुद्ध लड़ाई संयोगवश राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अखंडता के युग में बदल गई। महात्मा गांधी अकसर कहा करते थे कि हम पश्चिमी पृष्ठभूमि से अलग एक राष्ट्र हैं, और नेहरू जी ने कहा था कि हमारे बीच अनेकता में एकता है। परंतु वे क्रांतिकारी दिन थे, जब हमें क्षेत्रीय विभेदों को फिर से सुलझाना था, परंतु गतिशील लोकतंत्र के साथ एक अरब से अधिक की आबादी को छूने की ओर तेजी से अग्रसर देश में संचार तंत्रों को संगत बनाने का लक्ष्य सदैव सामने था। अब विश्व परिदृश्य पर हमारे विकास और गति की यह स्थिति है कि एक महाशक्ति बनने का हमारा प्रयास हमारे गौरवपूर्ण अस्तित्व के लिए वास्तव में एक खोज है, जो कभी तानाशाहों के इतिहास के पन्नों में खो गया था और कभी खंडित हो गया था। अब हमें पीछे देखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भविष्य हमें अपने लिए नई नीति अपनाने के लिए आमंत्रित कर रहा है। अब हमारी गति में वह समय आ गया है कि जब हमें अपने लिए लाभ हासिल करने हेतु धर्मसम्मत वर्चस्व के अंतरराष्ट्रीय अलगाववाद से लड़ने के लिए राजनीतिक हथियार के रूप में हिंदी भाषा को चुनना है। यू.एन.ओ. में हिंदी भाषा को शामिल किए जाने से समग्र स्तर पर यू.एन.ओ. की गतिविधियों से हम संबद्ध रह पाएँगे तथा हमारे लोग यू.एन.ओ. के कार्यों में प्रत्येक स्तर पर उपस्थित रह सकेंगे।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में कैसे लाना है?

सुरक्षा परिषद् में परिवर्तन के प्रावधान से पूर्व ही विश्व की अन्य आधिकारिक भाषाओं के साथ एक नई भाषा को संयुक्त राष्ट्र में लाने के बारे में प्रावधान किया गया है। एक नई भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा में कार्य संचालन नियमावली के नियम 51 में संशोधन करने की आवश्यकता होगी। यहाँ यह भी बताना आवश्यक होगा कि संयुक्त राष्ट्र के संपूर्ण बजट में भारत का योगदान केवल 1.85 प्रतिशत है। इसलिए नई भाषा के लिए नियमित बजट को बढ़ाने की आवश्यकता होगी। सदस्य देशों को भी तद्नुसार अपना अंशदान बढ़ाना होगा। इसलिए अधिकतर सदस्य ऐसे प्रस्ताव को अपना समर्थन देने में निष्क्रिय रहते हैं।

दिसंबर 1998 के एक आकलन के अनुसार, भारत सरकार को प्रथम तीन वर्षों के लिए 19.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर के व्यय का न्यूनतम बोझ प्रारंभ में उठाना होगा। इसमें सामान्य मुद्रा स्फीति दर तथा अन्य व्यय शामिल करें तो यह इस समय 13 मिलियन अमेरिकी डॉलर के लगभग प्रतिवर्ष आता है, जिसके व्यय की उम्मीद है। सन् 1998 के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र संघ को हमारा वार्षिक अंशदान 3.86 मिलियन अमेरिकी डॉलर प्रतिवर्ष था। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह अनुमानित व्यय संयुक्त राष्ट्र को किए जा रहे हमारे नियमित व्यय से अधिक होगा और उस राशि से अधिक आएगा।

(प्रवासी संसार, जुलाई-सितंबर 2007 से साभार)

दुनिया-भर में शायद ही ऐसा विकसित साहित्य हो, जो सरलता में और अभिव्यक्ति की क्षमता में हिंदी की बराबरी कर सके।

-फादर कामिल बुल्के

9

अमेरिका में हिंदी के बढ़ते चरण

डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक'

यूँ तो अमेरिका में कुछ भारतीयों की उपस्थिति का उल्लेख यहाँ-वहाँ 19वीं शताब्दी से पहले भी मिलता है, किंतु आधिकारिक रूप से अमेरिका में प्रवासी रूप में भारतीयों का आगमन 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में आरंभ हुआ। महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयंती पर आमंत्रित कुछ भारतीय सैनिकों को कनाडा की यात्रा पर भी भेजा गया। अधिकांशतः वे पंजाबी थे। कनाडा की धरती उन्हें बहुत पसंद आई। विशाल देश और आबादी कम! पंजाब की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश सरकार की नीतियों से इतनी बिगड़ चुकी थी कि युवक देश छोड़कर भाग जाना चाहते थे। कनाडा में उन्हें प्रगति की संभावनाएँ लगीं। उनमें से कुछ सेना की नौकरी से अवकाश पाकर कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका आकर बसने लगे। सन् 1910 तक उनकी संख्या दस हजार हो गई। उनमें नब्बे प्रतिशत सिख थे। उनमें बहुत कम पढ़े-लिखे थे।

उनके आगमन से कनाडा-अमेरिका में तहलका मच गया। 'हिंदू आक्रमण', 'असांस्कृतिक लोगों का आक्रमण', 'गोरी सभ्यता में प्रदूषण', 'सिर पर गंदे चीथड़े पहननेवाले अपसंस्कृतिवाले', 'कनाडा संस्कृति में कभी मूलधारा में न आनेवाले', 'पशुओं की भाँति घरों को बाड़े में बदलनेवाले', 'जीवन-स्तर को गिरानेवाले' ये लोग कनाडा-अमेरिका को 'शुद्ध' गोरों का देश बनाए रखनेवाले लोगों को फूटी आँखों भी न सुहाए। उनके कनाडा/अमेरिका में प्रवेश रोकने के लिए कानून बने, उन्हें नागरिकता से वंचित रखने की घोषणाएँ हुईं, उनके विरोध में समाचार-पत्रों ने घृणा भरे लेख लिखे। उनके विरोध में दंगे हुए। उन पर रात में आक्रमण कर कच्छे-बनियान में ही बस्तियों से भगाया गया। श्वेत समाज और उनके बीच में नस्लवाद की एक अभेद्य प्राचीर खड़ी कर दी गई।

और जिनके साम्राज्य की सुदृढ़ता और रक्षा के लिए वे प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार थे, उस ब्रिटिश सरकार ने उनकी सहायता के बजाय जासूस छोड़े कि कहीं उन्हें अमेरिका में 'आजादी की भावना का रोग' न लग जाए। अमरीकी सरकार को उनकी गतिविधियों की सूचना देकर उन पर निगरानी रखने पर जोर दिया।

स्वर्ग में जाकर वे नरक भोगने पर विवश थे।

ऐसे में उन्हें कुछ स्वयं, कुछ लाला हरदयाल जैसे बौद्धिकों और विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा पा रहे छात्रों की प्रेरणा से यह अनुभूति होनी शुरू हो गई कि उनकी नारकीय अवस्था का मूल कारण उनका गुलाम देश से आना है-'जब तक भारत पराधीन रहेगा, भारतीयों का कोई सम्मान नहीं मिल सकता।' और इसी भावना ने उनके मन में भारत को 'संपूर्ण आजादी' दिलाने की लौ जगाई। हताशा का स्थान क्रांति ने लिया। ओरेगन राज्य के एस्टोटिया गाँव में अप्रैल 1913 में 'गदर पार्टी' का जन्म हुआ, जिसका उद्देश्य था-सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत को स्वतंत्र कराना।

1 नवंबर, 1913 को सांफ्रांसिस्को स्थित 'गदर पार्टी' के साप्ताहिक मुखपत्र 'गदर' का प्रथम अंक निकला। और यह अंक, जिसके संपादक थे पार्टी के प्रथम सचिव लाला हरदयाल, अंग्रेजी में नहीं, पंजाबी में नहीं, बल्कि उर्दू में था, यानी उसकी लिपि फारसी-अरबी की थी, पर भाषा बोलचाल की हिंदी। यूँ बाद में कुछ अंक देवनागरी में भी निकले तथा समानांतर रूप से पंजाबी में भी। इस प्रकार, 'पराई भूमि में अपनी भाषा में स्वदेश की आजादी का संग्राम' शुरू हुआ।

यानी हिंदी बनी संघर्ष की भाषा।

और उसको मुक्तभाव से मिला प्रवासी भारतीयों के हर धर्म और वर्ग का समर्थन और विपुल धन। हजारों की संख्या में छपनेवाले इस पत्र को विश्व के कोने-कोने में भेजा जाता था। 'संपूर्ण क्रांति, संपूर्ण आजादी, संपूर्ण बलिदान'। इसी पत्र का

प्रभाव था कि प्रथम विश्वयुद्ध में अपनी लाखों की कमाई छोड़कर भी श्रमिक-किसान वर्ग के हजारों लोग सशस्त्र क्रांति की राह में अमेरिका छोड़कर भारत चले गए।

'गदर' पत्र सचमुच जन-क्रांति का पत्र था। उसमें एक ओर लाला हरदयाल के गहन चिंतन के लेख थे, सावरकर की पुस्तक '1857 भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रही थी, तो दूसरी ओर जनकवियों की देशभक्ति से ओत-प्रोत वीर रस की कविताएँ। 'भारत-भारती' की भाँति उनमें एक ओर अतीत की गौरव-गाथा थी, वर्तमान की दयनीय अवस्था का चित्रण था, तो दूसरी ओर भावी भारत के निर्माण के लिए बलिदान/त्याग का उद्‌बोधन भी था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इतना निर्भीक, इतना प्रेरणाप्रद और कोई पत्र न था, जिससे ब्रिटिश सरकार की नींद हराम हो गई थी। 'गदर पार्टी' के अनेक सदस्यों को फाँसी हुई, अनेक कालेपानी की दीर्घकालीन यातनाओं से गुजरे, घरों में नजरबंद रहे तथा संपत्तियों से वंचित किए गए।

'गदर' नियमित रूप से सन् 1917 तक निकला। फिर कभी-कभी। हिंदी पत्रकारिता का वह अद्वितीय काल था। 'देशभक्ति' के गीतों के संकलन भी निकले, पंजाबी में 'गदर दी गूँज' के कई भाग छपे, और 'गुलामी का जहर', 'नए युग के नए आदर्श' जैसी चिंतनशील रचनाएँ भी इस काल की देन थीं।

सत्यदेव परिव्राजक भी इसी समय अमेरिकी समाज का विश्लेषण करते हुए ग्रंथ लिख रहे थे।

'गदर' नियमित रूप से सन् 1917 तक निकला। फिर कभी-कभी। हिंदी पत्रकारिता का वह अद्वितीय काल था। 'देशभक्ति' के गीतों के संकलन भी निकले, पंजाबी में 'गदर दी गूँज' के कई भाग छपे, और 'गुलामी का जहर', 'नए युग के नए आदर्श' जैसी चिंतनशील रचनाएँ भी इस काल की देन थीं। सत्यदेव परिव्राजक भी इसी समय अमेरिकी समाज का विश्लेषण करते हुए ग्रंथ लिख रहे थे।

'गदर पार्टी' के योद्धाओं के भारत चले जाने पर जो भारतीय शेष बचे और नए तो आ नहीं रहे थे, उनका जीवन अमेरिका में वैधानिक रूप में भारतीयों को समान अधिकार, नागरिकता आदि दिलाने के लिए किए गए संघर्ष में बीत-सन् 1946 में ये अधिकार मिलने तक। इस वर्ष पारित हुए कानून के अंतर्गत भारतीय, जो अमेरिका में थे, नागरिकता का अधिकार तो पा गए, पर भारत से वैध रूप में केवल सौ व्यक्ति ही प्रतिवर्ष आप्रवासी के रूप में अमेरिका आ सकते थे। 1966 तक भी भारतीयों की संख्या अमेरिका में मात्र बीस हजार थी। उनमें अधिकांश पंजाबी थे।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में विश्व का पहला उपग्रह 'स्पुतनिक' रूस द्वारा छोड़ा गया। उसी के साथ अमेरिका में वैज्ञानिक जागृति के साथ शीतयुद्ध जीतने के लिए विश्व की उपेक्षित भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता की अनुभूति भी तीव्र हुई। कुछ 'उपेक्षित' भाषाएँ अनिवार्य श्रेणी में रखी गईं, शेष कम अनिवार्य। अनिवार्य भाषाओं में भारतीय भाषाएँ भी थीं हिंदी/उर्दू, तमिल आदि। इन भाषाओं का महत्त्व सामरिक था। यह तथ्य इसी से सिद्ध होता है कि जिस केंद्रीय मंत्रालय के अनुदान से इन भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की गई थी, वह रक्षा मंत्रालय था। शिक्षा विभाग उसमें सहयोगी था। आज भी क्षेत्रीय अध्ययन की व्यवस्था, जिसमें भारतीय क्षेत्रीय अध्ययन (इतिहास, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, कला-संस्कृति/संगीत अध्ययन आदि) भी शामिल हैं रक्षा-शिक्षा-खुफिया विभाग के अधिकारियों की समान्वित भागीदारी है। यूँ तो द्वितीय महायुद्ध के समय रोमन लिपि में कुछ वाक्यांश-पुस्तकें तैयार हुई थीं और यूनिवर्सिटी ऑफ पैंसिलवेनिया आदि कुछ संस्थानों में सिपाहियों को हिंदी सिखाई जा रही थी, पर व्यवस्थित रूप से पहली बार हिंदी-शिक्षण का कार्य छठे दशक के अंत में और सातवें दशक के आरंभ में शुरू हुआ। बीस विश्वविद्यालयों में भारी अनुदान के साथ न केवल शिक्षण की व्यवस्था की गई, वरन् पाठ्य-पुस्तकों को तैयार कराने के लिए भी प्रोत्साहन दिया गया। स्नातकोत्तर छात्रों को जो छात्रवृत्ति मिलती थी, वह असिस्टेंट प्रोफेसर की आय जितनी ही होती थी। इन सभी विश्वविद्यालयों में भारतीय राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र आदि के शिक्षण-शोध की व्यवस्था थी और हिंदी के छात्र इन्हीं विषयों के छात्र-शोधार्थी होते थे। हिंदी का ज्ञान भारत में जाकर शोध करने में सहायक सिद्ध होगा, ऐसी मान्यता थी। हालाँकि व्यवहार में ऐसा होता नहीं था। बड़ी शोधवृत्तियाँ लेकर भारत में 'फील्डवर्क' करनेवाले इन शोधार्थियों के शोध-सहायक रखने के लिए काफी मात्रा में अतिरिक्त अनुदान की व्यवस्था थी। बी.ए. की उपाधि पानेवाले छात्रों को एक विदेशी भाषा का ज्ञान

भी अनिवार्य होता था। उन भाषाओं में हिंदी भी शामिल कर ली गई थी। किंतु इस सबके बावजूद भी प्रथम और द्वितीय वर्ष के हिंदी छात्रों की संख्या छह-सात सौ (छात्रों) से अधिक नहीं हुई, सारे संयुक्त राज्य अमेरिका में पहले बीस वर्षों में। यह संख्या चीनी-जापानी-अरबी के छात्रों से भी बहुत कम थी। रूसी में उस समय चालीस हजार छात्र थे। इतालवी, स्पानी, फ्रेंच में तो लाखों। अनुदान-रहित महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में तो हिंदी नदारद ही थी। एकाध प्रगतिशील कुलपति ने यदि अपने विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने का प्रयास किया, तो उसका घोर विरोध हुआ और कैलिफोर्निया स्टेट यूनिवर्सिटी के कुलपति को तो अपने पद से ही हटना पड़ा, क्योंकि वे यूरोपियन भाषाओं के साथ अपने विश्वविद्यालय में हिंदी भी पढ़ाना चाहते थे।

फिर भी सातवाँ दशक हिंदी के लिए स्वर्णयुग था। करोड़ों रुपयों का अनुदान पाठ्य-पुस्तकों के लिए दिया गया। पी. एल. 480 के अंतर्गत सैकड़ों शोधवृत्तियाँ भारत में 'फील्डवर्क' करने के लिए दी गईं। अनेक ग्रंथों के अनुवादों की व्यवस्था हुई और हिंदी की पुस्तकें इन बीस विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए प्रचुर मात्रा में खरीदी गईं। भारत के किसी भी विश्वविद्यालय से अधिक हिंदी लेखकों की रचनाएँ इन पुस्तकालयों में मिल जाएँगी। इन पुस्तकालयों के कारण दिल्ली के पुस्तक विक्रेता, जिन्हें हर अच्छी पुस्तक के चयन और विक्रय को पाँच वर्ष का ठेका मिला, धनाढ्य हो गए।'...बर्कले के दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र के अर्द्धवार्षिक मुखपत्र के अनुसार, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के पुस्तकालय में अनेक भाषाओं में भारत संबंधी साढ़े चार लाख पुस्तकें हैं। भारतीय भाषाओं की सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। दर्जनों शोधार्थियों ने हिंदी में पी-एच.डी. की है।

आठवें दशक के बाद से, जब आप्रवासी कानून को उदार बनाया गया, भारतीय बड़ी संख्या में अमेरिका आकर बसने लगे। 1966 में यदि उनकी संख्या बीस हजार थी, तो आज 20-25 लाख है। आज दूसरी-तीसरी पीढ़ी पैदा हो रही है। उनमें, एक आधुनिक विज्ञप्ति के अनुसार, चार लाख के लगभग हिंदी भाषा-भाषी हैं। इस कारण हिंदी के छात्रों की संख्या बढ़ना स्वाभाविक ही था। न केवल भारतीय अभिभावक चाहते हैं कि उनके बच्चे अपनी भाषा सीखें, वरन् बहुत से बच्चे भी, जिनके घरों में हिंदी बोली जाती है, एक भाषा की अनिवार्यता की पूर्ति के लिए हिंदी लेते हैं। उसमें आसानी से कम परिश्रम से अच्छे अंक मिलते हैं और वे अन्य विषयों में अधिक ध्यान दे सकते हैं। अन्य विश्वविद्यालयों ने भी हिंदी-शिक्षण आरंभ किया है। कइयों ने अमीर भारतीयों के दान से।

फिर भी सातवाँ दशक हिंदी के लिए स्वर्णयुग था। करोड़ों रुपयों का अनुदान पाठ्य-पुस्तकों के लिए दिया गया। पी. एल. 480 के अंतर्गत सैकड़ों शोधवृत्तियाँ भारत में 'फील्डवर्क' करने के लिए दी गईं। अनेक ग्रंथों के अनुवादों की व्यवस्था हुई और हिंदी की पुस्तकें इन बीस विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए प्रचुर मात्रा में खरीदी गईं। भारत के किसी भी विश्वविद्यालय से अधिक हिंदी लेखकों की रचनाएँ इन पुस्तकालयों में मिल जाएँगी।

'मॉडर्न लैंग्वेज ऐसोसिएशन' की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष 74 उच्च अध्ययन संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था है। उनमें 2011 छात्र प्रथम वर्ष की हिंदी कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। डेढ़ सौ के लगभग दूसरे वर्ष की कक्षाओं में और पौने दो सौ 'एडवांस हिंदी' कक्षाओं में छात्र हैं। निश्चय ही ये छात्र हिंदी में निष्णात होनेवाले नहीं हैं। इनमें गैर-भारतीयों की संख्या तो उतनी ही है, जितनी चालीस साल पहले होती थी। मेरा हाल का अनुभव यही है कि भारतीय मूल के अधिकांश छात्र बहुत गंभीरता से हिंदी-अध्ययन के प्रति निष्ठ नहीं हैं| केवल अभारतीय ही मन से पढ़ते हैं। भारतीय मूल के छात्रों के अभिभावकों की रुचि उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर आदि बनाने में है और हिंदी उसमें कोई सहायता नहीं कर सकती। अनिवार्यता-पूर्ति के बाद उनका स्वाध्याय शून्य ही रहता है और वे जल्द ही जो पढ़ा है, वह भूल जाते हैं।

आज भी हिंदी के छात्रों की संख्या अमेरिका में पढ़ाई जानेवाली भाषाओं में प्रथम पंद्रह जितनी नहीं है। न ही वह उतनी तेजी से बढ़ रही है, जितनी अन्य भाषाओं के छात्रों की संख्या। अरबी भाषा के छात्रों की संख्या दुगनी हो गई है आज पच्चीस हजार छात्र अरबी पढ़ रहे हैं। स्पानी में सवा आठ लाख छात्र हैं जबकि फ्रैंच में दो लाख। यहाँ तक कि हिब्रू भाषा के छात्रों की संख्या 23 हजार है। हिंदी चीनी, जापानी, कोरियन आदि भाषाओं से भी बहुत पीछे हैं, जिनके छात्रों की संख्या क्रमशः 51.5 हजार, 66.6 हजार और सात हजार है।

अमेरिका के अनेक बड़े नगरों में जहाँ भारतीय मूल के लोगों की संख्या बड़ी है, मंदिरों में भी हिंदी की शिक्षा की व्यवस्था अव्यावसायिक रूप में की जाती है। वैसे ही जैसे गुरुद्वारों में पंजाबी की, भारत-पाकिस्तान से आए मुसलमानों की मसजिदों में उर्दू की। दुर्भाग्य से इन सब संस्थानों ने भाषा को धर्म के साथ जोड़ दिया है। 'विश्वा' पत्रिका के अनुसार, ऐसी संस्थाओं की संख्या पचास के आस-पास है। वहाँ सप्ताह में एक दिन ही पढ़ाई होती है। भारतीय विद्याभवन, न्यूयॉर्क तथा कुछ और संस्थाएँ भारतीय भाषाओं को संगीत-नृत्य-कला के साथ जोड़कर अच्छा कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, जिनमें बच्चे और किशोर उत्साह से भाग लेते हैं।

इसके अतिरिक्त जिन प्रदेशों में हिंदी भाषा-भाषियों की संख्या अधिक है, वहाँ के नगरों के हाईस्कूलों में भी माँग होने पर हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरणतः ऐडीसन, न्यू जर्सी में भारतीयों की संख्या 18 प्रतिशत है। वहाँ के हाईस्कूल में इस वर्ष से अमेरिकन सरकार के तीन वर्ष के लिए दिए अनुदान के तहत हिंदी शिक्षा की व्यवस्था होगी। यह दूसरी ऐसी संस्था है, जहाँ ऐसा कार्यक्रम शुरू हो रहा है। फ्रीमांट, कैलिफोर्निया के भारतीय भी इस ओर प्रयासरत हैं।

किसी भी भाषा के बोलनेवाले लोग जहाँ भी जाते हैं, उनमें से जो साहित्यिक प्रवृत्ति के लोग हैं, वे परस्पर जुड़ते ही हैं। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। मैं जब सन् 1954 से 1958 तक लंदन में था, तो लंदन हिंदी परिषद् के मंत्री के रूप में साहित्यिक आयोजन करता था। यूँ तो परिषद् की साप्ताहिक बैठक हर शुक्रवार की शाम साढ़े सात बजे हिंदू भवन में होती थी, जिसमें लेख, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ी जाती थीं, आलोचना-परिचर्चा के साथ, किंतु विशेष मनीषियों के आगमन पर भी अतिरिक्त सभाओं का आयोजन होता था। इन्हीं सभाओं में मुझे जैनेंद्र जी, अज्ञेय जी, दिनकर जी, सागर निजामी, कृष्ण चंदर प्रभृति अनेक साहित्यकारों का अभिनंदन करने का सौभाग्य मिला। परिषद् के मुख पत्र 'नैवेद्य' में ही अज्ञेय जी की 'साँप', 'एक दिन जब' और दिनकर जी की 'किसको नमन करूँ मैं?' कविताएँ पहली बार प्रकाशित हुईं। सन् 1959 से 1961 तक जब मैं हारवर्ड विश्वविद्यालय में शोधरत था, तो कृष्ण बलदेव वैद और गोविंद सिंह के साथ मिलकर मासिक बैठकों में कविता-कहानी-पाठ करता था, भयावह मौसम में भी। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में भी साहित्यिक आयोजन होते रहे। हारवर्ड में प्रभाकर माचवे आए, तो बर्कले में विद्यानिवास मिश्र और अज्ञेय जी अतिथि-प्राध्यापक के रूप में रहे। बर्कले क्षेत्र में स्थित लब्धप्रतिष्ठ अमरीकी कवियों के साथ मिलकर उन्होंने हिंदी कविताओं के अनुवादों की शृंखला शुरू की, जो Modern Hindi Poetry नाम से इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस से छपी। यूनेस्को योजना के अंतर्गत 'गोदान' का अनुवाद गोर्डन रोडारमल ने किया। अज्ञेय जी के 'अपने-अपने अजनबी' का भी। डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय के निर्देशन में हिंदी के एम.ए. के छात्रों ने भी कई कहानियों, उपन्यासों के अनुवाद किए।

आठवें दशक के आरंभ में स्व. ओमप्रकाश गौड़ 'प्रवासी' के प्रयत्नों से 'भारतीय साहित्य संगम' की नींव पड़ी। उसके तत्त्वावधान में अनेक कवि-सम्मेलन हुए व सूरदास पंचशती मनाई गई। बाद में उर्दू की संस्था 'अदब' के साथ मिलकर यह नई संस्था 'अदबी संगम' हो गई। उसकी मासिक बैठकें होती रहीं और विशेष अधिवेशन भी।

18 अक्तूबर, 1980 को स्व. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह की प्रेरणा से वाशिंगटन क्षेत्र में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' की स्थापना हुई। डॉ. सिंह के सुपुत्र मनोचिकित्सक डॉ. रविप्रकाश सिंह के अथक प्रयासों से यह संस्था फली-फूली। अमेरिका के

यूँ तो परिषद् की साप्ताहिक बैठक हर शुक्रवार की शाम साढ़े सात बजे हिंदू भवन में होती थी, जिसमें लेख, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ी जाती थीं, आलोचना-परिचर्चा के साथ, किंतु विशेष मनीषियों के आगमन पर भी अतिरिक्त सभाओं का आयोजन होता था। इन्हीं सभाओं में मुझे जैनेंद्र जी, अज्ञेय जी, दिनकर जी, सागर निजामी, कृष्ण चंदर प्रभृति अनेक साहित्यकारों का अभिनंदन करने का सौभाग्य मिला। परिषद् के मुख पत्र 'नैवेद्य' में ही अज्ञेय जी की 'साँप', 'एक दिन जब' और दिनकर जी की 'किसको नमन करूँ मैं?' कविताएँ पहली बार प्रकाशित हुईं। सन् 1959 से 1961 तक जब मैं हारवर्ड विश्वविद्यालय में शोधरत था, तो कृष्ण बलदेव वैद और गोविंद सिंह के साथ मिलकर मासिक बैठकों में कविता-कहानी-पाठ करता था, भयावह मौसम में भी।

सत्रह नगरों में इसकी शाखाएँ स्थापित हुईं। संस्था ने उदार स्वरूप अपनाते हुए सुब्रह्मण्यम भारती की शताब्दी, निराला जयंती, कबीर जयंती, सूरदास जयंती, रवींद्र जयंती, हनुमान प्रसाद पौद्दार शताब्दी आदि आयोजित कीं। साथ ही अमेरिका भर में 10-15 स्थानों पर कवि-सम्मेलनों का आयोजन करना आरंभ किया। 14 अधिवेशन 28 वर्षों में विभिन्न नगरों में हुए। समिति के कवि-सम्मेलनों और अधिवेशनों में न केवल हिंदी के गणमाण्य कवि, लेखक, मनीषी सम्मिलित होते रहे, वरन् अन्य भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकार और कर्ण सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी जैसे नेता भी सम्मिलित हुए।

सन् 1989 में दो वर्ष तक 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' के अध्यक्ष रहने के बाद स्व. रामेश्वर 'अशांत' ने 'विश्व हिंदी समिति' की स्थापना की। 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा', जो 24 वर्ष से निकल रही है, का संपादन करने के बाद उन्होंने 'विश्व हिंदी समिति' का त्रैमासिक 'सौरभ' निकालना शुरू किया। इसी प्रकार डॉ. राम चौधरी ने भी दो वर्ष तक समिति की अध्यक्षता के उपरांत 'विश्व हिंदी न्यास' की स्थापना कर उसकी त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी जगत्' शुरू की, जिसको 8 वर्ष पूरे हो गए हैं। आजकल ये सभी पत्रिकाएँ भारत से मुद्रित होकर वितरित होती हैं। इसके अतिरिक्त 'न्यास' की ओर से त्रैमासिक 'विज्ञान-प्रकाश' और 'बाल जगत्' भी निकल रहे हैं। गणितज्ञ डॉ. भूदेव शर्मा ने कई वर्षों तक 'विश्व विवेक' त्रैमासिक का संपादन किया। जहाँ तक साहित्यिक स्तरीय प्रकाशन का संबंध है, वेदप्रकाश 'वटुक' द्वारा संपादित अल्पकालीन 'सीमांतिका' और कुछ अमेरिकन और भारतीय हिंदी लेखकों के सहयोग से 'अन्यथा' नाम की पत्रिका निकल रही है, जो हर दृष्टि से श्रेष्ठ है। उसका वितरण भी भारत से ही हो रहा है।

इतना सब होते हुए भी इन पत्रिकाओं के पाठकों/सदस्यों की संख्या सैकड़ों में ही सीमित है। जबकि पंजाबी/बंगाली साप्ताहिकों की संख्या तो दर्जनों में है ही, उनके पाठकों व ग्राहकों की संख्या हजारों में है-दस-दस हजार तक। पंजाबी के कुछ साप्ताहिक विज्ञापनों के आधार पर निःशुल्क भी निकल रहे हैं। उनसे प्रेरणा लेकर दो वर्ष पूर्व सनीवेल हिंदू मंदिर, जिसके श्रद्धालु हजारों में हैं, के प्रयास से 'नमस्ते यू. एस. ए.' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू हुआ है। यह पत्र हर भारतीय खाद्यान्नों की दूकान आदि पर निःशुल्क मिलता है। शायद ही उसका कोई ग्राहक बना हो। इसी मंदिर में हर वर्ष एक दिन हिंदी हास्य कवि-सम्मेलन भी होता है, जिसमें कविगण भारत से बुलाए जाते हैं।

'वॉयस ऑफ अमेरिका' के हिंदी कार्यक्रम के अतिरिक्त हर बड़े नगर में दशकों से स्थानीय रेडियो स्टेशनों से समय खरीदकर शनिवार-रविवार को हिंदी के फिल्मी गीत प्रसारित हो रहे हैं। कुछ टेलीविजन चैनलों पर 'नमस्ते अमेरिका', 'भारत वाणी' आदि कार्यक्रम भी दो दशक से सप्ताह में एक दिन प्रसारित होते रहे हैं। पर अब भारत में प्रसारित होनेवाले जी टेलीविजन आदि के कार्यक्रम चौबीसों घंटे आने लगे हैं। कभी सप्ताह में एक बार एक किराए पर लिये सिनेमाघर में एक हिंदी फिल्म के प्रदर्शन के स्थान पर अब तो हर बड़े शहर में हिंदी सिनेमाघर हैं। अकेले फ्रीमांट शहर में स्थित 'नाज' सिनेमा में एक साथ रोज आठ फिल्में दिखाई जाती हैं। अब तो अनेक भारतीय फिल्म निर्माता अपनी फिल्में न्यूयॉर्क आदि स्थानों में 'रिलीज' करते हैं।

भारत से आए अनेक नाट्य अभिनेताओं ने बर्कले, न्यूयॉर्क, वाशिंगटन आदि नगरों में अनेक संस्थाएँ बनाई हैं, जो समय-समय पर विभिन्न नाटकों का मंचन करती हैं। भारत से आए अभिनेता शबाना आजमी, फारुख शेख, जया बच्चन आदि द्वारा अभिनीत नाटक 'तुम्हारी अमृता', 'अब माँ रिटायर होती है', 'गांधी बनाम गांधी' आदि नाटकों को एक ही शहर में दो-दो बार खेला गया।

साथ ही फिल्मी जगत् की कोई पार्श्वगायिका या गायक ऐसा नहीं, जिसका नृत्य-गायन अमेरिका के अनेक नगरों में न हुआ हो। चित्रा-जगजीत सिंह जैसे गजल गायक और अनूप जलोटा जैसे भजन-गायक के साथ ही सुबालक्ष्मी जैसी शास्त्रीय संगीत की सम्राज्ञी की सभाओं में तो टिकट शीघ्र ही बिक जाते हैं। स्थानीय कलाकार तो हैं ही।

जहाँ तक हिंदी साहित्य के सृजन का संबंध है, विगत चालीस/पचास वर्षों के हिंदी अध्यापन के बाद भी एक भी साहित्यकार ऐसा नहीं है जिसने अमेरिका में जन्म लेकर हिंदी में रचना की हो। हिंदी के अमरीकी गोरे विद्वानों ने जो भी लिखा है, वह हिंदी के बारे में अंग्रेजी में ही लिखा है। चैक हिंदी मनीषी स्मैकल की भाँति यहाँ कोई गोरा हिंदी कवि नहीं है।

रहा भारतीय मूल के हिंदी लेखकों का प्रश्न, उनमें भी कोई ऐसा रचनाकार नहीं, जिसने भारत में लिखना शुरू न किया हो। बहुत से रचनाकार तो ऐसे हैं, जो अपने बेटे/बेटी के यहाँ मिलने आते हैं और प्रवासी अमेरिकी वर्ग में शामिल कर लिये जाते हैं। यदि अमेरिका की धरती पर की गई रचना प्रवासी साहित्य के

अंतर्गत आती है, तो हमें अज्ञेय, निर्मल वर्मा, प्रभाकर माचवे, कृष्ण बलदेव वैद, सुनीता जैन आदि को भी प्रवासी साहित्यकार मानना पड़ेगा। अभी तक कोई मापदंड निर्धारित नहीं हुआ है कि हम किसे प्रवासी मानें। सन् 1983 में जब 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' ने 'अमेरिका के हिंदी कवि' प्रकाशित किया था, तब उसमें संकलित कई कवि कुछ ही वर्ष पहले अमेरिका की धरती पर आए थे।

फिर भी अमेरिका में कितने ही साहित्यकार हैं जिनकी कृतियाँ श्रेष्ठ हैं। गीतकारों में वयोवृद्ध इंदुकांत शुक्ल हैं, जिनकी भाषा प्रांजल है, छंद पर जिनका पूरा अधिकार है और भावों में गहन अनुभूति है। उनके हिंदी सॉनेट भी हर दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। लातीनी और अश्वेत अमेरिकन कवियों की कविताओं के अनुवादों में उन्हें सिद्धहस्तता मिली है। उनकी दृष्टि सचमुच वैश्विक है। लब्धप्रतिष्ठ कवि गुलाब खंडेलवाल ने तो हर विधा में रचना की है। 'निराला' द्वारा प्रशंसित इस महाकवि की रचनाएँ 'गुलाब खंडेलवाल रचनावली' पाँच खंडों में संकलित है। गजलों में वे शुद्ध सरल हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। डॉ. विजयकुमार मेहता की कई रचनाओं में उनका महाकाव्य 'भिक्षुणी' विशेष रूप से चर्चित है। रेणु राजवंशी की अपनी अनूठी शैली है-लघु कविताओं में भावों की गुरुता लिये। स्व. ओमप्रकाश गौड़ 'प्रवासी', रामेश्वर अशांत परंपरा गीतों के कवि हैं। 'प्रवासी' के प्रबंध काव्यों में रहस्यवाद की झलक है। अन्य जिन लोगों ने काव्य-साधना में अपनी पहचान बनाई है, उनमें प्रमुख हैं-सुधा ढींगरा, हिमांशु पाठक, धनंजय कुमार, राकेश खंडेलवाल, सुरेंद्रकुमार तिवारी, अनंत कौर, अंजना संधीर आदि। अंजना संधीर गीतकार भी हैं और गजलगो भी। साथ ही अमेरिका पर पैना व्यंग्य करनेवाली मुक्त छंद की कवियत्री भी स्व. नरेंद्र सेठी नई धारा के कवि थे। इन पंक्तियों के लेखक की 25 काव्य कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें तीन प्रबंध काव्य 'बाहुबली', 'उत्तर राम कथा' और 'अभिशप्त द्वापर' भी सम्मिलित हैं। 'एक बूँद और' की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है, ''वटुक की कविताओं में न केवल स्वदेश का संवेदन बोलता है, बल्कि एक ऐसा संवेदन बोलता है, जो भारतीय लोक जीवन के रस में पगा हुआ है। उसमें दो संस्कृतियों, दो जीवन दृष्टियों के बीच का तनाव लगातार लक्षित होता है, लेकिन वे झूठी समकालीनता के कुहरे में नहीं भटकते।''

मेरा विचार है कि अमेरिका में बसा हर प्रबुद्ध हिंदी कवि अस्मिता की खोज में तनावग्रस्त है।

कथा-साहित्य में जिन लोगों ने अपनी पहचान बनाई है, उनमें स्व. सोमा वीरा, उषा प्रियंवदा, सुषमा वेदी प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में प्रवासी जगत् का तनाव, अलगाव, संघर्ष तो है ही, साथ ही एक प्रश्न सतत मन को झकझोरता हुआ है-आखिर जीवन का यह 'हवन' किसलिए? पीढ़ियों का अंतराल तो भारत में भी है, पर प्रवास में तो खोए स्वदेश की वेदना के साथ जुड़ जाता है वनवास का दारुण भोग। अन्य कहानीकारों की रचनाओं में भी यह अंतर्द्वंद्व रहता ही है।

इस प्रकार अमेरिका में हिंदी की दशा-दिशा बहुत कुछ अंशों में वही है, जो भारत में है। वह उपेक्षित भी है और अपेक्षित भी। वह जनभाषा है, जन के साथ जुड़ी है। वह जन स्वदेश में हो या प्रवास/वनवास में।

Dr Ved Prakash Vatuk
P.O. Box 1142
Berkeley, CA 94701 U.S.A
Tel:510-847-6224
Email: vedvatuk@yahoo.com

एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, बल्कि विश्व की एक महत्वपूर्ण भाषा बनेगी।

-गणेश शंकर विद्यार्थी

10

कनाडा में हिंदी का फलक

आ. श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी

20 वीं सदी के आरंभ में जब भारतीय जनों का कनाडा में आप्रवास शुरू हुआ तो उनमें पंजाबियों की संख्या सबसे अधिक थी। वे अधिकांशतः ब्रिटिश कोलंबिया प्रांत में बस गए। साठ के दशक में हिंदीभाषी छात्रों व पेशेवर कर्मियों का आगमन होने लगा, पर वे विभिन्न प्रांतों में छितरा गए। सत्तर के दशक में आप्रवास नियमों में ढील दी जाने लगी। तब विदेशों में बसे हिंदीभाषी भारतीय समूहों ने भी कनाडा में जाकर बसना शुरू कर दिया। फीजी, गुयाना, ट्रिनिडाड, पूर्वी अफ्रीका, कीनिया, सूरीनाम और मॉरीशस में रहनेवाले भारतीय मूल के लोगों ने भी कनाडा आना और बड़े शहरों जैसे टोरंटो, मॉंट्रीयल और वैंकूवर में बसना शुरू कर दिया। नई जगह में बसने और उसके अनुकूल ढलने में उन्हें कुछ समय लगा। धीरे-धीरे उन्होंने अपने समारोह आयोजित करने शुरू कर दिए। इन समारोहों में आपसी संचार व बातचीत के लिए हिंदी भाषा का मुख्यतः उपयोग किया जाता था। इससे हिंदी के पक्ष में व्यापक माहौल बनाने में मदद मिली।

हिंदी का शिक्षण

गैर-सरकारी संगठनों द्वारा हिंदी परिचय पाठ्यक्रम

सत्तर के दशक की शुरुआत में कुछ धार्मिक हिंदी मंदिरों व केंद्रों को खोला गया। इन्हीं संस्थानों की पहल पर हिंदी भाषा के शिक्षण की शुरुआत हो पाई। स्पष्टतः हिंदू मंदिरों व केंद्रों ने कनाडा में हिंदी शिक्षण के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसका सारा श्रेय ओटावा के मुकुल विद्यालय को जाता है, जिन्होंने इस क्षेत्र में आरंभिक कार्य किया। यह विद्यालय ओटावा में सन् 1971 में खोला गया था। आज पूरे देश में इसकी शाखाएँ हैं जिनमें विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

ब्रिटिश कोलंबिया के बर्नबी की विश्व हिंदू परिषद् ने सन् 1975 में हिंदी की कक्षाएँ आरंभ की थी, कैलगरी की वैदिक हिंदू सभा ने 1980 में कैल्गरी रामायण भजन मंडली ने 1982 में, वैंकूवर के महालक्ष्मी मंदिर ने 1991 में, सरे की वैदिक हिंदू सांस्कृतिक सभा ने 1997 में तथा रिचमंड की वैदिक सांस्कृतिक सभा ने 2004 में हिंदी कक्षाएँ आरंभ की। एडमंटन की अल्बर्टा हिंदी परिषद् कनाडा में एकमात्र संस्थान है जिसके पास अपना भवन है, जिसमें सन् 1985 से हिंदी कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ लर्निंग (एच.आई.एल.) तथा हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ मॉन्टेसरी एकेडमी (एच.आई.एम.ए.) भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में रत हैं। हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ लविंग की स्थापना श्री जगदीश शास्त्री ने की थी। अब श्री रत्नाकर नराले इसके प्राचार्य हैं। श्री शास्त्री व नराले जी दोनों टोरंटो शहर में हिंदी शिक्षण व प्रचार-प्रसार के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहे हैं।

कनाडा के पूर्वी प्रांतों में सन् 1972 से ही कुछ हिंदी प्रेमियों ने नोवा स्कॉटिया के हैलीफैक्स में हिंदी की कक्षाएँ आरंभ की थी। ये कक्षाएँ सन् 1983 तक चलती रहीं। ऐसी ही कुछ गतिविधियाँ सेंट जॉन में भी चल रही थीं। वहाँ कुछ चिंतित अभिभावकों यथा प्रोफेसर एस.पी. सिंह ने सन् 1980 में मेमोरियल विश्वविद्यालय के प्रांगण में हिंदी कक्षाएँ शुरू की थीं। किंतु सन् 1992 के बाद इस शिक्षण सुविधा को जारी नहीं रखा जा सका। मैनिटोवा की हिंदू सभा ने पहले मंदिर में हिंदी कक्षाएँ चलाने का निर्णय लिया था। सन् 1998 से उनके केंद्र भारतीय भवन में हिंदी का शिक्षण किया जा रहा है।

सरकार द्वारा

जून 1966 में ओंटेरियो सरकार ने हेरिटेज लैंगुएजेज प्रोग्राम शुरू किया था। इसके अंतर्गत विद्यालय बोर्डों को छूट दी गई कि वे अपने शिक्षा विस्तार कार्यक्रम के अंग के तौर पर गैर-आधिकारिक भाषाओं को भी पढ़ा सकें। सन् 1987 में एक पूर्णरूपेण ओंटेरियो हेरिटेज लैंगुएजेज कार्यक्रम विकसित किया गया। जुलाई 1989 में इसे प्राथमिक विद्यालयों में लागू किया गया। सन् 1976 से ही हिंदी कक्षाओं को शुरू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। सन् 1985 से टोरंटो शहर के कुछ पब्लिक विद्यालयों में हिंदी अध्यापन बड़े

वेग से आरंभ किया गया। ओंटेरियो पब्लिक स्कूल बोर्डों की कुछ काउंटियों में हिंदी पढ़ाई जाती है।

विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा

पहले कनाडाई विश्वविद्यालयों के धार्मिक अथवा दर्शन विभाग के अधीन हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाते थे। लेकिन सन् 1970 में सबसे पहले ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम शुरू किया गया था। डॉ. एस. कले की इसमें सर्वप्रथम नियुक्ति की गई थी। सन् 1984-85 में प्रोफेसर बी.एम. सिन्हा मैकगिल विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्यापन किया करते थे। वस्तुतः टोरंटो विश्वविद्यालय में सन् 1972 में ही हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किए गए थे। आज भी वहाँ नियमित रूप से हिंदी का अध्यापन किया जाता है। सन् 2004 में टोरंटो में यॉर्क विश्वविद्यालय ने भी अपने यहाँ हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किए। वेस्टर्न विश्वविद्यालय लंदन, मॉन्ट्रीयल विश्वविद्यालय, मैकगिल, सास्काटून और कैल्गरी विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा व साहित्य के अध्यापन की सुविधा उपलब्ध है। इनके अलावा कनाडा के बड़े शहरों में अनेक सामुदायिक विश्वविद्यालय समय-समय पर हिंदी पाठ्यक्रम चलाते हैं।

हिंदी संगठन

सन् 1982 में हिंदी परिषद् नाम से टोरंटो में पहले हिंदी संगठन की स्थापना की गई थी। डॉ. रघुबीर सिंह इसके संस्थापक अध्यक्ष थे। किंतु इस संगठन की गतिविधियाँ केवल टोरंटो शहर के इर्द-गिर्द ही सीमित थीं ।

सन् 1983 में गुएल्फ के प्रोफेसर ओ.पी. द्विवेदी के नेतृत्व में एक राष्ट्रव्यापी हिंदी संगठन 'हिंदी लिटरेसी सोसायटी ऑफ कनाडा' (एच.एल.एस.सी.) का गठन किया गया। मॉन्ट्रीयल के प्रोफेसर टी.डी. द्विवेदी इस सभा के प्रथम अध्यक्ष थे। उनके बाद ओटावा के डॉ. राधेश्याम पांडे इसके अध्यक्ष बने। और अब सन् 1987 से सरे बैंकूवर के श्रीनाथ पी. द्विवेदी इस संस्था के अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। एच.एल.एस.सी. साउथ एशिया काउंसिल (एस.ए.सी.) के माध्यम से कनाडियन एशियन स्टडीज एसोसिएशन (सी.ए.एस.ए.) से संबद्ध है। साउथ एशिया काउंसिल स्वयं सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज कांग्रेस का अंग है। सी.ए.एस.ए. हर दो साल में विभिन्न कनाडाई विश्वविद्यालयों में सम्मेलन करता है। इन सम्मेलनों में एच.एल.एस.सी. हिंदी भाषा व साहित्य पर एक सत्र का आयोजन करता है।

क्यूबेक हिंदी संघ की स्थापना सन् 1975 में ही हो गई थी। पर आधिकारिक तौर पर इसका पंजीकरण सन् 1976 में ही हो पाया। श्री कुमुद त्रिवेदी इसके संस्थापक अध्यक्ष थे। इसके वर्तमान अध्यक्ष डॉ. सुशील मिश्र तन-मन से हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। मैनीटोबा हिंदी परिषद् का गठन सन् 1982 में विनिपेग में किया गया। प्रोफेसर वेदानंद, बिंदु झा और शरदचंद्र ने इसके गठन में सक्रिय योगदान किया। यह संस्था कई वर्षों तक सक्रिय रही।

क्यूबेक हिंदी संघ की स्थापना सन् 1975 में ही हो गई थी। पर आधिकारिक तौर पर इसका पंजीकरण सन् 1976 में ही हो पाया। श्री कुमुद त्रिवेदी इसके संस्थापक अध्यक्ष थे। इसके वर्तमान अध्यक्ष डॉ. सुशील मिश्र तन-मन से हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। मैनीटोबा हिंदी परिषद् का गठन सन् 1982 में विनिपेग में किया गया। प्रोफेसर वेदानंद, बिंदु झा और शरदचंद्र ने इसके गठन में सक्रिय योगदान किया। यह संस्था कई वर्षों तक सक्रिय रही।

भारतीय विद्या संस्थान की स्थापना प्रोफेसर हरिशंकर आदेश द्वारा की गई। वह सन् 1981 में त्रिनिडाड से टोरंटो आए थे। सन् 1984 में उन्होंने 'विद्या मंदिर' नामक संस्थान की स्थापना की और हिंदी, संस्कृत व भारतीय संस्कृति का अध्यापन व प्रोत्साहन कर रहे हैं। उन्होंने 'ज्योति' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया था।

'हिंदी साहित्य सभा' की सन् 1997 में स्थापना की गई। डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव इसके संस्थापक अध्यक्ष थे। आज यह संस्था हिंदी को बढ़ावा देने में अत्यंत सक्रिय है। हिंदी प्रचारिणी सभा का सन् 1998 में गठन किया गया। श्री श्याम त्रिपाठी इसके अध्यक्ष हैं। वह पाक्षिक पत्रिका ''हिंदी चेतना' का प्रकाशन करते हैं, जो एक साहित्यिक पत्रिका है। वहीं ग्रेटर वैंकूवर में सन् 1998 में 'हिंदी

लिटरेरी सोसायटी ऑफ कनाडा,' बी.सी. का गठन किया गया। इसके संस्थापक अध्यक्ष श्रीनाथ पी. द्विवेदी हैं। वह कुशलतापूर्वक इस संस्था का नेतृत्व कर रहे हैं। यह संस्था कविता-पाठ सत्रों, सेमिनारों, पुस्तक विमोचन और कवि गोष्ठियों का आयोजन भी करती है।

कवि सम्मेलन

पहला हिंदी कवि सम्मेलन टोरंटो की हिंदी परिषद् द्वारा सन् 1982 में आयोजित किया गया। श्री श्याम त्रिपाठी ने इसका संचालन किया था। एच.एल.एस.सी. के तत्त्वावधान में प्रथम अंतरराष्ट्रीय हिंदी कवि सम्मेलन ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय, वैंकूवर में आयोजित किया गया था। सन् 1983 में आयोजित इस कवि सम्मेलन में डॉ. बी.एन. तिवारी, डॉ. आर.एन. त्रिपाठी और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति डॉ. इकबाल नारायण जैसे मूर्धन्य हिंदी विद्वानों के साथ कनाडा के भी अनेक कवियों ने भी शिरकत की थी। एस.पी. द्विवेदी ने इस कवि सम्मेलन का संचालन किया था। तब से एच.एल.एस.सी. ने कनाडा के अनेक शहरों तथा ग्यूएल्फ, हैमिल्टन, रेजिना, मॉट्रीयल, क्यूबेक, विनीपेग, कैल्गरी, टोरंटो तथा ओटावा इत्यादि शहरों में ऐसे सम्मेलनों का आयोजन किया है। अपने प्रयासों से इसने दो अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन भी किया था। पहला सन् 1989 में ओटावा के कार्ल्टन विश्वविद्यालय में आयोजित किया गया। दूसरा सम्मेलन टोरंटो के यॉर्क विश्वविद्यालय में अमेरिका की 'इंटरनेशनल हिंदी एसोसिएशन' के सहयोग से आयोजित किया गया। इन दोनों सम्मेलनों में भारत, अमेरिका और ब्रिटेन के हिंदी विद्वान् शामिल हुए थे।

टोरंटो व वैंकूवर स्थित भारतीय वाणिज्य दूतावास का कार्यालय भी समय-समय पर हिंदी कवि सम्मेलनों का आयोजन कराता है।

समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ व पुस्तिकाएँ

कनाडा में हिंदी भाषा की अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। श्री राकेश तिवारी की पत्रिका 'हिंदी टाइम्स' और श्री रवि पांडे की 'हिंदी अब्रॉड' उल्लेखनीय हैं।

संभवतः 'नवभारत' कनाडा का प्रथम हिंदी समाचार-पत्र था, जिसका सन् 1977 में टोरंटो से प्रकाशन किया गया था। पर कुछ अंक निकालने के बाद उसका प्रकाशन बंद कर दिया। सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में टोरंटो, मॉन्ट्रीयल व विनिपेग में कुछ संगठनों द्वारा कुछ हस्तलिखित समाचार-पत्रों का प्रसार किया जाता था। होली व दीवाली पर इन समाचार पत्रों के विशेषांक भी निकाले जाते थे।

संभवतः 'नवभारत' कनाडा का प्रथम हिंदी समाचार-पत्र था, जिसका सन् 1977 में टोरंटो से प्रकाशन किया गया था। पर कुछ अंक निकालने के बाद उसका प्रकाशन बंद कर दिया। सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में टोरंटो, मॉन्ट्रीयल व विनिपेग में कुछ संगठनों द्वारा कुछ हस्तलिखित समाचार-पत्रों का प्रसार किया जाता था। होली व दीवाली पर इन समाचार पत्रों के विशेषांक भी निकाले जाते थे।

टोरंटो शहर के रघुबीर सिंह ने अगस्त 1981 में साप्ताहिक समाचार पत्र 'विश्व भारती' निकाला था। यह समाचार-पत्र कुछ साल तक चला था। सन् 1982 में प्रोफेसर जगमोहन हुमार ने ओटावा से द्विभाषी पाक्षिक पत्रिका 'अंकुर' निकाली। हिंदी-अंग्रेजी में निकलनेवाली यह पत्रिका कुछ साल तक चलती रही। इसने पाठकों की रुचि को जाग्रत् तो किया, पर अधिक समय तक नहीं चल सकी। इसी तरह त्रिलोचन सिंह गिल की मासिक पत्रिका 'भारती' भी अल्पकालिक साबित हुई। क्यूबेक हिंदी संघ की पत्रिका 'प्रगति' ने हिंदी लेखकों को एक मंच प्रदान किया। मॉन्ट्रीयल के प्रोफेसर राजेंद्र सिंह और प्रोफेसर टी.डी. द्विवेदी ने सन् 1985 में 'प्रवासी' पत्रिका निकाली। पर यह सन् 1988 में बंद हो गई। टोरंटो के उमेश विजय ने सन् 1985 में 'संगम' नामक समाचार पत्र निकाला था, जिसने पाठकों की रुचि को जग्रत् किया। ब्रिटिश कोलंबिया में डॉ. नीलम वर्मा नवंबर 2005 से अंग्रेजी/हिंदी में 'एशियन आउटलुक' नामक द्विभाषी मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका ने अच्छी प्रसार संख्या प्राप्त की है। पोर्ट मूडी के निवासी श्री जाहिद लईक 'शाहपर' पत्रिका के मुख्य संपादक हैं। द्विमासिक बहुभाषी यह पत्रिका सन् 2001 से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका का एक खंड हिंदी आलेखों के लिए समर्पित है।

हिंदी की पहली पुस्तिका 'हिंदी संवाद' प्रोफेसर ओ.पी. द्विवेदी व डॉ. बी.एन. द्विवेदी के सक्रिय सहयोग से एच.एल.एस.सी. द्वारा सन् 1984 में शुरू की गई थी। एस.पी. द्विवेदी पुस्तिका की शुरुआत से ही इससे जुड़े हैं। वह इसके मुख्य संपादक हैं और इसके विशेषांक बाजार में आते ही हाथोंहाथ बिक जाते हैं। अगस्त 2007 में पश्चिमी कनाडा के बाजारों में एक नई पत्रिका 'हमवतन टाइम्स' का अवतरण हुआ। सप्ताह में दो बार प्रकाशित इस पत्रिका में अधिकांश आलेख हिंदी में होते हैं। श्री जमशेर करवाल इसके मुख्य संपादक हैं।

दो अन्य सुविख्यात हिंदी साहित्य की पाक्षिक पत्रिकाएँ हैं-हिंदी चेतना' व 'वसुधा'। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन क्रमशः श्री श्याम त्रिपाठी और श्रीमती स्नेह ठाकुर द्वारा किया जाता है।

रचनात्मक लेखन

कनाडा में अनेक कवि हिंदी में अपनी पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। हिंदी कविता क्षेत्र में कुछ प्रतिष्ठित नाम हैंप्रो. हरिशंकर आदेश, श्री श्याम त्रिपाठी, श्री सुरेंद्र पाठक, आचार्य रत्नाकर नराले, सर्वश्री संदीप त्यागी, राकेश तिवारी, भगवत शरण श्रीवास्तव, भारतेंदु श्रीवास्तव, ब्रजराज कश्यप, अरविंद मोनाले, शिवनंदन सिंह यादव, विजय विक्रांत, स्नेह सिंघवी, श्रीमती स्नेह ठाकुर, श्रीमती शैलजा सक्सेना, श्रीमती भुवनेश्वरी पांडे, श्रीमती सुशीला गुप्ता, श्रीमती आशा बर्मन, श्रीमती सरोज भटनागर तथा श्रीमती प्रमिला भार्गव।

प्रोफेसर हरिशंकर आदेश संभवतः एकमात्र हिंदी कवि हैं जिन्होंने तीन महाकाव्य 'अनुराग', 'शकुंलता' और 'महारानी दमयंती' लिखे हैं। उनका चौथा महाकाव्य 'निर्वाण' शीघ्र ही प्रकाशित होगा। ट्रिनिडाड व टोबेगो में सन् 1996 में आयोजित पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रोफेसर आदेश का सम्मान किया गया था।

प्रकाशन

(क) काव्य-संग्रह—प्रोफेसर हरिशंकर आदेश, डॉ. शिवनंदन सिंह यादव, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, श्री भगवत शरण श्रीवास्तव, सरोज भटनागर, श्री बी.के. कश्यप, श्रीमती स्नेह ठाकुर, श्रीमती भुवनेश्वरी पांडे, रत्नाकर नराले व अरविंद मोनाले ने अपने कविता संग्रह प्रकाशित कराए हैं।

कनाडा के सत्रह हिंदी कविताओं की चुनी हुई कविताओं का संग्रह 'कनाडाई काव्यधारा' में प्रकाशित है। इसका संपादन सन् 1988 में श्रीनाथ पी. द्विवेदी ने किया है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह है 'काव्य किंजलक' जिसका संपादन सन् 1994 में निर्मला आदेश ने किया। इस संग्रह में एस.पी. द्विवेदी को छोड़कर अन्य सभी पंद्रह कवि ओंटेरियो में रहते हैं। तीसरे काव्य संग्रह 'प्रवासी काव्य' का भारतेंदु श्रीवास्तव व श्याम त्रिपाठी द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशन किया गया। मगर इसमें केवल टोरंटो शहर के कवियों की कविताएँ ही संगृहीत हैं। चौथी पुस्तक 'रवि के एहसास फ्रेजर के तट पर' में ब्रिटिश कोलंबिया में रहनेवाले कवियों की रचनाएँ शामिल हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 2006 में हुआ था। दरअसल, इस पुस्तक में चार भाषाओं हिंदी, पंजाबी, उर्दू और बंगाली की कविताएँ संगृहीत हैं। इसके हिंदी खंड का संपादन श्रीनाथ पी. द्विवेदी द्वारा किया गया।

(ख) अन्य रचनाएँ—श्री श्याम त्रिपाठी, श्रीमती दीप्ति अचला कुमार, श्रीमती आशा बर्मन, श्रीमती स्नेह सिंघवी, श्रीमती शैल शर्मा, डॉ. प्रमिला सक्सेना, श्रीमती सुशीला गुता, डॉ. प्रवीण सक्सेना, श्रीमती सक्सेना, श्रीमती प्रमिला भार्गव, श्री निर्मल सिद्धू आदि लेखकों की रचनाएँ पत्रिकाओं, संग्रहों व समाचार-पत्रों में प्रकाशित हूई हैं। ये सभी लेखकगण कवि सम्मेलनों व सेमिनारों के आयोजनों से जुड़े हैं।

प्रमुख हिंदी सेवक व साहित्यकार

कनाडा में बसे कुछ प्रमुख हिंदी सेवक व साहित्यकार हैं- प्रो. ओ.पी. द्विवेदी, महाकवि हरशिंकर आदेश, श्याम त्रिपाठी, श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, प्रो. जगमोहन हुमार, डॉ. शिवनंदन यादव, कृष्णा सैनी, श्रीमती रश्मि रेखा, श्री सुमन घई, श्रीमती शैलजा सक्सेना, श्री राकेश तिवारी, श्रीमती भुवनेश्वरी पांडे, श्री जगदीश शास्त्री, श्रीमती शारदा, श्रीमती सुदर्शन सहगल, श्री नरिंदर भागी 'बरहम', श्री हरदेव सोढ़ी 'अश्क', श्रीमती मधु वार्ष्णेय, डॉ. भूपेंद्र कुमार सिंह, श्रीमती आशा शर्मा, श्री आनंद जैन, श्री अशोक भार्गव, श्रीमती कांति द्विवेदी, श्रीमती पुष्पलता शर्मा, डा. सुरेश कर्ल, श्री अर्चना हरित, श्री शिवनंदन शर्मा, श्रीमती विनोद कँवल, सुश्री आरती शर्मा, श्री देवेंद्र शर्मा, कमलूप्स, आचार्य शिवशंकर द्विवेदी, श्री राजीव रंजन, श्री कृष्ण सैनी, सुश्री कंचन के. शर्मा, श्री बिंदु झा, श्री शरतचंद्र तथा श्री सुरेश गुप्ता।

रेडियो व टेलीविजन

कनाडा के बड़े शहरों में अनेक रेडियो व टेलीविजन स्टेशन हैं जिनसे छोटे-छोटे हिंदी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। ज्ञानराज हंस द्वारा निर्मित व निर्देशित रेडियो कार्यक्रम भावांजलि सन् 1970 से ही प्रसारित हो रहा है। परंतु इसकी लोकप्रियता ओंटेरियो में अधिक है। भारत से बाहर बर्नाबाई वी.सी. के आई.टी. प्रोडक्शंस का 'रिमझिम' एकमात्र हिंदी रेडियो कार्यक्रम है जिसका 1 नवंबर, 1987 से चौबीसों घंटे प्रसारण हो रहा है। इस कार्यक्रम की निर्मात्री व निर्देशिका सुषमा दत्त ने उत्तरी अमेरिका में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के अपने सतत समर्पण के बल पर इस अविश्वसनीय कृत्य को साकार किया है।

'बधाई हो' और 'विविध साक्षात्कार' को टेलीविजन पर श्रीमती गीतिका भारद्वाज और श्रीमती कांता अरोड़ा द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। रेडियो पर श्री अनिल शृंग्स का कार्यक्रम 'म्यूजिक इंडिया' श्रोताओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय है।

ग्रेटर वैंकूवर के 'शेरे पंजाब' और 'रेडियो इंडिया' में भी हिंदी के कुछ कार्यक्रमों का प्रसारण होता है।

श्री कमल शर्मा का कार्यक्रम 'यादें' टेलीविजन पर सबसे पुराना हिंदी कार्यक्रम है, जो सन् 1983 से अत्यंत लोकप्रिय है।

वेबसाइट

हिंदी वेबसाइटें भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान दे रही हैं। सुमन घई की 'साहित्य कुंज' और रत्नागर नराले की 'हिंदू मैगजीन' ऑनलाइन हिंदी शिक्षण दे रही हैं।

द्वारा : श्रीयुत् श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष : हिंदी लिटरेरी सोसायटी ऑफ कनाडा

Acharya Shrinath Prasad Dwivedi
4, 12738 66 Avenue
Surrey, BC
Canada, V3W 1P3
Email: spdwivedi@attglobal.net
Tel: (606) 5073099

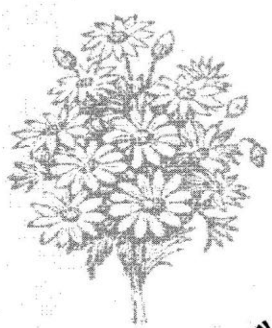

भाषा बड़ी रहस्यमयी देवी है। यह नई सृष्टि करती है। इतिहास विधाता के किए कराए पर वह ऐसा पर्दा डाल देती है कि कभी-कभी दुनिया ही बदल जाती है।

-हजारी प्रसाद द्विवेदी

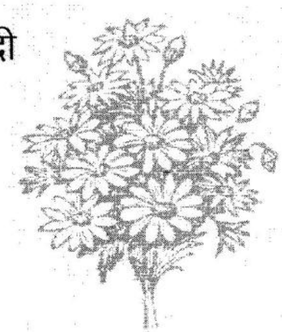

11

ब्रिटेन में हिंदी की स्थिति
एक सर्वेक्षण

डॉ. राकेश बी. दुबे

सामाजिक स्थिति

अपने लगभग दो सौ वर्षों के शासनकाल में ब्रिटेन ने भारत में जिस प्रकार से एक छोटा ब्रिटेन बनाया था उसी प्रकार से आज ब्रिटेन में एक छोटा भारत बस रहा है। यह कहा जा सकता है कि उपनिवेश के रूप में भारत की स्थिति और प्रवास के देश के रूप में ब्रिटेन की स्थिति सर्वथा भिन्न है, तो इस पर मेरा यह मानना है कि देश और काल भिन्न अवश्य हैं लेकिन सामाजिक रूप से जो प्रभाव अंग्रेजों ने भारतीय समाज पर डाला था, उसी प्रकार का प्रभाव भारतवंशी आज ब्रिटेन पर डाल पाने की प्रक्रिया में हैं। यदि हम यह देखें कि भारत के आजाद होने के बाद प्रवासियों का सबसे पहले आगमन छुटपुट रूप में पचास के दशक में और व्यवस्थित रूप से साठ के दशक में ही होना प्रारंभ हुआ, और यह कि सबसे पहले आनेवालों में पंजाब के लोगों का बाहुल्य था, जिसके कारण ग्रेटर लंदन में वे अब भी सबसे बड़े समूह के रूप में मौजूद हैं, तो हमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि यहाँ भारतीयों को बसे हुए अधिकतम पचास वर्ष से अधिक का समय नहीं हुआ है। इसलिए स्थानीय सामाजिक व्यवस्था और रीति-रिवाजों पर उनके प्रभाव की तुलना अंग्रेजों के दो सौ वर्षों से भी अधिक के भारत-संपर्क से करना उचित नहीं होगा। इस प्रस्तावना को और स्पष्ट करने के लिए आइए सबसे पहले यह देखें कि ब्रिटेन में प्रवासी भारतीय कितनी संख्या में और कहाँ-कहाँ बसे हुए हैं।

सन् 1999-2000 में ब्रिटेन की अनुमानित जनसंख्या थी 56.9 मिलियन, और इसमें भारतवंशियों की संख्या थी 1.3 मिलियन अर्थात् लगभग 2.11 प्रतिशत। लेकिन अब सन् 2005 की अनुमानित जनसंख्या है 67 मिलियन और भारतवंशियों की संख्या है लगभग 1.4 मिलियन। यहाँ यह ध्यान रखा जाना भी आवश्यक है कि पूर्वी अफ्रीका के कुछ देशों से आए हुए भारतवंशी जनगणना में स्वयं को भारतवंशियों में शामिल नहीं कराते अन्यथा यह आँकड़ा और भी आगे जा सकता था। यह भी मानकर चलना होगा कि भारतीय कंपनियों की ओर से यहाँ काम करने के लिए भेजे गए कर्मचारियों की संख्या भी हजारों में हैं और उनकी गिनती ऊपर दिए गए आँकड़ों में नहीं की गई है। यदि हम केवल प्रतिशत को देखें तो लगेगा कि संख्या तो बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती लेकिन याद रखा जाना चाहिए कि जातीय अल्पसंख्यकों का सबसे बड़ा समूह ब्रिटेन में भारतवंशियों का ही है, शेष सभी देशों के यहाँ बसे लोगों की संख्या उनसे कम ही है।

लगभग 14 लाख की जनसंख्या में से 40 प्रतिशत से भी अधिक लोग केवल ग्रेटर लंदन में ही रहते हैं। ईलिंग, ब्रेंट, हाउंसलो, बारनेट, क्रॉयडन और न्यूहेम जैसी ग्रेटर लंदन की स्थानीय नगरपालिकाओं में उनका सबसे अधिक जमावड़ा है। ईलिंग के साउथाल और ब्रेंट के वेंबली इलाकों के बारे में तो यहाँ तक कहा जाता है कि वहाँ गोरे लोग फॉरेनर लगते हैं। लंदन से बाहर जिन नगरों में भारतीयों की आबादी उल्लेखनीय है, वे हैं पश्चिमी एवं पूर्वी मिडलेंड्स, बर्मिंघम, लेस्टर और ग्रेटर मेनचेस्टर। भारतवंशियों में से सबसे अधिक संख्या है हिंदुओं की (लगभग 45 प्रतिशत), फिर सिखों की (लगभग 29 प्रतिशत)। छोटे लेकिन महत्त्वपूर्ण समूह के रूप में बंगाली और बिहारी मूल के लोग भी हैं, जबकि मुसलमान अधिकांशतः गुजरात से हैं और अन्य प्रदेशों के मुसलमानों को मिलाकर उनका प्रतिशत भी 10 के आस-पास है। इनके अलावा तमिल, तेलुगू, उड़िया, मराठी, मलयाली और कन्नड़ बोलनेवाले लोग भी काफी संख्या में हैं।

सामाजिक रूप से देखें तो गुजराती समाज आर्थिक रूप से सबसे अधिक प्रभावशाली है। इनमें उन लोगों की पर्याप्त संख्या है जो पूर्वी अफ्रीका के देशों से साठ और सत्तर के दशक में आए और अपने साथ भारत के प्राचीन समृद्ध व्यापारिक मूल्य और ऊर्जा भी साथ लाए। साठ के दशक में पंजाब से आनेवाले भारतीयों में

अधिकांशतः औद्योगिक कामगार थे और उनकी दूसरी पीढ़ी ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित कीं। आज डॉक्टरों, इंजीनियरों, शिक्षकों, वकीलों और लेखाकारों के वर्ग में उनका प्रभुत्व है। इसके विपरीत गुजराती समाज ने व्यापार के क्षेत्र में अपना सिक्का जमाया और मध्यम स्तर के व्यापारी वर्ग में उनका विशिष्ट स्थान है। स्थानीय जनजीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है कैश एंड कैरी तथा कॉर्नर शॉप। कहते हैं एक समय यह कहावत प्रसिद्ध थी कि किसी गुजराती को आप खड़े होने के लिए कोई कोना दे दें तो कुछ समय बाद आप पाएँगे कि वहाँ एक कॉर्नर शॉप खुल गई है। न्यूज एजेंसियों तथा पोस्ट ऑफिसों का स्वामित्व भी उनके पास बड़ी संख्या में है।

आँकड़ों की दृष्टि से देखें तो 2 प्रतिशत से कुछ अधिक का भारतवंशी समाज ब्रिटेन के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 8 प्रतिशत का योगदान कर रहा है। भारत में यदि ब्रिटेन तीसरा सबसे बड़ा विदेशी निवेशक है तो भारतवंशियों की भूमिका उसमें महत्त्वपूर्ण है। परंतु एक तथ्य आपको संभवतः आश्चर्य में डाल सकता है कि अब धारा दोनों दिशाओं में बह रही है, और सन् 2007 के आँकड़ों पर विश्वास किया जाए तो भारत ब्रिटेन में पहला सबसे बड़ा निवेशक हो गया है, जबकि सन् 2005 में वह तीसरे, सन् 2004 में यह पाँचवें तथा सन् 2003 में वह आठवें स्थान पर था। भारतीय समुदाय की प्रति व्यक्ति आय भी राष्ट्रीय *औसत से अधिक है। सरकारी नौकरियों में भारतीय मूल के लोगों की संख्या* औसत से कम है लेकिन डॉक्टर, लेखाकार, साफ्टवेयर इंजीनियर आदि जैसे पेशों में उनकी धाक है। यद्यपि अघोषित तौर पर अभी भी उच्च पदों पर काबिज होने में उन्हें कुछ बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

राजनीतिक स्थिति

किसी देश के समाज में किसी वर्ग विशेष का स्थान निश्चित करना हो तो वहाँ के राजनीतिक जीवन की नब्ज टटोलना सबसे उपयुक्त माना जाता है। यद्यपि भारत की संसद् के दोनों सदनों राज्यसभा और लोकसभा की भाँति यहाँ भी 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' व 'हाउस ऑफ कॉमंस' हैं, लेकिन मजे की बात यह है कि दुनिया का संभवतः सबसे विस्तृत लिखित संविधान भारत का है तो संसदीय प्रणाली के जन्मदाता ब्रिटेन का कोई लिखित संविधान है ही नहीं। यहाँ कानूनों को ही संविधि का रूप दिया जाता है। भारत में लोकसभा का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है जबकि यहाँ 'हाउस ऑफ कॉमंस' का कार्यकाल चार वर्ष का होता है। राज्यसभा के सांसद इस मामले में भारत में घाटे में हैं, क्योंकि वे छह वर्ष तक ही सदस्य रह पाते हैं, जबकि यहाँ 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' के सदस्य आजीवन सदस्य रहते हैं। ऊपरी सदन में सदस्यों की कुल संख्या 721 और निचले सदन में 645 है। अर्थात् लगभग 50 हजार की आबादी पर एक सांसद।

जहाँ तक भारतवंशियों का प्रश्न है, यहाँ निचले सदन में 6 और ऊपरी सदन में 14 सदस्य भारतवंशी हैं। हाल ही में दो भारतवंशी ऊपरी सदन के सदस्य और बने हैं। इस प्रकार कुल 16 भारतवंशी 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' में हैं। वेस्ट मिडलैंड के लॉर्ड तरसेम किंग सबसे पहले 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' में पहुँचे थे। स्थानीय नगरपालिकाओं में भी 245 से अधिक काउंसलर भारतीय मूल के हैं और कई नगरपालिकाओं में तो वे मेयर भी हैं। तीनों प्रमुख राजनीतिक दलों अर्थात् लेबर, कंजर्वेटिव और लिबरल डेमोक्रेट में भारत समर्थक सांसदों के समूह हैं, जैसे लेबर फ्रेंड्स ऑफ इंडिया, कंजर्वेटिव फ्रेंड्स ऑफ इंडिया आदि। लगभग 31 निर्वाचन क्षेत्रों में भारतवंशी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। आर्थिक संपन्नता बढ़ने के साथ ही अब कई अमीर भारतीय राजनीतिक दलों को भारी-भरकम चंदा देते हैं और उनका राजनीतिक प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया है। वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र में सक्रिय लगभग 50 चैंबरों में से लगभग सभी में एशियन इकाइयाँ बनी हुई *हैं। एशियन से आशय यहाँ भारत, पाकिस्तान, बँगलादेश और श्रीलंका* के मूल निवासियों से होता है। सामाजिक स्तर पर देखें तो भारतीय मूल के लोगों के 200 से अधिक संगठन ऐसे हैं जो राजनीति में सक्रिय हैं।

हिंदी एवं अन्य भाषाएँ

एक आधिकारिक सर्वेक्षण (कम्यूनिटी लेंगुएज ट्रेंड्स 2005) में यह स्वीकार किया गया है कि कई दशकों से भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाएँ ब्रिटेन में मुख्य सामुदायिक भाषाएँ रहीं। सामुदायिक भाषाओं से तात्पर्य उन भाषाओं से है जिनकी पढ़ाई का प्रबंध पूरे ब्रिटेन के सभी स्कूलों, कॉलेजों में नहीं है और स्थानीय तौर पर इनकी पढ़ाई की व्यवस्था की जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप की प्रमुख सामुदायिक भाषाएँ हैं' पंजाबी, उर्दू, बंगाली, गुजराती और हिंदी। यद्यपि अब इनका स्थान धीरे-धीरे चीनी, जापानी और यूरोपीय भाषाएँ लेती जा रही हैं। नब्बे के दशक में कराए गए कुछ सर्वेक्षणों में जब इस बात पर जोर दिया गया कि

सामुदायिक भाषा के रूप में केवल एक ही भाषा को अपनी मातृभाषा बताया जा सकता है, तो सबसे अधिक नुकसान हिंदी भाषा का हुआ। सन् 1993-1994 तक जी.सी.एस.ई. (ब्रिटेन में माध्यमिक परीक्षा, भारत के मैट्रिक के समकक्ष) में हिंदी भी एक विषय के रूप में शामिल था, लेकिन जब पंजाबी, गुजराती, उर्दू और बांगला के अतिरिक्त तमिल, तेलुगू, मराठी, उड़िया, कन्नड़ आदि भाषा-भाषियों में परस्पर संपर्क की भाषा का स्थान ले चुकी हिंदी को अपनी मातृभाषा बतानेवालों की संख्या का हिसाब लगाया गया तो आर्थिक रूप से जी.सी.एस.ई. परीक्षा योजना में 'हिंदी को शामिल रखना व्यावहारिक नहीं है' यह कहकर उसे बाहर कर दिया गया। अकेले इस कदम से विद्यार्थियों के सामने हिंदी पढ़ने की और अभिभावकों के सामने इसकी वैकल्पिक व्यवस्था करने की समस्या खड़ी हो गई। जब तक वैकल्पिक प्रबंध किए जाते, तब तक स्थिति बदल चुकी थी। बात केवल हिंदी तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि धीरे-धीरे पंजाबी तथा गुजराती तक भी पहुँची, क्योंकि प्रवासियों की पहली पीढ़ी तो अपनी मातृभाषा के प्रति पूरी तरह समर्पित रही। लेकिन इसी देश में पली-बढ़ी उनकी संतानें इन भाषाओं को घर में बोलने तक के लिए तो सीखने के लिए तैयार थीं, लेकिन जी.सी.एस.ई. या ए लेविल तक नहीं।

यहाँ हम भारतीय समुदाय की सराहना इस बात के लिए अवश्य करेंगे कि ऐसी परिस्थितियों के बावजूद मंदिरों, गुरुद्वारों, सांस्कृतिक एवं सामुदायिक केंद्रों ने अथक परिश्रम करते हुए और दृढ़ संकल्प से इन भारतीय भाषाओं की पढ़ाई के लिए वैकल्पिक प्रबंध किए और अपने बच्चों को इन्हें सीखने के लिए प्रेरित किया। हिंदी यद्यपि इस मामले में भी पिछड़ी रही, लेकिन नब्बे के दशक में जब भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त और हिंदीभाषी क्षेत्रों के पेशेवर लोग ब्रिटेन आने लगे तो फिर उन्होंने भी इन प्रयासों में हाथ बँटाना प्रारंभ किया। इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि आर्थिक उदारीकरण और तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप जब भारत का नाम विश्व में सम्मान के साथ लिया जाने लगा, जब भारत के इंजीनियरों, डॉक्टरों और चार्टर्ड एकाउंटेंटों ने दुनिया के विकसित देशों में भी अपना झंडा गाड़ना शुरू किया, तो भारत और भारतीय संस्कृति के लिए रुचि नए सिरे से बाहरी दुनिया में ही नहीं, अपितु भारतीय प्रवासियों में भी जागने लगी।

यहाँ हम भारतीय समुदाय की सराहना इस बात के लिए अवश्य करेंगे कि ऐसी परिस्थितियों के बावजूद मंदिरों, गुरुद्वारों, सांस्कृतिक एवं सामुदायिक केंद्रों ने अथक परिश्रम करते हुए और दृढ़ संकल्प से इन भारतीय भाषाओं की पढ़ाई के लिए वैकल्पिक प्रबंध किए और अपने बच्चों को इन्हें सीखने के लिए प्रेरित किया। हिंदी यद्यपि इस मामले में भी पिछड़ी रही, लेकिन नब्बे के दशक में जब भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त और हिंदीभाषी क्षेत्रों के पेशेवर लोग ब्रिटेन आने लगे तो फिर उन्होंने भी इन प्रयासों में हाथ बँटाना प्रारंभ किया। इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि आर्थिक उदारीकरण और तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप जब भारत का नाम विश्व में सम्मान के साथ लिया जाने लगा, जब भारत के इंजीनियरों, डॉक्टरों और चार्टर्ड एकाउंटेंटों ने दुनिया के विकसित देशों में भी अपना झंडा गाड़ना शुरू किया, तो भारत और भारतीय संस्कृति के लिए रुचि नए सिरे से बाहरी दुनिया में ही नहीं, अपितु भारतीय प्रवासियों में भी जागने लगी। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ के साथ ही भारत में आई संचार क्रांति ने तो जैसे नक्शा ही पलट दिया। आज विश्व की बड़ी-से-बड़ी कंपनी भारत में अपना कार्यालय या कारखाना खोलना चाहती है या फिर उसके साथ व्यापार करना चाहती है। इसके लिए स्वाभाविक सहयोगी के रूप में मौजूद उन देशों में बसे भारतवंशी हैं। आर्थिक स्तर पर हो रहे इस सघन संपर्क के साथ-ही-साथ पृष्ठभूमि में यह सवाल भी उभरता रहा कि भारत के साथ संपर्क और व्यापार के लिए किस भाषा का सहारा लेना लाभकारी रहेगा? मैं यह मानता हूँ कि जो लोग अंग्रेजी को भारत के साथ संपर्क की भाषा के रूप में लेकर आगे बढ़े, उन्हें प्रारंभ में अर्थात् महानगरों में तो ठीक-ठाक लाभ मिला, लेकिन भारत की 70 प्रतिशत ग्रामीण जनता तक उनकी पहुँच नहीं हो सकी। मुझे अच्छी तरह याद है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापन प्रारंभ में अंग्रेजी में आए तो उनका प्रभाव ठंडा रहा, लेकिन जब 'ठंडा मतलब कोका कोला' समझाया गया तो फिर 'ये दिल माँगे मोर' हो गया।

संचार तथा सूचना क्रांति ने जब अपना असर दिखाना शुरू किया तो आधा घंटे के आज तक समाचार कार्यक्रम को पीछे छोड़कर आज हिंदी में चौबीसों घंटे के इतने समाचार चैनल हैं कि गिनती करना मुश्किल है। इस क्रांति का प्रभाव भारत तक ही सीमित नहीं रहा। उसकी आँच यहाँ ब्रिटेन सहित पूरी दुनिया में महसूस की गई और इस प्रकार हिंदी को एक नया रूप, नई ऊर्जा मिली।

यद्यपि ब्रिटेन में जी.सी.एस.ई. में हिंदी अभी तक वापस स्थापित नहीं हो पाई है, लेकिन सामुदायिक स्तर पर हिंदी के साप्ताहिक स्कूलों का एक नेटवर्क पूरे यू.के. में आज मौजूद है। अकेले लंदन में ही कम-से-कम सात ऐसे केंद्र हैं जहाँ नियमित तौर पर हिंदी पढ़ाई जाती है। मंदिरों, सामुदायिक केंद्रों में चलाई जा रही इन हिंदी कक्षाओं के लिए भारतीय उच्चायोग भी शैक्षिक सामग्री उपलब्ध कराता है तथा समय-समय पर हिंदी स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से अन्य कार्यक्रम आयोजित करता है, जिनसे हिंदी सीखने-सिखाने का उपयुक्त वातावरण तैयार होता है। हिंदी भाषा और साहित्य के लिए काम करनेवाली कुछ प्रमुख संस्थाएँ एवं संगठन इस प्रकार हैंयू.के. हिंदी समिति, लंदन; गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय, बर्मिंघम; कथा यू.के. लंदन; कृति यू.के. बर्मिंघम; गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय, नॉटिंघम; भारतीय भाषा संगम, यॉर्क; हिंदी भाषा समिति, मेनचेस्टर; वातायन, लंदन; कला संगम, ब्रेडफर्ड; हिंदू कल्चरल सोसाइटी, नॉर्थ लंदन, भारतीय ज्ञानदीप, लंदन, कला निकेतन हिंदी स्कूल, नॉटिंघम; आर्य समाज, लंदन; गीता भवन, बर्मिंघम; चौपाल, लेस्टर; भारतीय सांस्कृतिक एसोसिएशन, यॉर्क; भारतीय विद्या भवन, लंदन; भारतीय सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अकादमी, मेनचेस्टर; महालक्ष्मी सत्संग भवन, लंदन; भारतीय विद्या भवन, मेनचेस्टर; गीता भवन, लेस्टर; विश्व हिंदू केंद्र, साउथाल; हिंदू कल्चरल सेंटर, दुर्गा भवन, स्मेदिक; श्रीराम मंदिर, साउथाल; श्रीबालाजी मंदिर, सेंडवेल; इंडियन कम्यूनिटी सेंटर, बेलफास्टर; एशियन आर्ट्स काउंसिल, लंदन; फोरम फॉर इंडियन लैंग्वेजेज़ एंड लिटरेचर, लंदन आदि।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यू.के. हिंदी समिति, लंदन द्वारा पिछले छह वर्षों से संचालित की जा रही 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता' ने हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों और हिंदी पढ़ानेवाले शिक्षकों में एक नया उत्साह पैदा किया है। भारतीय उच्चायोग का योगदान इस प्रकल्प में उल्लेखनीय रहा है। प्रतियोगिता में उच्च स्थान पानेवाले कुछ विद्यार्थियों को भारत की यात्रा पर ले जाया जाता है, जिससे वे भारत को और भारत में हिंदी को देख-सुन पाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यू.के. हिंदी समिति, लंदन द्वारा पिछले छह वर्षों से संचालित की जा रही 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता' ने हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों और हिंदी पढ़ानेवाले शिक्षकों में एक नया उत्साह पैदा किया है। भारतीय उच्चायोग का योगदान इस प्रकल्प में उल्लेखनीय रहा है। प्रतियोगिता में उच्च स्थान पानेवाले कुछ विद्यार्थियों को भारत की यात्रा पर ले जाया जाता है, जिससे वे भारत को और भारत में हिंदी को देख-सुन पाते हैं। सन् 2006 और सन् 2007 में ब्रिटेन से भारत की सांस्कृतिक यात्रा पर गए हिंदी विद्यार्थियों का हवाई यात्रा व्यय भारतीय उच्चायोग, लंदन ने विदेश मंत्रालय के सहयोग से प्रायोजित किया। इसके साथ ही सामुदायिक स्कूलों में कार्यरत हिंदी शिक्षकों का एक सम्मेलन भी अन्य संस्थाओं के सहयोग से आयोजित किया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नेहरू सेंटर और भारतीय उच्चायोग के सहयोग से तथा ब्रिटेन की निम्नलिखित संस्थाओं के सहकार से प्रतिवर्ष की भाँति सन् 2007 में भी हिंदी दिवस के अवसर पर कवि सम्मेलन आयोजित किए गए: यू.के. वूल्वरहैम्प्टन; गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय, नॉटिंघम; भारतीय भाषा संगम, यॉर्क; हिंदी भाषा समिति, मेनचेस्टर; चौपाल, लेस्टर। ये हिंदी कवि सम्मेलन पिछले 14 वर्षों से लगातार आयोजित किए जा रहे हैं।

गीतांजलि मल्टीलिंगुअल लिटरेरी सर्किल, बर्मिंघम ने अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ सन् 2005 में 'अंतरराष्ट्रीय बहुभाषायी संगोष्ठी' और सन् 2006 में 22वाँ 'अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन' आयोजित करके हिंदी और भारतीय संस्कृति के लिए स्थानीय समाज में जागरूकता और उत्सुकता पैदा की है। रामायण सम्मेलन में भारत सहित कई अन्य देशों जैसे हॉलैंड, फ्रांस, रोमानियाँ, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड से भी विद्वान् रामायण-प्रेमी पधारे थे। भारतीय उच्चायोग, लंदन ने विदेश मंत्रालय के सहयोग से भारत से आए दो विद्वान् प्रतिनिधियों के लिए हवाई यात्रा टिकट

की व्यवस्था भी की।

कथा यू.के. संस्था की ओर से दिया जानेवाला 'अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' और 'पद्मानंद साहित्य सम्मान' भी हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अपनी पहचान बना चुका है।

भाषायी पत्र-पत्रिकाएँ और समाचार माध्यम

भारत के लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं जैसे कि टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, द टेलीग्राफ, द हिंदू के पूर्णकालिक संवाददाताओं के अलावा पी.टी.आई., आई.ए.एन.एस. जैसी संवाद समितियाँ भी ब्रिटेन में कार्यरत हैं। इसके अलावा आनंद बाजार पत्रिका, इंडियन एक्सप्रेस, एशियन एज, द ट्रिब्यून, डेकन हेराल्ड, पाइनियर और इंडिया टुडे जैसे पत्र-पत्रिकाओं के अंशकालिक संवाददाता यहाँ नियुक्त हैं। एशियन एज का तो लंदन का संस्करण ही अलग से निकलता है। स्थानीय मीडिया ने ब्रिटेन में भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार में बखूबी योगदान किया है। गुजराती में *गुजरात समाचार, गरवी गुजरात* और *गुजरात संदेश,* पंजाबी में देश-परदेश, पंजाबी मेल और पंजाब टाइम्स तथा अंग्रेजी में ईस्टर्न आई और एशियन वॉयस प्रमुख हैं। इनमें से क्रमशः गुजरात समाचार, देश-परदेश और एशियन वॉयस की पकड़ अपने-अपने समुदाय में सर्वाधिक है। नई पीढ़ी के लिए स्नूप, देशी, एशियन एक्सप्रैस तथा प्रवासी टुडे भी पसंद किए जा रहे हैं।

भारत से यू.के. में कार्यक्रम प्रसारित करनेवाले प्रमुख टी.वी. चैनल हैं-जी टी.वी., सोनी, बी4यू तथा स्टार टी.वी.। स्थानीय टीवी चैनलों में प्रमुख हैं-एम.ए. टी.वी., अपना टी.वी. तथा वेक्टोन टी.वी.। ये सभी चैनल मुख्य रूप से हिंदी में ही प्रसारण करते हैं। हिंदी के प्रमुख रेडियो चैनल हैं-सनराइज रेडियो, रेडियो क्लब एशिया, एक्सैल रेडियो, किस्मत रेडियो और सबरस रेडियो। इसके अतिरिक्त लैस्टर, बर्मिंघम और ब्रैडफर्ड में स्थानीय रेडियो स्टेशन हैं, जो भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासियों द्वारा संचालित हैं।

लगभग तीस वर्ष प्रकाशित होनेवाला एकमात्र प्रमुख साप्ताहिक हिंदी समाचार पत्र थाअमरदीप। अब केवल हिंदी और उर्दू में प्रकाशित होनेवाला नवीन वीकली साप्ताहिक ही शेष है। हिंदी की एकमात्र साहित्यिक पत्रिका है *'पुरवाई'* जो यू.के. हिंदी समिति द्वारा प्रकाशित की जाती है। बी.बी.सी. की नेट पत्रिका 'बी.बी.सी. हिंदी डॉट कॉम' भी अपने तरह की एकमात्र स्थानीय समाचार पत्रिका है। एक त्रिभाषी समाचार पत्र 'परदेश वीकली' भी हिंदी, अंग्रेजी और पंजाबी में सन् 2006 से प्रकाशित किया जाने लगा है। भारतीय उच्चायोग, लंदन से उसकी गृह पत्रिका 'भारत भवन' हिंदी में प्रकाशित की जाती है।

Shri Rakesh B. Dubey
Attache (Hindi & Culture)
High Commission of India
India House, Aldwych
London WC2B 4NA
Email:rakeshbdubey@gmail.com

हम भाषा को नहीं बनाते, भाषा ही हमको बनाती है। थोड़े से प्रयोजनीय शब्द गढ़ लेना भाषा बनाना नहीं है, वह केवल अपनी सुविधा बनाना है।

-अज्ञेय

12

रूस में हिंदी – तब और अब

डॉ. मदनलाल मधु

अभी कुछ दिन पहले मास्को में छह वर्ष तक हिंदी पढ़ने, हिंदी भाषा और साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने, भारत में अभ्यास का कार्यक्रम पूरा करने के पश्चात् मास्को लौटने वाले दो रूसी विद्यार्थियों से मेरी भेंट हुई । मैंने उनकी प्रतिक्रिया जानने और यह समझने का प्रयास किया कि भारत में हिंदी के व्यावहारिक अभ्यास के समय उनका क्या और कैसा अनुभव रहा । एक विद्यार्थी ने तो तुरंत यह उत्तर दिया कि "यदि हमें अंग्रेजी आती है तो भारत में रहने और अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अंग्रेजी से काम चल सकता है । हम विदेशियों के लिए हिंदी सीखना जरूरी नहीं है।" किंतु दूसरे विद्यार्थी ने उसकी बात काटते हुए दूसरा ही उत्तर दिया। उसने कहा, "मैं अपने इस मित्र से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। दिल्ली जैसे किसी महानगर में तो शायद किसी प्रकार अंग्रेज़ी से काम चल सकता है, वह भी हर जगह और हर समय नहीं, किंतु यदि हम दिल्ली के निकटवर्ती किसी गाँव, किसी ग्रामीण क्षेत्र में जाते हैं तो वहाँ अंग्रेजी नहीं, हिंदी ही हमारे काम आती है । भारत की सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी तो गाँवों में ही रहती है और वहाँ अधिकतम लोग अंग्रेजी नहीं, हिंदी या स्थानीय भाषा बोलते हैं और हिंदी तो जैसे-तैसे समझ ही लेते हैं, इतना ही नहीं, दिल्ली जैसे महानगर में भी दुकानों, टैक्सी और स्कूटर वालों से हिंदी में बात करना अधिक आसान रहता है ।" उस विद्यार्थी ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए इतना और जोड़ दिया-" मुझे तो एक सुखद अनुभाव यह भी हुआ कि जब कभी किसी दुकान से कोई चीज या सामान खरीदते समय मैं दुकानदार से हिंदी में बात करता था तो वह बेहद खुश होता था, मेरी हिंदी क़ी जानकारी की प्रशंसा करता था और कभी-कभी तो मूल्य में कमी भी कर देता था । मेरे विचार में हम विदेशियों को यदि थोड़े या लंबे समय के लिए भारत में रहना या काम करना हो, तो हिंदी अवश्य सीखनी चाहिए।"

मुझे ऐसा लगता है कि दूसरे रूसी विद्यार्थी के कथन में बहुत सच्चाई है और प्रत्येक भारतीय को हिंदी के महत्त्व को उसी प्रकार समझना और ग्रहण करना चाहिए, जैसे कि उस रूसी विद्यार्थी ने किया है । ऐसा उन माता-पिताओं को विशेष रूप से करना चाहिए जो अपने बच्चों को अंग्रेजी पर ही अधिक ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर करते हैं । भारत के इतिहास, उसकी प्राचीन संस्कृति, कला और परंपराओं को समझने के लिए हिंदी का ज्ञान सर्वथा अनिवार्य है और यदि संभव हो तो संस्कृत का ज्ञान भी । अंतरराष्ट्रीय सम्पर्कों के लिए अंग्रेजी सीखनी चाहिए, किंतु अपने देश में हिंदी अथवा अन्य प्रांतीय या स्थानीय भाषाओं की अवहेलना करते हुए अंग्रेजी की रट लगाना उचित नहीं । हमें अन्य देशों से भी इसका सबक सीखना चाहिए । क्यों चीनी लोग चीनी में, स्पेनी लोग स्पेनी में, फ्रांसीसी लोग फ्रांसीसी में ही बातचीत करते हैं। सारी दुनिया के देशों में लोग अपनी भाषा का ही उपयोग करते हैं । क्यों हमारे उच्च और मध्य वर्गीय लोग अपनी भाषा की जगह अंग्रेजी को ही अधिक महत्त्व देने का यत्न करते हैं ?

हाँ, तो हम रूस में हिंदी पढ़ने, हिंदी पढ़ाने, हिंदी से और हिंदी में अनुवाद करनेवाले तथा शोधकार्य में जुटे विद्वानों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं । इस विषय की पृष्ठभूमि को जानने-समझने के लिए इतिहास के कुछ पृष्ठ पलटना भी ज़रूरी है।

भारत की संस्कृति, कला, साहित्य और दर्शन में रूसी साहित्यकारों, दार्शनिकों और कलाविदों की भी कई शताब्दियों से गहरी दिलचस्पी रही है । यद्यपि रूस की हस्तलिखित पुरानी कृतियों में भी भारत का उल्लेख मिलता है, तथापि उसका स्वरूप मुख्यत: किंवदंतियों और किस्से-कहानियों का ही था और पश्चिम के अन्य देशों की भाँति रूस के लिए भारत विचित्र और रहस्यमय तथा अजूबों का देश ही था । पंद्रहवीं शताब्दी में ही रूसियों के लिए भारत की छवि स्पष्ट होने लगी । तभी रूस और भारत के बीच व्यापारिक तथा अन्य संबंध स्थापित होने लगे और एक पहला साहसी त्वेर नगर का व्यापारी उनफ़ानाझी निकीतिन कठिन और लंबी समुद्री-यात्रा कर के भारत पहुँचा । वह लगभग तीन वर्षों तक भारत में रहा, सभी श्रेणियों, वर्गों और विभिन्न जातियों तथा विचारोंवाले लोगों से मिला-जुला और अपनी पुस्तक "तीन समुद्र पार की यात्रा " में उसने भारत के अनेक पक्षों का आँखों देखा, सच्चा तथा अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया । इसके पश्चात तो कई रूसी भारत पहुँचे और उन्होंने अपनी डायरियों और टिप्पणियों में भारतीय जीवन की चर्चा की और इस प्रकार साधारण रूसियों को

भारत की जानकारी मिलने लगी।

इस संबंध में एक अन्य रूसी यात्री, संगीतकार, अभिनेता, कलाकार और विद्वान् गेरासिम लेबेदेव का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। लेनेदेव सन् 1758 से 1779 तक यानी बारह वर्ष तक भारत में रहे। उन्होंने कलकत्ता (कोलकाता) में पहला व्यावसायिक थियेटर स्थापित किया और भारतीय कलाकर्मियों के साथ मिलकर कई नाटक प्रस्तुत किए। विद्वान लेनेदेव ने संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन करके उसके व्याकरण को रूसी मनीषियों तक पहुँचाया। कहा जा सकता है कि उन्होंने ही एक प्रकार से रूस में भारत-विद्या के अध्ययन की नींव डाली। उसके फलस्वरूप संस्कृत भाषा, प्राचीन भारतीय साहित्य, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों तथा नाट्य कला में रुचि बढ़ी। प्रसिद्ध रूसी इतिहासकार और लेखक कारामज़ीन ने भगवद्गीता और कालिदास के अद्भुत नाटक शकुंतला का रूसी में अनुवाद किया। तत्कालीन रूसी कवि वसीली श्रुकोव्स्की ने, जिन्हें रूसी काव्य के सूर्य पुश्किन का गुरु भी कहा जाता है, नल-दम्यंती की मार्मिक कथा को रूसी पाठकों तक पहुँचाया।

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने और सन् 1955 में भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की सोवियत संघ की सरकारी यात्रा और उसी वर्ष के अंत में सोवियत नेताओं निकीता खुश्चेव तथा वुल्गानिव की भारत-यात्रा के बाद हमारे दोनों देशों में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संबंध बहुत तेज़ी से बढ़ने लगे और तभी हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य में सोवियत विद्वानों और साहित्य सेवियों की रुचि में तीव्रता आई।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 18 वीं शताब्दी में तो रूसी विद्वानों तथा साहित्यिकों का ध्यान मुख्यत: संस्कृत भाषा, प्राचीन भारतीय साहित्य, संस्कृति और दर्शन शास्त्र पर ही केंद्रित रहा। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि तब तक खड़ी बोली का रूप भी निखरा नहीं था। 19 वीं शताब्दी के अन्त में ही रूसी विद्वानों ने हिंदुस्तानी यानी हिंदी-उर्दू के बारे में पुस्तकें लिखी; उनमें मोटे तौर पर हिंदी-उर्दू के कुछ नियम ही दिए जाते थे।

सन् 1917 में रूस में अक्तूबर समाजवादी क्रांति होने के बाद ही, जब मध्य एशिया के कई राज्य सोवियत संघ में शामिल हो गए, तब भारत समेत पूर्वी देशों की संस्कृति और भाषाओं की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में लेनिनग्राद (अब पीट्र्सबर्ग) विश्व-विद्यालय के उर्दू-हिंदी विभाग के अध्यक्ष अकादमीशियन अ.प. वारानिकोव ने इन भाषाओं और इन के साहित्य के अध्ययन में बड़ा योगदान दिया। उन्होंने उन दोनों भाषाओं के संबंध में कई लेख लिखे, सन् 1926 में हिंदुस्तानी यानी हिंदी-उर्दू के संबंध में एक पुस्तक छपवाई, जिसे रूसी में उन भाषाओं के अध्ययन की पहली पुस्तक कहा जा सकता है। उसके पश्चात् तो कई सोवियत भारतविदों ने इस काम को आगे बढ़ाया तथा हिंदी भाषा के व्याकरण तथा साहित्य पर अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए।

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने और सन् 1955 में भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की सोवियत संघ की सरकारी यात्रा और उसी वर्ष के अंत में सोवियत नेताओं निकीता खुश्चेव तथा वुल्गानिव की भारत-यात्रा के बाद हमारे दोनों देशों में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संबंध बहुत तेज़ी से बढ़ने लगे और तभी हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य में सोवियत विद्वानों और साहित्य सेवियों की रुचि में तीव्रता आई। उसी प्रकार भारत में रूसी भाषा और साहित्य में अधिकाधिक दिलचस्पी ली जाने लगी। कहा जा सकता है कि पिछली शताब्दी के पचास के दशक से नब्बे के दशक सोवियत भारत मैत्री के बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष थे। इन वर्षों में भारतीय संस्कृति, कला, दर्शन तथा हिंदी समेत कई प्रमुख भारतीय भाषाओं तथा उनेक साहित्य का तीव्र गति से प्रचार-प्रसार हुआ। मोटे तौर पर इस प्रचार-प्रसार की तीन दिशाएँ थीं--

1. हिंदी भाषा का पठन-पाठन।
2. हिंदी साहित्य का रूसी तथा तत्कालीन कई सोवियत भाषाओं में अनुवाद।
3. शोध-कार्य।

हिंदी भाषा का पठन-पाठन मास्को विश्वविद्यालय, मास्को राजकीय अंतरराष्ट्रीय संबंध संस्थान, प्राच्य विद्या संस्थान, लेनिनग्राद, पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय, व्लादीवोस्तोक विश्वविद्यालय, रेज़ान तथा कज़ान विश्वविद्यालय में होता था। इन संस्थाओं में अब भी हिंदी का पठन-पाठन होता है।

हिंदी साहित्य का रूसी भाषा में पर्याप्त अनुवाद हुआ है।

विद्यापति, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, कबीर, रसखान, मीराबाई तथा आधुनिक काल के भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, मुक्तिबोध, शिवमंगलसिंह सुमन, अज्ञेय, बच्चन आदि के काव्य से रूसियों को परिचित होने का अवसर मिला है । इसी प्रकार गद्य के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचनद के लगभग सभी सुपरिचित उपन्यासों, कहानियों और यशपाल, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय, कमलेश्वर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र कुमार तथा भीष्म साहनी आदि के उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद हो चुका है । हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान रखनेवाले रूसी अनुवादकों ने उक्त कवियों-लेखकों की रचनाओं को रूसी पाठकों तक पहुँचाया है। इसी प्रकार महाकवि अलेम्साद्र पुश्किन, लेर्मोनतोन, मयाकोव्स्की, चुकोव्स्की का काव्य, लेव तोल्स्तोय, दोस्तोयेव्स्की तुर्गनेव, गोर्की, चेरकेव, कुप्रिन, शोलोखोव, रसूल हम्ज़ातोव, चंगीज़ आइत्मातोव आदि विश्व-विरव्यात लेखकों की रचनाएँ हिंदी में अनूदित हुई हैं, जिन्हें अब भी भारतीय हिंदी-पाठक बड़े चाव से पढ़ते हैं । सोवियत संघ के विघटन से पहले मास्को के 'प्रगति' और 'रादुगा' प्रकाशन गृहों ने उक्त तथा कई अन्य लेखकों के बड़े सुंदर हिंदी संस्करण प्रकाशित किए थे । सन् 1992 में सोवियत संघ के विघटन के बाद मास्को के प्रकाशनगृहों ने हिंदी तथा भारत की बारह अन्य भाषाओं में अपने प्रकाशन बंद कर दिए क्योंकि सोवियत सत्ताकाल में उन्हें राज्य की ओर से आर्थिक सहायता मिलती थी और उस सहायता के अभाव में उनके लिए भारत में पुस्तकें भेजना और कुछ लाभ कमाना असंभव हो गया। अब भारत में हिंदी के कुछ बड़े और छोटे प्रकाशक इन पुस्तकों का पुनर्मुद्रण करके खूब पैसा कमा रहे हैं और उन में से अधिकांश तो अनुवादकों और मास्को के प्रकाशकों को कोई रॉयल्टी नहीं दे रहे हैं। कुछ घटिया प्रकाशक तो अनुवादकों का नाम तक नहीं छापते या फिर कोई दूसरा नाम छाप देते हैं । यह बहुत दुःख की बात है। चूँकि रूसी साहित्य का बहुत बड़ा भाग इन पंक्तियों के लेखक द्वारा अनूदित हुआ है, इसलिए इसे भुक्तभोगी की पीड़ा भी कहा जा सकता है ।

शोध के क्षेत्र में सोवियत और रूसी विद्वानों ने बहुत ही प्रशंसनीय काम किया है । हिंदी के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों, लेखकों और आलोचकों, समीक्षकों की रचनाओं पर शोध-कार्य हुआ है और अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । रवेद की बात है कि सन् 1991 के अंत में सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस और भारत के संबंधों में सत्ताकाल जैसी घनिष्ठता और गर्माहट नहीं रही और इसके परिणाम स्वरूप हिंदी के पठन-पाठन, अनुवाद और शोध---इन सभी क्षेत्रों में कुछ गतिरोध आ गया । फिर भी अकादमीशियन चेलिशेव, लिपिरोव्स्की, उलत्सिफेरोव, प्योतर नाराजिकोव, येवोनिया वानेनिना ल्यदमीला सोखलोवा, त्रीना गोवरूशिना, सर्गेय सरेश्रित्री, अलेकवाद्र सिगोर्स्की आदि हिंदी के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी काम कर रहे हैं । इन पंक्तियों के लेखक ने रूसी और हिंदी लेखकों के कृतित्व और जीवन के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से गोर्की और प्रेमचंद पर शोध-कार्य कर के मास्को राजकीय विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की डिग्री ली और फिर "गोर्की और प्रेमचंद' दो अमर प्रतिभाएँ" नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसकी लगभग 15 हजार प्रतियाँ हिंदी में और 5 हज़ार प्रतियाँ कन्नड़ भाषा में अनूदित होकर बिक चुकी हैं। तुलनात्मक अध्ययन की इस परंपरा को रूसी और हिंदी साहित्य के अच्छे ज्ञाता आगे बढ़ा रहे हैं। शोध की दृष्टि से यह क्षेत्र भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे हमारे देशों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और साहित्यिक विकासक्रम पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और हमें साहित्यिक प्रक्रिया और उसके विश्लेषण को समझने में बड़ी सहायता मिलती है ।

अंत में यह स्पष्ट कर देना भी सर्वथा उचित होगा कि यद्यपि सोवियत संघ के विघटन के बाद लगभग एक दशक तक रूस-भारत संबंधों में कुछ ठंडक आने के फलस्वरूप रूस में हिंदी या भारतीय भाषाओं के अध्ययन, अनुवाद और शोध कार्य की कुछ क्षति हुई है, तथापि पुतिन के राष्ट्रपति बनने के बाद पिछले आठ वर्षों में वातावरण में परिवर्तन हुआ है। रूस की विदेश-नीति अमेरिका और पश्चिम की ओर अधिकाधिक झुकने के बजाए अब चीन और भारत की तरफ़ पर्याप्त ध्यान देने लगी है । भारत की तीव्र आर्थिक प्रगति भी भारत को रूस समेत दुनिया के सभी देशों की नजर में ऊपर उठा रही है। इससे हमारे सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा कलात्मक क्षेत्रों में भी घनिष्ठता तथा गर्माहट आ रही है । हमारे रिश्तों में जैसे-जैसे अधिक चमक आएगी, वैसे-वैसे रूस में नहीं, सारी दुनिया में हमारी हिंदी और उसके साहित्य की महत्ता बढ़ती जाएगी। रूस में इसके लिए बहुत पहले से ही उपजाऊ भूमि तैयार है, इसलिए हमें भविष्य में अच्छी फसल की आशा करनी चाहिए ।

Prof. (Dr.) M. L. Madhu
18, Lomonosovsky Prospect,
Apartment 367
Moscow 119296
Russia
Tel:+7-495-9302320

13

विश्व हिंदी सम्मेलनों का अवदान : एक आकलन

डॉ. कृष्ण कुमार

दीर्घकालीन प्रवासी भारतीय गांधी जी 9 जनवरी 1915 में, 21 वर्ष के प्रवास के बाद, भारत वापस आते ही भाषा के काम में लग गए। वे यह भली प्रकार समझ गए थे कि भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता-एकता एवं पहचान को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्र की एक भाषा होनी जरूरी है, जिसके माध्यम से भारतीय आपस में संवाद कर सकें। और यह भाषा हिंदी ही हो सकती है, अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर, यह मत था गांधी जी का। इस कार्य की पहल उन्होंने 1918 में ही दक्षिण भारत से शुरू की जहाँ उन्होंने 1928 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की। राष्ट्र में हिंदी को जन-जन तक पहुँचाने एवं सभी भारतीयों को जोड़ने के लिए ही यह कदम उठाया गया था। हिंदी के स्वरूप को और अधिक व्यापक एवं विश्वव्यापी बनाने के विचार से उन्होंने 1936 में अपनी कर्मस्थली वर्धा में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की स्थापना की। रतनलाल भगत (1) लिखते है-"विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की कल्पना का मूल आधार उन भावनाओं से अनुप्राणित होता है, जिनके अंतर्गत महात्मा गांधी प्रभृति मनीषी ने वर्ष 1936 में भारत के हिंदीतर राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की थी। इसी वर्ष नागपुर में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था और इस अधिवेशन में, जिसके अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद थे, हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए एक व्यापक रूपरेखा तैयार की गई थी। इस अधिवेशन में डॉ राजेंद्र प्रसाद, महात्मा गांधी, पं जवाहर लाल नेहरू, पुरुषोत्तम दास टंडन, सेठ जमनालाल बजाज, काका साहेब कालेकर, माखन लाल चतुर्वेदी तथा कई अन्य सुविख्यात विद्वानजन शामिल थे।"

विश्व हिंदी सम्मेलनों की वर्तमान श्रृंखला की वैचारिक शुरुआत सितंबर 1973 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नायक मधुकर राव चौधरी के नेतृत्व में हुई थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय इंदिरा गांधी ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया और भारत सरकार ने मई 1974 में पूर्ण सहयोग एवं समर्थन का आश्वासन दिया। इस प्रकार भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता-एकता के लिए तथा हिंदी को विश्वव्यापी बनाने के उद्देश्य से 1975 में नागपुर से विश्व हिंदी सम्मेलन की जो शोभायात्रा प्रारंभ हुई उसने जुलाई 2007 में न्यूयार्क में अपना आठवाँ पड़ाव पूरा कर लिया।

अब तक के इन सम्मेलनों ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त की है। इसका उचित आकलन ही इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है। हमें एक समुचित एवं सुनियोजित योजना बनानी है जिससे भारतवर्ष सबसे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में आगे आ सके। योजना को मूर्तरूप देने के लिए भाषायी समन्वय के साथ, हमारी शिक्षा को भारतीय भाषाओं के माध्यम से होना ही पड़ेगा। और यह सब तब तक संभव नहीं हो जाएगा, जब तक हम संपूर्ण भारत के लिए एक संपर्क भाषा का चयन, प्यार-स्नेह एवं समरसता के सिद्धांतों पर नहीं कर लेते हैं।

मौखिक या लिखित भाषा का उद्गम विचारों के प्रादुर्भाव से होता है। मौखिक भाषा ध्वनि के रूप में कर्णप्रिय होती है जबकि लिखित भाषा ध्वनि की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर चित्रमय लिपि के रूप में चक्षुप्रिय होती है। इस संदर्भ में वाङ्मय की संरचना के लिए विचार ही सबसे महत्त्वपूर्ण होते हैं और इनको यदि मातृभाषा में व्यक्त किया जाए तो विचारों का संप्रेषण ठीक एवं बोधमय होता है, यह एक वैज्ञानिक सत्य है। और इस स्थिति में ही उस भाषा में रचा गया साहित्य उच्चकोटि का होकर विश्वस्तरीय बनने की क्षमता रखता है। मेरे विचार से यह एक चिंता का विषय है कि भारत जैसा राष्ट्र, जो मनीषियों एवं संतुलित विचारकों से भरा

हुआ है, पिछले कई दशकों में कोई नोबेल पुरस्कार किसी भी क्षेत्र में नहीं अर्जित कर पाया है, जबकि इजराइल जैसे छोटे से राष्ट्र ने सन् 1948 से अब तक 12 ऐसे पुरस्कार अपनी झोली में डाल लिये हैं। यह राष्ट्र बड़े ही गर्व के साथ अपना सारा काम-काज अपनी राष्ट्रभाषा हिब्रू में करता है। अगर भारत की अनेक भाषाओं को सही बढ़ावा दिया जाता है तो कोई कारण नहीं है कि हम कई अन्य गुरुवर टैगोर जैसे साहित्यकारों को न खोज निकालें। मुझे पूरा विश्वास है कि देश की आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं में ऐसे अनेक साहित्यकार अब भी हैं जो सही वातावरण एवं प्रोत्साहन के मिलते ही नोबेल पुरस्कार भारत को दिला सकते हैं।

भारतीय एकता एवं समरसता को ध्यान में रखते हुए महात्मा गांधी ने सन् 1909 में अपने विचार 'हिंद स्वराज' में कुछ इस प्रकार व्यक्त किए थे"हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पार्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए।" लगभग 100 वर्षों के उपरांत भी भारत की भाषायी स्थिति में सुधार आने के स्थान पर यह और अधिक चिंता का विषय बन गया है, क्योंकि अंग्रेजी भाषा के बढ़ते हुए वर्चस्व ने भारत की समस्त भाषाओं को कमजोर बनाया है जिसके कारण राष्ट्रीय एकता कमजोर हुई है। राष्ट्रीय एकता की चिंता सन् 1947 में ही युगद्रष्टा अरविंद को भी थी और उन्होंने अपने विचार स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किए थे। भारत की इस स्थिति में कोई आशातीत परिवर्तन नहीं आया है। विश्व में भारत की पहचान स्थापित करने के उद्देश्य से विश्व हिंदी सम्मेलन का पहला कदम सन् 1975 में उठा था और अब तक यह कहाँ तक पहुँचा है, इसे तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका

विश्व हिंदी सम्मेलन

संख्या	**तिथि**	**स्थान एवं देश**
1.	10-14 जनवरी, 1975	नागपुर, भारत
2.	28-30 अगस्त, 1976	मॉरीशस
3.	28-30 अक्तूबर, 1983	दिल्ली, भारत
4.	2-4 दिसंबर 1993	मॉरीशस
5.	4-8 अप्रैल, 1996	पोर्ट ऑफ स्पेन, ट्रिनिडाड एवं टोबेगो
6.	14-18 सितंबर, 1999	लंदन, यू. के.
7.	5-9 जून, 2003	पारामारिबो, सूरीनाम
8.	13-15 जुलाई, 2007	न्यूयॉर्क, अमेरिका

विश्व हिंदी सम्मेलन के संदर्भ में तालिका में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें स्पष्ट हैं। पहला तो यह कि अब तक भारत एवं मॉरीशस में यह समारोह दो-दो बार संपन्न हो चुका है जिसके पीछे भारतीय भावनाएँ एवं हिंदी जाननेवालों की बहुलता थी। दूसरा यह कि चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन के उपरांत इसके आयोजन में एक निरंतरता आई है, अन्यथा दूसरे और तीसरे के बीच सात वर्षों का अंतर हो गया था। तीसरा यह कि छठा सम्मेलन, जिसका आयोजन यू.के. में हुआ था, कई मायनों में हिंदी के प्रसार एवं प्रकार की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जिन अंग्रेजों ने हम पर लगभग 300 वर्षों तक राज्य किया था, उन्हीं की राजधानी लंदन में भारत की भाषा एवं संस्कृति का परचम फहराया गया था। इससे निश्चय ही मैकाले की विचरती आत्मा को कष्ट अवश्य हुआ होगा, क्योंकि भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति को समाप्त करने की योजना मैकाले ने ही सन् 1834 के आस-पास बनाई थी। यह छठा सम्मेलन व्यक्तिगत रूप से मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि मैं इसकी कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष भी था। विगत सातों सम्मेलनों में भारत एवं विदेशी विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर चर्चाएँ कीं और अंत में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित हुए। इनमें से जिन मुख्य बिंदुओं पर चर्चाएँ हुई थीं, उनमें से कुछ मुख्य विषय इस प्रकार थे :

1. हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति
2. विश्व मानव चेतना
3. भारत और हिंदी एवं आधुनिक युग और हिंदी
4. संचार माध्यम और हिंदी
5. हिंदी में प्रचार-प्रसार में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
6. विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्याएँ
7. वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में हिंदी की प्रगति
8. हिंदी-पत्रकारिता का सशक्त माध्यम
9. हिंदी एवं भावी पीढ़ी
10. हिंदी के प्रचार-प्रसार में शैक्षिक संस्थाओं का योगदान

पारित किए गए प्रस्तावों में कुछ तो सामयिक ही थे, किंतु अनेक ऐसे भी थे जिनकी उपयोगिता तब थी और अब भी है। पारित प्रस्तावों के फलस्वरूप ही वर्धा में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी है, किंतु यह प्रारंभ से ही सरकारी अफसरों के घेराव में आता रहा है जिसके कारण इसके माध्यम से कोई विशेष प्रगति नहीं हो पाई है जबकि इसके बाद हैदराबाद में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय नित नए प्रतिमान स्थापित कर रहा है। अनेक सरकारी अड़चनों के बाद अब विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्य पदाधिकारियों की नियुक्ति हो गई है और आशा की जाती है कि अब इसी के माध्यम से विश्वव्यापी हिंदी की गतिविधियों का संचालन एवं नियंत्रण होगा। बड़े दुःख की बात है कि पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव-संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का, अब तक तीन दशकों के बाद भी प्रस्ताव के रूप में ही अधर में लटका है। निःसंदेह इस कार्य को मूर्तरूप देने में परेशानियाँ दो तरीके की हैं। एक तरफ तो इसके लिए कम-से-कम 100 करोड़ रुपए की आवश्यकता है तो दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र संघ के 96 सदस्यों का समर्थन भी चाहिए। आर्थिक रूप से भारत अब पहले से अधिक समृद्ध है और संभवतः इस यज्ञ को सफल बनाने के लिए इतनी बड़ी धनराशि जुटाने में परेशानी नहीं होनी चाहिए।, किंतु 96 राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त करना इतना सरल काम नहीं है और इसके लिए अनुकूल वातावरण बनाना ही पड़ेगा। आज की सत्ताधारी सरकार का ध्यान इस ओर गया है, और लगता है कि भारत माँ के दामन का यह काला दाग भी अब शीघ्र ही साफ हो जाएगा। भूतपूर्व विदेश राज्यमंत्री श्री आनंद शर्मा ने 8 नवंबर, 2006 को लंदन स्थित नेहरू सेंटर में अंतर्राष्ट्रीय समकालीन साहित्य सम्मेलन के समापन समारोह के अवसर पर आश्वासन दिया था कि उनकी सरकार इस कार्य में समर्पित है। उन्हीं के शब्दों में ''हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के लिए केवल धनराशि की आवश्यकता नहीं है, इसके लिए हमें संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों का बहुमत समर्थन भी चाहिए।''

छठा सम्मेलन, जिसका आयोजन यू.के. में हुआ था, कई मायनों में हिंदी के प्रसार एवं प्रकार की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जिन अंग्रेजों ने हम पर लगभग 300 वर्षों तक राज्य किया था, उन्हीं की राजधानी लंदन में भारत की भाषा एवं संस्कृति का परचम फहराया गया था। इससे निश्चय ही मैकाले की विचरती आत्मा को कष्ट अवश्य हुआ होगा, क्योंकि भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति को समाप्त करने की योजना मैकाले ने ही सन् 1834 के आस-पास बनाई थी।

इस विषय पर चर्चा करते-करते यह भी सोचना आवश्यक है कि विश्व स्तर पर हिंदी को स्थापित करवा लेने मात्र से अपने राष्ट्र की मौलिक समस्या का समाधान नहीं हो जाता है। कुछ चुने हुए वर्गों द्वारा भारतीय भाषाओं का उपेक्षित होना तथा उनको हीनभावना से देखा जाना। इस स्थिति को बदलने के लिए हर भारतीय को उसी प्रकार जागरूक होना पड़ेगा जैसे जापान, कोरिया, चीन, इजराइल, स्पेन, जर्मनी एवं संयुक्त अरब अमीरात जैसे राष्ट्र हैं।

भारत में कुछ लोगों का यह मानना है कि यह राष्ट्र वैश्वीकरण की दौड़ में आगे बढ़ रहा है और इसका मुख्य कारण है अंग्रेजी भाषा का प्रयोग। हो सकता है कि यह कुछ हद तक ठीक हो, किंतु यह स्थिति भारत जैसे महान् राष्ट्र के लिए जिसकी जनसंख्या 1.22 बिलियन है, घातक सिद्ध हो सकती है। यदि हम अपने उत्पाद की कीमत एवं गुणवत्ता को स्तरीय बना लेते हैं तो अन्य देश दौड़े-दौड़े आएँगे और भारतीय भाषाएँ इनमें आड़े नहीं आएँगी। कोरियाई नागरिक भारत में आकर हिंदी सीख रहे हैं, क्योंकि वे जान गए हैं कि व्यापार करने के लिए, भारतीय कर्मचारियों से सही प्रकार से काम लेने के लिए, उनको वहाँ भी स्थानीय भाषा का ज्ञान होना ही चाहिए। और यही बात तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन के अध्यक्ष, यू.के. निवासी डॉ. रोनौल्ड स्टुवर्ट मैग्रेगट ने कही थी। उन्हीं के शब्दों में ''जो भी देश या व्यक्ति भारत को समझना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम हिंदी सीखनी होगी, हिंदी की उपयोगिता और विशेषता को समझना होगा।''

इक्कीसवीं सदी के बढ़ते चरण में भारतीय भाषायी समन्वय एवं उनके सशक्तीकरण के आधार पर ही भारतीय एकता के लिए 'संपूर्ण भारत की एक भाषा' का चयन हो सकता है। जिसके

माध्यम से सब उसी प्रकार जुड़ सकते हैं जैसे भारत की स्वतंत्रता के लिए जुड़े थे। इन्हीं विचारों से अगस्त 2005 में गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय ने एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया था। संगोष्ठी में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किए गए थे :

1. भारतीयता के नारे को अग्रसर करना प्रत्येक भारतीय का उद्देश्य होना चाहिए।
2. सभी भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिए और इसके लिए केंद्रीय सरकार को यथोचित संसाधन उपलब्ध कराना चाहिए।
3. भारतीय भाषाओं के बीच विभिन्न कार्यक्रमों के आदान -प्रदान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
4. अनुवाद एवं विचार विनिमय के लिए एक राष्ट्रीय केंद्र की स्थापना होनी चाहिए जिसकी शाखाएँ अन्य क्षेत्रों में भी होनी चाहिए।
5. एक भाषा के साहित्य को अन्य भाषाओं में अनुवाद-प्रक्रिया को बढ़ावा देने तथा प्रोत्साहित करने के साथ ही सम्मानजनक स्थान भी दिया जाना चाहिए।
6. उत्कृष्ट गुणवत्तावाले अनुवादों को विभिन्न प्रकार से विद्वतापूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित करना चाहिए।
7. सुनियोजित वैज्ञानिक ढंग से हर भारतीय को हिंदी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिससे कि यह भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति की पहचान बन सके।
8. राष्ट्र को अंग्रेजी भाषा के प्रयोग से दूरी बढ़ाते हुए भारतीय भाषाओं के साथ निकटवर्ती संबंध बनाना चाहिए।
9. भारत की चिरस्थायी सफलता को सुरक्षित रखने के लिए, सुनियोजित, काल निर्धारित योजनाबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत ऊपर दिए गए सभी सूत्रों को सही रूप से अपनाने के अतिरिक्त भारतीयों के पास और कोई अन्य रास्ता नहीं है।
10. संस्कृत एवं अन्य शास्त्रीय भाषाओं को पुनः जीवित करने के लिए भरसक प्रयास करना चाहिए।
11. ऊपर दिए गए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत एवं विदेशों में बहुभाषी सम्मेलनों एवं संगोष्ठियों का आयोजन होना चाहिए।
12. भारत सरकार को विश्व हिंदी सम्मेलनों के साथ-साथ विश्व बहुभाषी सम्मेलनों का आयोजन शीघ्र ही प्रारंभ करना चाहिए।
13. प्रवासी भारतीयों को भाषायी समरसता का कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
14. उच्चस्तरीय एवं वयस्क शिक्षा के लिए और अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। इस कार्य के लिए केंद्रीय सरकारी एवं निजी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वह वयस्कों को विदेशी भाषा का ज्ञान एवं प्रशिक्षण दे सकें।
15. यह संगोष्ठी पुरजोर सिफारिश करती है कि भाषायी समरसता को आगे बढ़ाने के लिए केंद्रीय सरकार भारतीय भाषाओं का राष्ट्रीय आयोग शीघ्र ही स्थापित करे।
16. केंद्रीय सरकार भारतीय भाषाओं के लिए यूनीकोड तथा अन्य संबंधित आई. टी. उपकरणों को बढ़ावा देने के लिए यथोचित संसाधनों की व्यवस्था करे, जिससे कि भारत की सार्वभौमिक अखंडता एवं एकता को भारत तथा विश्व में स्थापित किया जा सके। इसके लिए भारत तथा विदेशों में व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना आवश्यक है। हिंदी के साथ-साथ विश्व बहुभाषी सम्मेलनों का आयोजन अब समय की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गई है। पारित प्रस्ताव को भारत सरकार के विभिन्न विभागों को तत्काल ही भेज दिए गए थे, किंतु दुर्भाग्यवश अब तक कोई प्रतिक्रिया नजर नहीं आई है।

भारतीय एकता को ध्यान में रखते हुए मैं पुनः विनोबा भावे जी के प्रस्ताव एवं विचारों को दोहराना चाहता हूँ। उन्होंने कहा था- ''मैं नागरी लिपि पर जोर दे रहा हूँ। मेरा अधिक ध्यान नागरी लिपि को लेकर चल रहा है। नागरी लिपि अगर हिंदुस्तान की सब भाषाओं के लिए चले तो हम सब लोग बिलकुल नजदीक आ जाएँगे। खास करके दक्षिण की भाषाओं को नगरी लिपि का लाभ होगा। वहाँ की चार भाषाएँ अत्यंत नजदीक हैं। उनमें संस्कृत शब्दों

के अलावा उनके जो अपने प्रांतीय शब्द हैं, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम के, उनमें बहुत से शब्द समान हैं। वे शब्द नागरी लिपि में आ जाते हैं तो दक्षिण की चारों भाषाओं के लोग, चारों भाषाएँ 15 दिन में सीख सकते हैं। तब कितना आसान हो जाएगा!'' इसके बाद भिन्न-भिन्न लिपि सीखने में हर एक की अपनी-अपनी परिस्थिति आड़े आती है। मैंने हिम्मत की, हिंदुस्तान की हरएक लिपि का अध्ययन किया। परिणाम में विचार आया कि दूसरी लिपियाँ चलें, उसका मैं विरोध नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि वे भी चलें और नागरी भी चले। नागरी ही चले, यह मैं नहीं कहता। मैं 'भी' वादी हूँ। वह 'भी' चलें और नागरी ही चले, 'भी' चले। आज के संदर्भ में यदि भाषायी समन्वय को बल देते हुए भारत की सभी भाषाएँ नागरी लिपि का प्रयोग भी करने लगती हैं तो आपसी प्यार एवं सद्भावना बढ़ेगी, ऐसा मैं मानता हूँ। विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि नागरी को ही माना गया है। इसके अक्षरों की आकृति ध्वनि के अनुरूप ही होती है। कुछ लोग रोमन लिपि को जोड़ने की लिपि मानने लगे हैं। गांधी जी ने भी नागरी लिपि के प्रयोग के लिए वकालत की थी। अतः विश्व हिंदी एवं अन्य ऐसे सम्मेलनों में इस विषय पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए। नागरी लिपि को अंगीकार करना सभी भारतीयों एवं भारतीय भाषाओं के हित में है। जरूरत है तो केवल विवेक एवं सद्भावना के साथ इस विषय पर ठीक से चिंतन करने की।

भारतीय एकता को ध्यान में रखते हुए मैं पुनः विनोबा भावे जी के प्रस्ताव एवं विचारों को दोहराना चाहता हूँ। उन्होंने कहा था-''मैं नागरी लिपि पर जोर दे रहा हूँ। मेरा अधिक ध्यान नागरी लिपि को लेकर चल रहा है। नागरी लिपि अगर हिंदुस्तान की सब भाषाओं के लिए चले तो हम सब लोग बिलकुल नजदीक आ जाएँगे। खास करके दक्षिण की भाषाओं को नगरी लिपि का लाभ होगा। वहाँ की चार भाषाएँ अत्यंत नजदीक हैं। उनमें संस्कृत शब्दों के अलावा उनके जो अपने प्रांतीय शब्द हैं, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम के, उनमें बहुत से शब्द समान हैं।

भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता-एकता के लिए तथा आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन की सार्थकता को स्थापित करने एवं विश्व हिंदी सम्मेलनों के अवदानों का यथोचित आकलनों करने और भाषायी समन्वय की प्रक्रिया को द्रुतिगति से बढ़ाने के लिए नागरी लिपि पर डॉ परमानंद पांचाल जी ने बल दिया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को स्थापित कराने का कार्य आठवों विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय था। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने अपने उद्घोष में प्रारंभ एवं अंत में हिंदी के वाक्य कहकर हिंदी भाषा को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया। उन्होंने कहा-''नमस्ते। क्या हाल है ?'' और अंत में-''मुझे अपना हिंदी का तनिक प्रयोग करने का अवसर है। किंतु मैं उसको ठीक करना चाहता हूँ। मुझे खुशी हो रही है। मैं आप सबको शुक्रिया देना चाहता हूँ। नमस्ते और धन्यवाद।''

विश्व बहुभाषी सम्मेलनों की श्रृंखला का शुभारंभ शीघ्र ही होना चाहिए। इससे हिंदी भाषा की उदारता का परिचय मिलेगा और समरराता का मार्ग सरल एवं सहज होगा। विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों के आधार पर वर्धा में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और मॉरिशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हो चुकी है।इन दोनों के माध्यम से ठोस कार्यक्रमों की योजनाएँ बन चुकी हैं। विश्व हिंदी जगत को विश्व विद्यालय के कुलपति जाने-माने कथाकार श्री विभूति नारायण राय एवं सचिवालय की महासचिव डॉ विनोद बाला अरुण से बड़ी आशाएँ हैं। मेरे अपने विचार से नौवें और अन्य विश्व हिंदी एवं बहुभाषी सम्मेलनों का आयोजन इन्हीं दो संस्थानों के माध्यम से होना चाहिए। इन्हीं सम्मेलनों के कारण विश्व में हिंदी के प्रति जागरूकता बढ़ी है और डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल (8) के शोधानुसार, हिंदी अब विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। दिए गए आँकड़ों के अनुसार हिंदी ने मैंडरीन को भी पछाड़ दिया है। अंग्रेजी भाषा का बढ़ता हुआ वर्चस्व भारत के लिए घातक है और इसके लिए सबको सतर्क होकर एकजुट काम कर अपने लिए सही दिशा का निर्धारण करना चाहिए। 10 वर्षीय अर्पण शर्मा (9) ने 11 भाषाओं में महारत हासिल कर यह स्थापित कर दिया है कि यदि हम चाहें तो अपनी-अपनी मातृ भाषाओं के साथ-साथ पूरे भारत की एक अन्य भाषा भी सीख सकते हैं। आवश्यकता है तो केवल गहन इच्छा शक्ति की।

संदर्भ :

1. रतन लाल भगत, ''विश्व हिंदी सम्मेलनः एक सिंहावलोकन'', गगनांचल, वर्ष 22, अंक 3, जुलाई-सितंबर 1999, पृष्ठ 54-58।
2. ईश्वचंद्र मिश्र, ''सम्मेलन और समारोह'', साहित्य अमृत, नवंबर 2009, पृष्ठ 39।
3. डॉ. कृष्ण कुमार, ''भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता 'चिंता एवं विचार''', समग्र दृष्टि, प्रथम वर्ष, खंड 4, जनवरी 2006, पृष्ठ 41-44।
4. डॉ. कृष्ण कुमार, ''भारतीय भाषा समन्वयः सार्वभौमिक प्रभाव'', रूपांबरा, अंक 130-131, वर्ष 2006, पृष्ठ 91-101।
5. डॉ. कृष्ण कुमार, ''वैश्विकरण के दौर से भारतीय भाषायी समन्यवय की प्रासंगिकताः गुजरात विद्यापीठ के परिप्रेक्ष्य में'', गगनांचल, अप्रैल-जून 2008, पृष्ठ 46-48।
6. डॉ. कृष्ण कुमार, ''भारतीय भाषायी समन्वय : राष्ट्र की सामयिक आवश्यकता'', प्रकाशनाधीन।
7. डॉ. कृष्ण कुमार, ''वैश्विकरण : अंग्रेजी और भारतीय भाषाएँ'', साक्षात्कार, मई-जुलाई 2007, पृष्ठ 255-260।
8. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, ''भाषा शोध अध्ययन 2005- विश्व में हिंदी पहले स्थान पर'', प्रवासी संसार, अंक 3, सितंबर 2006, पृष्ठ 26-30।
9. आई.ए.एन.एस. रिपोर्ट, ब्रिटिश समीक्षा, वर्ष 25, 2008, अंक 1, पृष्ठ 31।

Dr Krishna Kumar
21, Bideford Drive, Selly Oak,
Birmingham-B29 QG (UK)
Email: profkrishna@googlemail.com

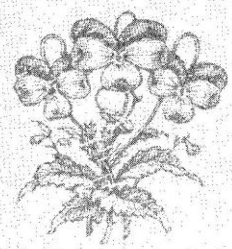

भाषा मानव-मस्तिष्क की वह शस्त्रशाला है जिसमें अतीत की सफलताओं के जयस्मारक और भावी सफलताओं के लिए अस्त्र-शस्त्र, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह साथ-साथ रहते हैं।

-कालरिज

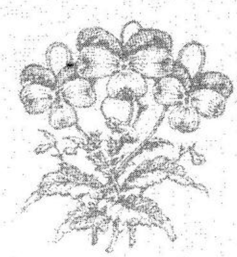

14

चीन में हिंदी अध्ययन व शोध की परंपरा

प्रो. च्यांग चिंगखुए

आधुनिक समय में चीन में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की विधिवत् शुरुआत को यदि रेखांकित करना हो तो हम कह सकते हैं कि यह शुरुआत सन् 1942 में यूनान प्रांत के पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ हुई। यह वह समय था जब सारा संसार द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था और चीन के ऊपर भी युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। ऐसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिंदी विभाग को भी एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होना पड़ रहा था। तीन वर्षों के बाद सन् 1945 में हिंदी विभाग यूनान प्रांत से स्थानांतरित होकर छोंगछिन में आ गया और साल भर में ही हिंदी चीन की राजधानी में स्थित पीकिंग विश्वविद्यालय के विदेशी भाषा विद्यापीठ में आसीन हुई और तब से निरंतर यहीं फलती-फूलती रही। यहाँ यह बताना रोचक होगा कि पीकिंग विश्वविद्यालय के विदेशी भाषा विद्यापीठ में हिंदी के अलावा आज संस्कृत, पालि और उर्दू भाषा-साहित्य का भी अध्ययन-अध्यापन होता है।

सन् 1949 से सन् 1959 तक का समय चीन में हिंदी के विकास की दृष्टि से बेहतरीन समय रहा, क्योंकि इस दौरान हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में, जो नीति, जो रुचि नीति-निर्धारकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों में दिखाई पड़ती थी, वह बाद के वर्षों में काफी शिथिल पड़ गई। यह वह समय था जब चीन और भारत पंचशील के सिद्धांतों की छाया में और हिंदी-चीनी भाई-भाई के नारों की गूँज के साथ-साथ आगे बढ़ रहे थे।

इस दौरान पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी के विद्यार्थियों की काफी बड़ी संख्या हुआ करती थी। हिंदी पढ़ना गौरव का चिह्न था। बेहतरीन विद्यार्थी हिंदी पढ़ने के लिए स्वतः आगे आते थे। वह कंप्यूटर, इंफार्मेशन टेक्नोलॉजी, बिजनेस मैनेजमेंट का युग नहीं था। वह आदर्शों के बनने और फिर बनकर बिगड़ने-टूटने का युग था। उन दिनों विद्यार्थियों को हिंदी में प्रवेश लेने की साल में दो बार सुविधा प्राप्त थी। उस दौरान के विद्यार्थियों ने आगे चलकर चीन में हिंदी की मशाल को जलाए रखने में कितना योगदान दिया, आगे हम इसकी भी थोड़ी चर्चा करेंगे। 'रामचरितमानस' जैसी महान् कृति का चीनी में अनुवाद या शब्दकोश जैसे दुरूह कार्य, व्याकरण निर्माण इत्यादि जितने भी काम हिंदी में चीन में हुए, उन सबके पीछे उस दौर के विद्यार्थियों की प्रमुख भूमिका है।

सन् 1960 से सन् 1979 तक का समय चीनी जनता और समाज के लिए बहुत कठिन समय रहा। इस दौरान चीनी जनता और समाज को कई अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा है। सांस्कृतिक क्रांति के उस दौर में अध्ययन-अध्यापन बहुत प्रभावित हुआ। विद्यालय शिक्षण कुछ समय के लिए प्रश्नों के घेरे में भी खड़ा हुआ। इन सब स्थितियों, घटनाओं के कारण हिंदी विभाग सिकुड़कर छोटा हो गया और उसमें पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या कम हो गई।

सन् 1980 से सन् 1999 तक का दौर चीन में परिवर्तनों की शुरुआत का दौर है। खुलापन इस दौर का सूत्र वाक्य है। खुलेपन की दृष्टि का प्रभाव शिक्षा और हिंदी पर भी पड़ा। डायलेसिस पर पड़ी हिंदी अपने खून में इस खुलेपन का संचार पाकर मानो फिर जी उठी। इन तमाम वर्षों में, कठिन से कठिनतर समय में भी हिंदी को समर्पित लोगों ने बचाए रखा, इस बात को मैं यहाँ जरूर कहना चाहूँगा। खुलेपन की नीति से हिंदी को लाभ तो हुआ, किंतु उतना नहीं, जितना होना चाहिए था। दोनों देशों के बीच के संबंधों में जमी हुई बर्फ भी शायद एक बड़ा कारण रहा। जब तक आपको हिंदी साहित्य के वर्तमान सर्जनात्मक साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ और

लोगों से बार-बार मिलने का अवसर नहीं मिलता, भाषा के विकास में उतनी गति नहीं आ पाती। पर इस दौरान हिंदी का शिक्षण-अध्यापन निरंतर जारी रहा, यह भी एक संतोष की बात है।

सन् 2000 से सन् 2003 तक का समय नई शताब्दी के शुरू होने का समय है और भारत-चीन के संबंधों में जड़ता के टूटने का भी। दोनों देशों के संबंधों में अब जो गरमाहट आई है, उसका प्रभाव हिंदी अध्ययन-अध्यापन पर भी पड़ेगा और यह प्रभाव दिखाई भी देने लगा है। पीकिंग विश्वविद्यालय में हमारे मिले-जुले प्रयासों से भारत अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई है। चार वर्ष में एक बार हिंदी के विद्यार्थियों को प्रवेश देने की योजना को हमने बदल दिया है। अब हर दूसरे वर्ष नए विद्यार्थी हिंदी के पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकेंगे। पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी सर्व सुलभ भाषा की श्रेणी में स्थान पा गई है। इसका मतलब यह हुआ कि मुख्य विषय के अलावा भी हिंदी अब कोई भी विद्यार्थी पढ़ सकेगा।

आज हमारे यहाँ हिंदी बी.ए., एम.ए., पी-एच.डी. स्तर के विद्यार्थी हैं और ऐसे विद्यार्थियों की संख्या भी कम नहीं है जो भारत के बारे में अन्य विषयों (सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि) पर गहन अध्ययन करते हैं और साथ-ही-साथ हिंदी भी सीखते हैं।

अध्यापक और विद्यार्थी

(क) अध्यापक : चीन में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की यदि वही परंपरा बनी रहती जो वहाँ सन् 1949-1959 में दिखाई पड़ती थी तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि चीन में भी हिंदी विद्वानों की एक ऐसी प्रबुद्ध जमात तैयार हो जाती तो भारत के हिंदी विद्वानों के साथ बराबरी के स्तर पर वैचारिक अखाड़े में उतर सकती। उस दौर में विद्यार्थी रहे ऐसे तीन विद्वानों की चर्चा मैं यहाँ करना चाहूँगा जिन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी चीन में हिंदी की मशाल को न केवल बचाए रखी, बल्कि जलाए भी रखी। ये तीनों विद्वान् चीन में हिंदी शिक्षण-अध्यापन में न केवल वरिष्ठ हैं बल्कि आनेवाली पीढ़ियों के लिए कर्मठता और आदर्श की मिसाल भी हैं। ये हैं प्रोफेसर यीन हुंय्वैन, प्रोफेसर लियो आनवू और प्रोफेसर चिन तिंगहान।

भाषा विशेषज्ञ प्रोफेसर यीन हिंदी विभाग में 43 वर्ष तक कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त हुए। इन्होंने हिंदी-चीनी शब्दकोश तैयार किया है, जिसका आज तक सब लोग इस्तेमाल करते हैं। यह एक वृहत् कार्य है और हिंदी से चीनी में अनुवाद करने में इसकी महती भूमिका असंदिग्ध है। प्रोफेसर यीन अब भी, जबकि उनकी उम्र अठत्तर वर्ष की हो चुकी है, चीनी-हिंदी शब्दकोश पर जुटे हुए हैं। यह कोश अगले वर्ष तक छपकर आ जाएगा, ऐसी हमारी कोशिश है और उम्मीद भी। हिंदी-व्याकरण, एक हिंदी पाठ्य-पुस्तक, भी इन्होंने तैयार की है। इसके अलावा प्रोफेसर यीन ने वृंदावनलाल वर्मा तथा इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों का अनुवाद करके चीनी पाठकों के सामने पेश कर दिया है।

प्रोफेसर लियो आनवू हिंदी विभाग में 50 वर्षों तक कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने अपनी विशेषज्ञता का क्षेत्र हिंदी साहित्य को चुना और हिंदी साहित्य का इतिहास चीनी पाठकों के लिए उपलब्ध करवाया। उन्होंने प्रेमचंद पर दो पुस्तकें लिखीं। हिंदी के दोनों महाकाव्यों (रामायण तथा महाभारत) पर दो पुस्तकें लिखकर उनका परिचय चीनी पाठकों को दिया। इसके साथ ही प्रेमचंद के अनेक उपन्यासों तथा कहानियों का अनुवाद भी चीनी में किया। अब प्रोफेसर लियो की आयु 73 वर्ष की है। वे काफी वृद्ध हो चुके हैं, फिर भी आजकल वे रवींद्रनाथ ठाकुर के अध्ययन और भारतीय तथा चीनी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर दो पुस्तकें लिखने में पूरी तरह व्यस्त हैं। उन्होंने अपना अध्ययन क्षेत्र केवल हिंदी साहित्य तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि पूरे भारतीय साहित्य को अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

प्रोफेसर चिन तिंग हान भी 45 वर्षों तक हिंदी विभाग में अध्यापन कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने रामचरितमानस का चीनी में पद्यानुवाद

किया जिसके लिए उन्हें भारत के राष्ट्रपति ने सन् 2000 में दिल्ली में सम्मानित भी किया। उन्होंने एक पाठ्यपुस्तक और हिंदी-चीनी मुहावरा कोश तैयार किया है। प्रोफेसर तिंग की उम्र भी 73 वर्ष की हो चुकी है, किंतु उनकी कबीर पर काम करने की तीव्र इच्छा है जिसके लिए वे आजकल सामग्री जुटाने में लगे हुए हैं।

इन तीनों विद्वानों ने अपनी लगन, कर्मठता और आदर्श के बलबूते पर हिंदी के लिए चीन में चीनी भाषा में जितना काम किया है, वह हमारे लिए प्रेरणादायक है।

इस समय पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में चार अध्यापक हैं। उनमें से एक पी-एच.डी. कर रही हैं और बाकी लगभग सभी पी-एच.डी. हैं। अब चूँकि हर दूसरे वर्ष नए हिंदी के विद्यार्थी प्रवेश लेंगे इसलिए हमारी उम्मीद है कि अध्यापकों की संख्या भी बढ़ेगी।

(ख) **विद्यार्थी** : अभी मैंने सन् 1949 से सन् 1959 के दौरान तीन विद्यार्थी विद्वानों का जिक्र किया, इसके अलावा जितने भी विद्यार्थी इन पचास वर्षों में हिंदी का अध्ययन कर अपने कामकाज में लगे हैं, वे सबके सब अच्छे पदों पर हैं और अच्छा काम कर रहे हैं। उनमें से जो रेडियो सेवा में हैं अथवा शिक्षा के क्षेत्र में हैं, उनसे तो हमारा परिचय लगातार बना हुआ है। भारत और चीन के आपसी संबंधों में विकास की जो प्रक्रिया गतिशील हुई है उसका निश्चित प्रभाव चीन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की स्थिति पर भी पड़ेगा। चीन में हिंदी जाननेवालों की खोज शुरू हो गई है। आज का युग व्यापार का युग है। व्यापार और बाजार आज सांस्कृतिक आदान-प्रदान के, एक-दूसरे को जानने के अनिवार्य उपकरण बन गए हैं। इसका मतलब है कि बाजार और व्यापार के विकास के साथ भाषा का विकास अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

चीन में हिंदी अध्यापन

हिंदी के अध्यापन में पीकिंग विश्वविद्यालय में तीन प्रकार की पाठ्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है। एक प्रकार की पाठ्य सामग्री वह है जिसमें भाषा तथा भाषा से संबंधित अन्य सामग्री, जैसे निबंध, लेख, नाटक, कहानी आदि शामिल हैं। हरेक पाठ विस्तृत अभ्यास पर आधारित रहता है। पाठ पढ़ने के बाद अभ्यास करना विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। पाठ्य सामग्री में हर पाठ के अंत में दिए गए अभ्यासों में अनुवाद (चीनी से हिंदी में/हिंदी से चीनी में) भी शामिल रहता है। प्रकाशित पाठ्य सामग्री के अलावा हिंदी के अखबार भी पाठ्य सामग्री के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं ताकि भाषा के बदलते और उपयोगी रूपों से विद्यार्थी अवगत रहें। भाषा के अलावा भारतीय संस्कृति और साहित्य के परचे में विद्यार्थी रामायण, महाभारत तथा भारत के विभिन्न दर्शनों व धर्मों का भी अध्ययन करते हैं।

दूसरे प्रकार की पाठ्य सामग्री श्रव्य माध्यम से दी जाती है। विद्यार्थी श्रव्य स्टूडियो में भाषा सुनते हैं, समझते हैं, लिखते हैं, जिससे भाषा के उच्चारण, टोन, लय आदि से उनका परिचय होता है।

तीसरे प्रकार की पाठ्य सामग्री दृश्य-श्रव्य माध्यम की है। इसमें विद्यार्थी हिंदी पाठ्यक्रमों पर बनी वीडियो की फीचर फिल्में देखते हैं। निश्चय ही यह माध्यम बहुत प्रभावी है।

संक्षेप में ये वे तरीके हैं जिनसे हमारे विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन करते हैं।

Prof. Jiang Jingkui
Chairman of Hindi Dept
Peking University
Beijing-100871
China
Email: jiangik@pku.edu.cn

15

जापान में हिंदी शिक्षण की परंपरा

प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण

आज दुनिया की दूसरी सर्वाधिक विकसित अर्थ व्यवस्था के देश जापान में हिंदी भाषा और साहित्य के शिक्षण एवं अनुवाद कार्य की परंपरा का इतिहास एक शताब्दी से भी अधिक पुराना है। सन् 2008 में 'तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' में हिंदी शिक्षण का शताब्दी वर्ष समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। इधर पिछले दो दशकों से भारत भी विश्व की एक बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित होता जा रहा है। फलतः जापान और कोरिया में हिंदी भाषा सीखने के प्रति एक नया उत्साह देखने को मिलता है। इससे पूर्व हिंदी सीखने के पीछे भारत की संस्कृति को जानने-समझने की इच्छा एक प्रेरणा का काम करती थी लेकिन अब उसमें भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के चलते व्यापार और बाजारवाद भी प्रेरक तत्व का काम कर रहा है। और यह बात सिर्फ जापान या कोरिया पर ही लागू नहीं होती है, वरन् अमेरिका तथा यूरोप के देशों में भी भारत को जानने-समझने के लिए हिंदी की अनिवार्यता को समझा जा रहा है।

जापान का इतिहास सामंतवादी परंपराओं का इतिहास रहा है और अनेक वर्षों तक छोटे-छोटे भू-भागों के स्वामी 'दाइम्यो' राज करते रहे। हमारे राजस्थान के राजपूतों की तरह अपने-अपने छोटे भू-भाग को ही 'देश' समझते रहे और अपनी आन-बान-शान तथा अभिमान के चलते कई सौ वर्ष तक युद्ध करते रहे। सन् 1550 के बाद के वर्षों में जब विदेशी जहाज चीन जाते हुए नागासाकी के आस-पास के बंदरगाहों पर रसद-पानी के लिए रुकने लगे तो उन इलाकों में समृद्धि आने लगी और साथ ही 'ईसाई धर्म' का प्रचार-प्रसार करनेवाले भी पहुँचने लगे। जापान में सबसे पहले चर्च इसी स्थान पर बनाया गया, पर जल्दी ही जापान के शासकों को यह समझ में आ गया कि यह उनकी परंपरागत जापानी जीवन-शैली को बदल देगा, तो उन्होंने इस पर कड़े प्रतिबंध लगा दिए और धीरे-धीरे जापान विश्व के साथ अपना संपर्क खो बैठा। लगभग ढाई शताब्दी तक ऐसी व्यवस्था चलती रही। 'एदो' काल की सामुराई सरकार के बाद सन् 1868 में 'मेइजी' सरकार की स्थापना हुई और जापान के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ, जिसे 'मेइजी काल' के नाम से जाना जाता है। इस नई व्यवस्था ने महसूस किया कि वे दुनिया से कट गए हैं और विश्व से संपर्क स्थापित करने की जरूरत है। इसके लिए सरकार ने अनेक लोगों को पश्चिमी देशों में पढ़ने-लिखने भेजा तथा वहाँ हो रहे नए-नए औद्योगिक परिवर्तनों की जानकारी जापान को होने लगी। फलतः 'मेइजी काल' में जापान में पश्चिमोन्मुखी औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। प्रो. ताकेशी फुजिइ के अनुसार, उस जमाने में अकसर यह नारा लगाया जाता था कि ''पश्चिमी देशों की ओर देखो, उन देशों से शिक्षा ग्रहण करो और अपने को विकसित करके, मजबूत बनाकर, उन देशों से और आगे बढ़ते जाओ।''

'मेईजी सरकार' के लिए नारा सिर्फ नारा नहीं था, बल्कि एक नए जापान के निर्माण का प्रस्थान बिंदु था। उन्होंने राजनीतिक स्थिरता और सुदृढ़ आर्थिक आधार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समन्वित प्रयास शुरू कर दिए। उन दिनों अमेरिका और इंग्लैंड कपड़े के निर्माण तथा निर्यात के बड़े केंद्र थे। जापान ने भी कढ़ाई-बुनाई उद्योग की ओर ध्यान देना शुरू किया। चूँकि जापान में कपास का उत्पादन नहीं होता था, फलतः कपास प्राप्त करने के लिए बाजारों की खोज शुरू हुई। अमेरिका अपनी आंतरिक अशांति से जूझ रहा था और दुनिया में उन्नत किस्म की कपास के लिए मशहूर मिस्र देश जापान से बहुत दूर पड़ता था। फलतः जापान का ध्यान भारत में उत्पादित कपास की ओर गया, जिसका सर्वाधिक निर्यात ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा ग्लासगो और मानचेस्टर की कपड़ा मिलों के लिए हो रहा था। कपास ही नहीं, और अन्य प्रकार के कच्चे माल जैसे पटसन, लौह अयस्क आदि

के लिए भी भारत जापान के लिए महत्त्वपूर्ण होने लगा। इसके फलस्वरूप भारत से व्यापारिक संबंध बढ़ाने के लिए भारतीय भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता महसूस हुई। फलतः सन् 1908 में तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय (Tokyo School of Foreign Languages) की शुरुआत हुई, जिसमें हिंदुस्तानी और तमिल भाषा की पढ़ाई शुरू की गई। हिंदुस्तानी और तमिल के अतिरिक्त यहाँ मंगोलिया, मलय एवं स्याम देश की भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रशियन, स्पेनिश, चीनी एवं कोरियाई भाषाओं की पढ़ाई भी होती थी। उन भाषाओं में 'हिंदुस्तानी' का मतलब हिंदुस्तान की भाषा थी, जिसमें हिंदी-उर्दू का बराबर योगदान था। सन् 1908 में 'सर्टिफिकेट कोर्स ऑफ हिंदुस्तानी ऐंड तमिल' शुरू हुआ, जो कुछ ही वर्ष चल पाया। उसके बाद सन् 1911 में 'डिग्री कोर्स ऑफ हिंदुस्तानी' की शुरुआत हुई।

सन् 1908 में जब हिंदुस्तानी और तमिल की पढ़ाई शुरू हुई तो उसकी शुरुआत करनेवाले थे श्री नोनी एल. दत्त। लेकिन वे लगभग एक वर्ष तक ही रहे। उसके उपरांत सन् 1909 से लेकर 1914 तक भारत के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मो. बरकतउल्ला इस विश्वविद्यालय में 'हिंदुस्तानी भाषा' के विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में हिंदुस्तानी पढ़ाते रहे।

उन आरंभिक वर्षों में हिंदुस्तानी भाषा पढ़ाने के लिए जापानी अध्यापक नहीं थे। केवल भारतीय लोग ही 'इंस्ट्रक्टर' के रूप में नियुक्त किए जाते थे और उन्हें खोजना भी एक मुश्किल काम होता था। सन् 1914 से लेकर 1930-31 तक के वर्षों में जिन अनेक भारतीय शिक्षकों ने 'टोक्यो स्कूल ऑफ फॉरेन लैंग्वेजिज' में कार्य किया, उनमें देवली लाल सिंह, हरीहर नाथ तौरल अटल, एच.डी. चतरानी, हेनरी ड्रेमंड, केशोराम सावरकर, बिशनबल दत्त, लाला अतर सेन, मो. बदरु इसलाम फैजली आदि के नाम प्रमुख थे। इन सभी अध्यापकों को तीन-चार वर्षों के अनुबंध पर रखा जाता था। पर अनेक बार वे अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाते थे और उनके स्थान पर नए लोग आ जाते थे।

सन् 1920 में पहले-पहल एक जापानी इंस्ट्रक्टर की नियुक्ति की गई, लेकिन उनका कार्यकाल भी बहुत लंबा नहीं रहा। वस्तुतः इस स्कूल में सर्वप्रथम जापानी प्रोफेसर के रूप में प्रो. रेइचि गामो का नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वे सन् 1923 में 'टोक्यो स्कूल ऑफ फॉरेन

लैंग्वेजिज' से ग्रेजुएट हुए और इसके दो वर्ष बाद सन् 1925 में इसी विद्यालय में लेक्चरर बने। उनकी विद्वत्ता और शिक्षा पद्धति ने उन्हें लोकप्रिय अध्यापक के रूप में ख्याति दिलाई और सन् 1928 में वे ऐसोसिएट प्रोफेसर बनाए गए।

प्रो. रेइचि गामो ने अपनी लगन और अध्यवसाय से देश-विदेश में बड़ी ख्याति प्राप्त की। सन् 1934 में उन्हें प्रोफेसर पद पर पदोन्नत किया गया। जापान के शिक्षा मंत्रालय की ओर से सन् 1936 में प्रो. गामो ने भारत, ईरान और यूरोप का दौरा किया। यह दौरा उनके जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ तथा उन्होंने बड़ी मेहनत और लगन से अनेक शोध-पत्रों एवं पुस्तकों की रचना की।

सन् 1936 में अपनी भारत-यात्रा के दौरान वे 'जामिया मिलिया इसलामिया' भी गए थे। वहाँ पर उन्होंने भारत के महान् कथाकार प्रेमचंद की स्मृति में आयोजित शोकसभा में भी भाग लिया था।

सन् 1949 में 'तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय' को यूनिवर्सिटी बना दिया गया और यह स्कूल अब 'टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' के नाम से जाना जाने लगा। प्रो. रेइचि गामो इस यूनिवर्सिटी में हिंदुस्तानी भाषा के पहले प्रोफेसर बनाए गए। सन् 1964 में लगभग 39 वर्ष के सफल अध्यापन के बाद प्रो. गामो सेवानिवृत्त हो गए। सन् 1977 में उनका देहावसान हो गया। उनके देहावसान से जापान में हिंदी-उर्दू शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दौर भी समाप्त हो गया।

सन् 1925 में प्रो. रेइचि गामो की नियुक्ति के साथ-ही-साथ

सन् 1949 में 'तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय' को यूनिवर्सिटी बना दिया गया और यह स्कूल अब 'टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' के नाम से जाना जाने लगा। प्रो. रेइचि गामो इस यूनिवर्सिटी में हिंदुस्तानी भाषा के पहले प्रोफेसर बनाए गए। सन् 1964 में लगभग 39 वर्ष के सफल अध्यापन के बाद प्रो. गामो सेवानिवृत्त हो गए।

भारतीय अध्यापकों का क्रम भी चलता रहा। इसमें मो. नूरल हसन बरलास एक लंबे समय तक स्कूल में हिंदुस्तानी पढ़ाते रहे। उन्होंने लगभग 16 वर्षों तक अध्यापन किया। श्री बरलास व श्रीमती बरलास ने एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य किया कि अपने लेखों और पुस्तकों के माध्यम से जापानी संस्कृति एवं जीवन का भारतीय लोगों से परिचय कराया। वे भारत की 'साकी' नामक पत्रिका में जापान के बारे में निरंतर लेख प्रकाशित करते रहे थे। वस्तुतः प्रो. रेइचि गामो तथा प्रो. बरलास ने जापान में हिंदुस्तानी भाषा एवं इसलामिक संस्कृति और उर्दू भाषा की समझ को आगे बढ़ाने में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सन् 1945 में श्री क्यूया दोई 'तोक्यो स्कूल ऑफ फॉरेन लैंग्वेजिज' में अध्यापक हो गए। वे स्वयं इसी विद्यालय में प्रो. रेइचि गामो के विद्यार्थी थे और सन् 1938 में स्नातक हुए थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद के वर्षों में प्रो. दोई ने अथक परिश्रम और सूझबूझ से विदेशी भाषा विद्यालय में पहली बार स्वतंत्र हिंदी विभाग की स्थापना का गुरु-कार्य संपन्न किया। विश्वविद्यालय की नीति और परंपरा थी कि विदेशी भाषा विभाग में जो विदेशी भाषा पढ़ाई जा रही है, उस भाषा को बोलनेवाला विदेशी अध्यापक (नेटिव स्पीकर) भी वहाँ होना चाहिए अर्थात् हिंदी पढ़ानी है तो एक हिंदी भाषी भारतीय अध्यापक भी अवश्य ही होना चाहिए।

भारत स्वतंत्र हो गया था और सन् 1948 में प्रो. बरलास भारत लौट गए थे। ऐसी स्थिति में हिंदी जाननेवाले भारतीय को लाना कठिन काम था। तब प्रो. दोई के प्रयासों से भारतीय दूतावास के राजनयिक अधिकारी श्री पेरोला रत्नम की विदुषी पत्नी श्रीमती कमला रत्नम ने विदेशी भाषा विद्यालय में हिंदी पढ़ाने के लिए अपनी सहमति दे दी। दोईजी के लिए यह बड़े संतोष और गर्व की बात थी। श्रीमती कमला रत्नम ने अवैतनिक तौर पर हफ्ते में दो बार हिंदी पढ़ाना स्वीकार कर लिया।

दो-तीन वर्षों के बाद श्रीमती कमला रत्नम अपने पति का कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद भारत लौट गईं। तब जापान में रहकर जापानी चित्रकला का अध्ययन करनेवाले श्री कृपालु सिंह शेखावत को विश्वविद्यालय ने पार्टटाइम इंस्ट्रक्टर के रूप में नियुक्त किया।

1935 में विश्वविद्यालय ने प्रो. दोई को दो वर्ष के लिए भारत के प्रतिष्ठित इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के लिए भेजा। 1955 में वे हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की गहन प्रेरणा और अनथक ऊर्जा लेकर जापान लौटे।

सन् 1979-81 के दौरान दिल्ली के इंद्रप्रस्थ कॉलेज की अध्यापिका और प्रसिद्ध कवयित्री इंदु जैन की अतिथि प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति हुई। इसी समय प्रो. दोईजी को उनकी हिंदी सेवा के लिए भारत सरकार का प्रतिष्ठित प्रथम विश्व हिंदी सम्मान भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के हाथों प्राप्त हुआ था।

डॉ. दोई द्वारा रचित पुस्तकों में 'हिंदी-जापानी शब्दकोश', 'हिंदी-जापानी और जापानी-हिंदी शब्दकोश', 'हिंदी प्रचार अभ्यास पुस्तिका', 'जापानी भाषा प्रवेश'(देवनागरी लिपि में, जो उन्होंने आचार्य विनोबा भावे के आदेश पर विशेष रूप से प्रकाशित की थी।) अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने हिंदी की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद भी किया है जिनमें प्रेमचंद के अमर उपन्यास 'गोदान', जैनेंद्र कुमार की प्रतिनिधि कहानियाँ, सुमित्रानंदन पंत कृत 'स्वर्णकिरण' तथा महादेवी की कुछ कविताओं के अनुवाद विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं।

जापानी भाषा में जापान से प्रकाशित पत्रिका 'इंदोगाकु-बुक्कयोगाकु केनक्यु' में भी उनके शोध-पत्र व आलेख प्रकाशित होते रहते थे, जिनमें से 'एशियाई बुद्धधर्म का इतिहास', 'हिंदी क्रिया विशेषण', 'हिंदी भाषा में 'ह', आदि अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति के बाद वे 'तोकाई विश्वविद्यालय' में प्रोफेसर हो गए। साथ-ही-साथ वे रेडियो जापान की हिंदी विश्व-सेवा से भी जुड़े हुए थे। 19 जुलाई, 1983 में 67 वर्ष की आयु में जापान के इस प्रसिद्ध हिंदी-साधक का स्वर्गवास हो गया। प्रो. दोई के अवसान के साथ ही, तोक्यो ही नहीं, वरन् जापान में हिंदी शिक्षण के एक महान् युग का पटाक्षेप हो गया।

प्रो. तोशियो तनाका की आरंभिक शिक्षा भी तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में ही हुई थी और वे स्वयं प्रो. दोई के साथ हिंदी विभाग के निर्माण में सहभागी रहे थे। सन् 1965 में वे भारत सरकार की एक छात्र-वृत्ति पर दिल्ली विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन हेतु गए। वहाँ उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर डॉ. सावित्री सिन्हा के निर्देशन में कुछ शोधकार्य भी किया था।

उनके कई लेख उस समय की सर्वश्रेष्ठ और विख्यात पत्रिका 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुए थे जिनमें विश्वविख्यात जापानी कविता शैली 'हाइकु' के संदर्भ में लेख 'हाइकु और अज्ञेय' अत्यंत प्रसिद्ध हुआ था। जापान में प्रकाशित जापानी पत्रिका 'इंदोगाकु-बुक्कयोगाकु केनक्यु' में उनके शोध-पत्र एवं लेख निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं। कुछ प्रसिद्ध लेखों के नाम इस प्रकार हैं अज्ञेय की कविता 'असाध्य वीणा', 'आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में साहित्य मंडल 'परिमल', 'उग्र और उनकी कृतियाँ', भारत-पाकिस्तान का विभाजनकालीन हिंदी साहित्य और भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस'। 'भारत-पाकिस्तान का विभाजनकालीन हिंदी साहित्य--राही मासूम रजा', 'यशपाल की कृतियाँ, यशपाल साहित्य के अध्ययन की सामग्री के रूप में पत्रिका 'विप्लव', 'राहुल की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' हिंदी साहित्य की सामग्री के लिए 'राहुल का घुमक्कड़ शास्त्र', राहुल सांकृत्यायन की कृतियाँ', 'शांति निकेतन में हजारी प्रसाद द्विवेदी', हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास, हिंदी साहित्य के इतिहास में घासलेटी आंदोलन, आदि।

उन्होंने महात्मा गांधीजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंद स्वराज्य' का गुजराती से जापानी भाषा में अनुवाद किया। सन् 2000 में वे सेवानिवृत्त हुए थे, लेकिन आज तक हिंदी शिक्षण एवं अनुवाद के कार्य से सक्रिय रूप से जुड़े हैं। वे तोक्यो के एक अन्य प्रतिष्ठत शिक्षण संस्थान--एशिया अफ्रीका भाषा संस्थान--में हिंदी भाषा के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं। एक अर्से से रुकी हुई, अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'भारतीय साहित्य' का पुनः प्रकाशन भी उन्होंने प्रो. हिदेआकि इशिदा के साथ शुरू कर दिया है, जिसमें जापान भर के भारतीय शिक्षाविदों के भारत विषयक शोध-पत्र जापानी भाषा में प्रकाशित होते रहते हैं।

श्रीमती इंदु जैन यहाँ दो वर्ष (सन् 1979-81) रहीं। इन दो वर्षों में उन्होंने हिंदी शिक्षण की दिशा में कुछ नूतन कार्य करने के प्रयास किए। भारत के कुछ प्रसिद्ध भजनों को उन्होंने टेपांकित किया। साथ ही सांस्कृतिक उत्सव के दौरान प्रस्तुत किए जानेवाले नाटकों में भी मौलिकता का श्रीगणेश करते हुए कुछ नए प्रयोग भी किए, जिनमें 'भारत का स्वप्न' नामक प्रस्तुति अत्यंत प्रसिद्ध हुई थी तथा 'धर्मयुग' में उससे संबंधित लेख भी प्रकाशित हुआ था। इसी के साथ उन्होंने रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक 'चारुमित्रा' का मंचन भी बड़ी सफलता के साथ करवाया था।

श्रीमती इंदु जैन के बाद भारत से आनेवाले अतिथि अध्यापकों में कुछ प्रमुख नाम हैं—डॉ. राज बुद्धिराजा (1981), डॉ. बदरीनाथ कपूर (1983), डॉ. इंदुजा अवस्थी (1985), श्रीमती निशा कुकरेजा (1988), डॉ. लक्ष्मीधर मालवीय (1990), डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र (1991), श्रीमती सरस्वती भल्ला (1991), डॉ. मंजुला दास (1992), डॉ. मीरा श्रीवास्तव (1994), डॉ. कृष्णदत्त शर्मा (1996), डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल (1999) और डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, जो सन् 2002 से वर्तमान समय तक कार्यरत हैं।

डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण (प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक) का कार्यकाल अभी तक आए हिंदी के सभी प्रोफेसरों के मुकाबले काफी विस्तृत रहा है। इनके कार्यकाल में 'तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' के इतिहास में पहली बार दो अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों का आयोजन हो चुका है। सन् 2006 में 'दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में हिंदी शिक्षण' विषय पर आयोजित और सफल अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन के बाद सन् 2008 में यहाँ दूसरी बार एक वृहत् अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह आयोजन इस विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन के अवसर पर उनके द्वारा लिखित नाटक 'अंगुलिमाल' की प्रस्तुति अत्यंत यादगार अनुभव थी, क्योंकि इस नाटक के सभी पात्र हिंदी सीखनेवाले जापानी छात्र थे। इसी तरह प्रतिवर्ष वे एक नया नाटक इन छात्रों से करवाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके आगमन के बाद से, यानी सन् 2003 से प्रतिवर्ष इस विश्वविद्यालय के हिंदी प्रथम वर्ष के छात्रों द्वारा भारत-भ्रमण का आयोजन भी हो रहा है। इस भारत-भ्रमण यात्रा के दौरान इन जापानी छात्रों को लोगों से हिंदी में बातचीत करने का अवसर मिलता है और वे हिंदी भाषा में बातचीत करने में बड़े ही कुशल हो जाते हैं।

समग्रतः जापान की इस अति प्रसिद्ध और विशिष्ट यूनिवर्सिटी में हिंदी शिक्षण की परंपरा का जो श्रीगणेश सन् 1908 में हुआ था, वह आज भी अनवरत जारी है।

Prof. Suresh Rituparna
B-203, 2-16-1, Kichijoji, Higashi-cho,
Musashino-shi,
Tokyo 180-0002
Japan
Email: suresh_rituparna@yahoo.com

A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

16

ओसाका में हिंदी का चमकता सूर्य

प्रो. (डॉ.) यासमीन सुलताना नकवी

सन् 1908 में टोकियो में भारतीय भाषाओं के पढ़ाने के एक दशक बाद जापान के दूसरे महत्त्वपूर्ण नगर ओसाका में भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाने लगीं। इसका नाम रखा गया ओसाका स्कूल ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेज। बाद में इसका नाम बदल गया और फिर ओसाका विदेशी भाषा अकादमी हो गया। तत्पश्चात् ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज और अब इसका नया नाम रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ वर्ड लैंग्वेजेज हो गया जो अब जापान सरकार के अधीन है।

सन् 1922 से ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदुस्तानी (उर्दू) पढ़ाई जाने लगी। इन भाषाओं को पढ़ाने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था किंतु 80 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ उर्दू-हिंदी शिक्षण वर्तमान तक अबाध गति से चल रहा है। भारत स्वतंत्र हो गया और विभाजित भी हुआ। भारत के हिस्से में हिंदी तथा पाकिस्तान के भाग में उर्दू आ गई। (ऐसा लोग समझते हैं।) उर्दू और हिंदी बँट गई। एक देश की दो बेटियाँ, दोनों के बीच एक रेखा खींच दी गई किंतु जापान ने दोनों को अपनाया। ओसाका में जापानी अध्यापक एवं छात्रों के बीच हिंदी-उर्दू खूब फल-फूल रही है परंतु हम अभी तक उर्दू-हिंदी, तमिल, बांगला के चक्कर में ही पड़े हैं। लोगों को विश्वास नहीं हो सकता कि जापानी छात्र कितनी मेहनत और ईमानदारी से हिंदी और उर्दू पढ़ता है। विश्वास के साथ अध्ययन करता है कि मैं हिंदी पढ़कर भारत जाऊँगा और वहाँ के लोगों से हिंदी में बातचीत करूँगा। भारतीय भाषाओं के अध्ययन का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है। हिंदी के प्रति उनकी दिलचस्पी देखने लायक है जो अन्य लोगों के लिए अनुकरणीय है।

आज ओसाका में हिंदी-उर्दू-विभाग में बहुत कुछ रचा जा रहा है। डॉ. एइजो सावा को ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी-शिक्षण का जनक माना जाता है। इन्होंने हिंदी को बड़ी मजबूती के साथ जापान देश में स्थापित किया है। अपनी सेवाओं से हिंदी को जापान में बहुत समृद्ध किया है। आपने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है

संक्षिप्त उर्दू व्याकरण-1943; जापानी-हिंदी-कोश-1947; हिंदी-जापानी बातचीत-1947; हिंदी व्याकरण-1948; गुलिस्ताँ-1951 (यह अनुवाद की गई रचना है); हिंदी व्याकरण-1960। सावा जी की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'इंदो बुन्तेन' पूरे जापान में बहुत प्रसिद्ध हुई। इस पुस्तक के माध्यम से हिंदी पढ़नेवाले छात्रों को बहुत सहायता मिली।

एइजो जी के पश्चात प्रो. केन्तारो यामामोतो का नाम आता है। श्री एइजो भी लंबी अवधि तक ओसाका विश्वविद्यालय में अपनी सेवाएँ हिंदी को देते रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि बूँद-बूँद से हिंदी का सागर भरता गया। इसी लीक के एक और हिंदी साधक हैं प्रो. कुवाजिमा शो। आपने भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर दिल्ली में हिंदी का अध्ययन किया। श्री कुवाजिमा अपने अध्ययन एवं ज्ञान के आधार पर छात्रों को भारत के विभिन्न पक्षों की जानकारी देते रहे। उनके माध्यम से विद्यार्थियों को ज्ञानवर्धक एवं नई-नई बातें मालूम होती रहीं। इन्होंने कई एक पुस्तकों की रचना करते हुए समय-समय पर महत्त्वपूर्ण शोधपरक निबंध लिखे जिनका नामकरण इस प्रकार हुआ है--इंडियन कम्युनिटी इन सिंगापुर 1915; पोस्ट-वार अपसर्ज ऑफ फ्रीडम मूमेंट एंड 1946; प्रोवेंशियल एलेक्शन इन इंडिया-1992; इंडियन नेशनलिज्म-इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टीज सौ साल (जापानी भाषा में) 1991; मूवमेंट इन बिहार ऐंड जदुनाथ शर्मा (जापानी भाषा में) 1992; साउथ एशिया ड्यूरिंग 1940; हिस्टरी ऑफ नेपाल ड्युरिंग 1940-1994, स्वामी सहजानंद सरस्वती की

रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद अति महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

, सन् 1960 से 1968 तक ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में शोध सहायक के रूप में काम करनेवाले डॉ. उचिदा नोरिहिको थे। इन्होंने 1963-64 में भारत के महानगर कलकत्ता से हिंदी का अध्ययन किया। बाद में जर्मनी के हाइडिलबर्ग में शोधकार्य किया और वहीं से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। डॉ. उचिदा ओसाका विश्वविद्यालय के छात्र थे। वे दिल्ली विश्वविद्यालय में दो वर्ष तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर की हैसियत से जापानी भाषा पढ़ाते रहे।

ओसाका विश्वविद्यालय से जुड़े कई हिंदी विद्वानों के विषय में अब तक आपको जो जानकारी मिली उसी संदर्भ में एक और महत्त्वपूर्ण जानकारी आपको मैं दे रही हूँ, जिनका हिंदी से आत्मीय संबंध है, वो हैं प्रो. कात्सुरो कोगा। प्रो. सावा के बाद प्रो. कात्सुरो कोगा का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आपने बयालिस वर्षों तक अनवरत हिंदी की सेवा की। जिस प्रकार अंग्रेजी-हिंदी का मानक शब्दकोश फादर कामिल बुल्के ने लिखकर ख्याति अर्जित की उसी प्रकार प्रो. कोगा हिंदी-जापानी शब्दकोश 1472 पृष्ठों में लिखकर हिंदी-जापानी भाषा-संसार में अमर हो गए।

प्रो. कोगा ने ओसाका विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की तथा उच्च हिंदी शिक्षण के लिए पिलानी, आगरा और दिल्ली में रहकर अध्ययन किया। अब अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् हिंदी की सेवा में और अधिक तत्पर रहने लगे। जीवन का आधा समय शब्दकोश निर्माण में ही लगा दिया किंतु ऐसा नहीं है कि उन्होंने शब्दकोश के अतिरिक्त हिंदी का और कोई काम न किया हो! कोगा जी के अन्य कार्य हैं लुई फिशर द्वारा लिखित महात्मा गांधी की जीवनी-1968; इंदु प्रकाश पांडेय की अवधी व्रत कथाएँ-1983; बालमुकुंद गुप्त के लेख एक लिपि की जरूरत-2007; अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा-2007; उत्तर भारत का लोकोक्ति कोश-2008; आदि महत्त्वपूर्ण रचनाओं का जापानी भाषा में हिंदी से अनुवाद।

प्रो. कोगा के पश्चात् ओसाका यूनिवर्सिटी के छात्र जो बाद में यहीं इसी विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर हो गए उनका काम और नाम संपूर्ण हिंदी जगत में आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आप निरंतर हिंदी सेवा में जुटे रहते हैं, ये हैं प्रो. तोमियो मिजोकामि। इन्होंने सन् 1965 में ओसाका विश्वविद्यालय, सन् 1967 इलाहाबाद विश्वविद्यालय (भारत) एवं 1967-68 में हिंदी तथा बांगला भाषा साहित्य का अध्ययन किया। प्रो. तोमियो मिजोकामि आज भी नई-नई भाषा सीख रहे हैं। 69 वर्ष के हो गए हैं, अभी इटैलियन भाषा तथा अरबी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। प्रो. तोमियो मिजोकामि द्वारा रचित पुस्तकें हैं--हिंदी-एशियन एंड अफ्रीकन ग्रामैटिकल मैनुवल नं. 13ए, 1980; पंजाबी-एशियन एंड अफ्रीकन ग्रामैटिकल मैनुवल नं. 13ई, 1981; एन इंट्रोडक्शन टू पंजाबी 1983; प्रैक्टिकल पंजाबी कनवरसेशन 1986; बंगाली रीडर 1986; लैंग्वेजज कान्टैक्ट इन पंजाब-अ सोसियोलिंगविस्टिक स्टडी ऑफ मिगरान्ट्स लैंग्वेजज 1987; बेसिक पंजाबी ओकाबुलरी-1989; इंटरमीडिएट बैंगाली कनवरशेसन विद रिफरेंस टू कलचर इंट्रोडक्शन 1989; टी.वी. सीरियल रामायण-हिंदी जापानी में 1992; सत्यजीत रे घर-बाहर, महानगर जपजी साहब का जापानी अनुवाद 1988, 1990, 1988; लोकप्रिय जापानी गीत (हिंदी में अनुवाद) 101 गीत 1994; हिंदी फिल्मों के लोकप्रिय गीत-1951 से 1980 तक के, 2006। इसके अतिरिक्त प्रो. तोमियो संपूर्ण हिंदी जगत् में हिंदी-नाट्य-मंचन के लिए जाने जाते हैं।

और इसी क्रम में आते हैं प्रो. (डॉ.) ताकाहाशी आकिरा। ओसाका विश्वविद्यालय से स्नातक हैं तथा दो वर्ष दिल्ली में रहकर दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. किया है। प्रो. आकिरा का प्रमुख अध्ययन है आधुनिक हिंदी साहित्य। प्रो. आकिरा हिंदी के सधे हुए रचनाकार हैं जिनके पीछे-पीछे शब्द दौड़ते रहते हैं। सधे वाक्य-विन्यास से वो अपने लेखन में चमत्कार नहीं उत्पन्न करते हैं बल्कि पाठक को हिंदी-रचना का ऐसा उपहार भेंट करते हैं कि पढ़ने के बाद वह चमत्कृत हो उठता है और उनके सधे संतुलित लेखन का लोहा मानने पर विवश होता है। डॉ. आकिरा दैनिक-जीवन में बहुत गंभीर व्यक्ति हैं किंतु प्रायः उनके लेखों एवं निबंधों में से जब एक व्यंग्यकार निकलकर आता है तब उसकी रचना का तीखा तीर व्यक्ति को गंभीर रूप से आहत करता है। आकिरा साहब की कलमरूपी छेनी बड़ी पैनी और नुकीली है। हिंदी-जापानी भाई-भाई ऐसी ही मनोरंजक कथा है जिसकी संरचना ताकाहाशी जी ने की है। इनके प्रमुख कार्य हैं

बालकृष्ण पाल का सत्यनारायण व्रतकथा जापानी में अनुवाद; मिथिलेश्वर की कहानियों पर शोध प्रबंध की रचना; प्रेमचंद की कहानियों पर आलोचनात्मक निबंध; अनीता देसाई का 'इन कस्टडी' उपन्यास का जापानी में अनुवाद। 1990 तक जापानी भाषा में हिंदी-उर्दू से संबंधित क्या-क्या प्रकाशित हुआ इसकी एक सूची इन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से तैयार की है तथा प्रो. ताकाहाशी पहले हिंदी विद्वान् हैं जिन्होंने सूची बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। प्रो. कोगा जी के शब्दकोश निर्माण में भी इन्होंने बहुत बड़ा सहयोग दिया है। प्रो. आकिरा का वैचारिक दृष्टिकोण अन्य विद्वानों से भिन्न है। वह हिंदी, अंग्रेजी, मराठी तथा उर्दू में लिखी रचनाओं को समान महत्त्व देते हैं।

ओसाका विश्वविद्यालय की ही छात्रा एवं अध्यापिका डॉ. नागासाकी हिरोकोजी हैं। इन्होंने आगरा से हिंदी का गहन अध्ययन किया है। इनका प्रमुख कार्य भक्ति साहित्य पर है।

डॉ. हिरोको तीव्रगति से हिंदी-साहित्य सामग्री पर जापानी भाषा में कार्य कर रही हैं। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती तथा बलदेव वैद की रचनाओं का जापानी में अनुवाद किया है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की छंद विधा पर जापानी में काम कर रही हैं। डॉ. हिरोको बड़ी कर्मठ अध्यापिका हैं इसलिए उनसे आशा है कि वह भविष्य में हिंदी की खूब सेवा करेंगी।

डॉ. मिकी निशियोकाजी की नियुक्ति प्रो. तोमियो मिजोकामि के अवकाश प्राप्त करने के बाद हुई। भाषा-विज्ञान के कई पक्षों पर उनका ध्यान है जिससे समयानुकूल कार्य करती रहेंगी। इस समय ओसाका विश्वविद्यालय (गिनो) में हिंदी विभाग में छह महिला अध्यापिका और एक पुरुष हैं। इसी प्रकार जब नए सत्र में 20 छात्रों को प्रवेश मिलता है तो उसमें 16 से 18 लड़कियाँ और 2-3 लड़के होते हैं। पाँच वर्षों से मैं देख रही हूँ कि छात्राओं की संख्या सदैव अधिक रही और छात्र कम रहे।

यह भाषा शिक्षण के लिए अति महत्त्वपूर्ण प्रयोगशाला है। बहुत बड़ा पुस्तकालय है जहाँ पाठक अपनी सुविधा के अनुसार बैठकर पढ़ता है। हर विषय पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। कॉमनरूम है, ऑडिटोरियम है। आलीशान दफ्तर है। कैंटीन है। हर प्रकार की सरकारी सुविधा के साथ हर अध्यापक अपना पाठ्यक्रम तैयार करता है। अपनी जरूरत के अनुसार कक्षा से संबंधित पुस्तकें, सामग्री आदि अपने बजट से मँगा सकता है।

जापानी छात्रों में भारत के प्रति बहुत बड़ा आकर्षण है। भारत जाना भी तो बहुत सरल हो गया है। यहाँ के बच्चे बहुत अधिक मेहनती होते हैं। अपने समय को बचाते हैं और काम करके पैसा कमाते हैं फिर आराम से भारत-भ्रमण करते हैं। हिंदी पढ़कर भारत जाते हैं। अपनी आँखों से भारत को देखते हैं, वहाँ के लोगों से टूटी-फूटी हिंदी में बातें करके संतोष प्राप्त करते हैं। पायजामा-कुर्ता खरीदते हैं। सीता रामी अंगोछा और रुद्राक्ष की माला लेते हैं और पहनते हैं। उनका यह शौक देखते ही बनता है।

ओसाका विश्वविद्यालय में पढ़नेवाला छात्र चार वर्षों तक हिंदी या अन्य कोई भी 26 भाषाओं का विद्यार्थी मार्च के आखिरी सप्ताह में डिग्रीधारी तो हो ही जाता है। हिंदी की कक्षा में गद्य पद्य, कहानी निबंध, नाटक, उपन्यास तथा आलोचनात्मक विषयों का अध्ययन करता है। छात्रों का प्रिय विषय होता है अनुवाद। इस कक्षा में तीसरे-चौथे वर्ष के विद्यार्थी भाग लेते हैं। जापान की प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद हिंदी में होता है। कुछ-कुछ छात्र तो इतना सटीक और सुंदर अनुवाद करते हैं कि मानो इनका विषय जापानी नहीं हिंदी ही हो। अनुवादकों में कु. चिजुरू, कु. इजुमीर, कु. कनेदा, श्री तेत्सुय्या (ये तीसरे वर्ष के छात्र हैं और हिंदी पढ़ने के लिए एक वर्ष के लिए दिल्ली गए हैं। ये भारत सरकार की छात्रवृत्ति से नहीं अपने पैसे से हिंदी पढ़ेंगे) एवं कु. हिरोसावा आदि हैं।

जापानी लोग छल-फरेब एवं झूठ से बहुत दूर हैं। वे संकोची एवं स्पष्टवादी हैं फिर छात्र कैसे असत्य का मार्ग पकड़ सकता है। वे बहुत ही भावुक भी होते हैं। 16-17 वर्ष के बाद यह माता-पिता से अलग होकर काम करते हुए पढ़ाई करते हैं । इस तरह वे बड़े आत्मनिर्भर होते हैं ।

जापानी छात्र जब भी जो कुछ भारत के विषय में पढ़ना चाहता है तब वह उसके मूल अर्थ को समझना चाहता है। उसकी संस्कृति में जाना चाहता है, नया देखना और पाना चाहता है। अभी तक जो उसे मिला है उससे हटकर पाना चाहता है। अभी तक जापान के महत्त्वपूर्ण अध्यापकों तथा उनके द्वारा विशेष प्रकार के किए गए कार्यों के विषय में अति संक्षिप्त जानकारी आपको मिली है। हिंदी-कार्य-व्यवहार का यही क्रम आगे बढ़ता रहेगा। नई पीढ़ी में आनेवाली अध्यापिकाएँ डॉ. कोमात्सु, डॉ. मात्सुकीनो होंगी जिनके सहयोग से जापानी छात्र-छात्राओं में नई विचारधारा की

रूपरेखा होगी। डॉ. कोमात्सु ने भारतीय महिलाओं के संदर्भ में शोधकार्य किया है तथा मात्सुकीनो जी ने भारत के गाँवों को आधार बनाया है। इन्होंने हिंदी और अंग्रेजी में एम.ए. किया है तथा इनका शोधकार्य अंग्रेजी में ही है। तोयानाका कैंपस में ये इंटरनेशनल रिलेशन पढ़ाती हैं तो मिनो कैंपस में हिंदी। इनकी जापानी में छपी पुस्तक की चर्चा सारे जापान में हुई।

जापानी छात्राओं में कु. चिएनिशीकाता हिंदी में एम.ए. कर रही हैं। उनका यह दूसरा वर्ष है। इनके अध्ययन का मुख्य विषय है'महादेवी वर्मा का साहित्य एवं छायावाद'। इनको समग्र महादेवी वर्मा साहित्य तो अध्ययन हेतु मिल गया क्योंकि ओसाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में एक-से-एक दुर्लभ ग्रंथ हैं, हर विषय पर पुस्तकें प्राप्त हैं। पुस्तकों की अब कोई समस्या नहीं है। अंग्रेजी में महादेवी पर कई पुस्तकें हैं। इन सबका अध्ययन करने के पश्चात् निशीकाता भारत गई, वहाँ जाकर विद्यापीठ और प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज, अशोक नगर (महादेवी जी का निवास स्थान) देखा, उनके पारिवारिक सदस्यों से जाकर मिलीं और उसके बाद इस छात्रा ने संक्षिप्त शोध-प्रबंध लिखना आरंभ किया।

इसी प्रकार आई कुराहाशी जी हैं जो किताबी कीड़ा हैं। हर समय अध्ययन ही अध्ययन उनका चलता रहता है। जापानी, हिंदी और अंग्रेजी किताबों को पढ़कर नई-नई जानकारी प्राप्त करती हैं। इतनी मेहनत से ये हिंदी पढ़ती हैं कि कोई भी अक्षर, शब्द एवं वाक्य छूट नहीं सकता। सब कुछ सुनना और समझना है, इनको अर्थ की गहराई तक जाना है और उसके संस्कार को भी समझना है। अपनी लिखी हुई सामग्री को बार-बार चेक करवाते हैं। जापानी छात्रों की राइटिंग बहुत सुंदर होती है। ज्यादातर एक जैसे अक्षर सभी बनाते हैं।

Dr Yasmin Sultana Naqvi
Onohara-higashi, 5-25-11-142
Minoo City, Osaka
Japan 562-0031
Tel: +81-72-730-5295

''हे समुद्र! तेरी क्या भाषा है?''
''शाश्वत प्रश्न की भाषा।''
''हे आकाश! तेरे उत्तर की क्या भाषा है?''
''शाश्वत मौन की भाषा।''

-रवींद्रनाथ ठाकुर

कोई भाषा कभी नहीं मरती। मरती है तो व्यक्ति की उस भाषा को सीखने और काम में लाने की क्षमता, स्वयं भाषा नहीं।

-चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

फ्रांस में हिंदी के अध्ययन केंद्र

अपर्णा क्षीरसागर-महापात्र

जब भी किसी को यह पता चलता कि मैं पेरिस में हिंदी पढ़ाती हूँ, और वह भी विश्वविद्यालय के स्तर पर, तब लोगों को बहुत ही आश्चर्य होता था कि भारत के बाहर हिंदी का पठन कैसे हो सकता है। लोगों को आश्चर्य होता है यह समझना कोई कठिन बात नहीं। कौन लोग पढ़ते हैं और क्यों पढ़ते हैं, इन बातों पर ध्यान देने से पहले कुछ कहना चाहूँगी। हिंदी की पढ़ाई केवल विश्वविद्यालय की दीवारों तक सीमित नहीं। 'फ्रांस में हिंदी' ऐसे गूगल पर लिखने भर की देर है, बस एक मिनट में आपको केवल पेरिस में ही नहीं, फ्रांस के अन्य अनेक शहरों में हिंदी पढ़ानेवालों के नामों की लंबी सूची मिल जाएगी। उसके साथ-साथ हिंदी से जुड़े लोग और कार्यक्रमों के बारे में भी जानकारी मिलेगी। यह सब बताते हुए मैं इतना ही सूचित करना चाहती हूँ कि हिंदी की ओर आकर्षित होनेवालों की संख्या बढ़ रही है।

'फ्रांस में हिंदी' विषय का विस्तार बहुत बड़ा है, तब इस लेख में मैं उसके सभी पहलुओं पर बात करूँगी, यह कहना अतिशयोक्ति का उदाहरण होगा। इस लेख में मैं हिंदी की पढ़ाई और संबंधित कुछ विषयों पर लिखने की चेष्टा करूँगी।

फ्रांस में हिंदी के अध्ययन के लिए तीन जगहों का नाम देना अनिवार्य है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण नाम है इनालको का। बाद में दक्षिण फ्रांस में स्थित एक्स-ओ-प्रोवोंस विश्वविद्यालय का और तीसरा है लियो शहर में जाँ मुलाँ विश्वविद्यालय के भाषा विभाग का।

इनालको—प्राच्य भाषा और सभ्यता की राष्ट्रीय संस्था

पेरिस में स्थित इस संस्था के इतिहास और वर्तमान पर मैं विस्तृत रूप से ध्यान देना चाहूँगी। एक तो इसलिए कि यहाँ हिंदी पढ़ाने का मेरा अनुभव है और दूसरा कारण यह है कि इसका इतिहास देखने पर हमें 'फ्रांस में हिंदी कौन, किसलिए पढ़ता है?' इस प्रश्न का आधा उत्तर मिलता है।

चौदहवें लुई ने सत्रहवें शतक में युवाओं के लिए जो पाठशाला स्थापित की थी, उसी का विकसित रूप इनालको है। उस समय पूर्वी देशों में जानेवाले फ्रांसीसी व्यापारी और राज्यकर्ताओं को वहाँ के निवासियों के साथ बात करने के लिए दुभाषियों की आवश्यकता होती थी। शुरू में इस काम के लिए स्थानीय लोगों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस स्थिति को टालने के लिए चौदहवें लुई ने एक पाठशाला खोली, जहाँ फ्रांसीसी युवकों को ही इन भाषाओं की शिक्षा दी जाने लगी और वे यह काम करने लगे। समयानुसार इस संस्था का रूप बदलता गया और इसका नाम भी बदलता गया। 1971 में इसे इनालको नाम दिया गया और पेरिस विश्वविद्यालय इससे जोड़ा गया। तब से इस संस्था की व्याप्ति बढ़ती गई और आज इस प्रसिद्ध संस्था में पाँच अलग-अलग जगहों पर 93 भाषाओं और संबंधित सभ्यताओं का अध्ययन किया जाता है।

हिंदी का अध्ययन केंद्र है दोफीन, जहाँ पर हिंदी के साथ-साथ तमिल, बँगला, तेलुगु, उर्दू, जैसी दक्षिण एशियाई भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। नेपाली, तिब्बती, बर्मी, चीनी, जापानी और प्रशांत महासागर के तटों पर बोली जानेवाली अन्य भाषाएँ भी इसी केंद्र में पढ़ाई जाती हैं।

फ्रांसीसी बाक परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद कोई भी यहाँ हिंदी के स्नातक स्तर की पढ़ाई की शुरुआत कर सकता है। इसी के कारण 18 से लेकर 70 वर्ष तक के लोग एक ही कक्षा में बैठे हिंदी पढ़ते हैं और अपने-अपने उद्देश्यानुसार तथा क्षमतानुसार पाठ्यक्रमों का लाभ उठाने का प्रयास करते हैं।

यथासमय पढ़ने वाले और उनके उद्देश्यों में भी बदलाव आते गए तथा तद्नुसार पाठ्यक्रम भी बदलते गए।

आज, पहले पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा, इतिहास, भूगोल, समाज, धर्म, अर्थव्यवस्था तथा प्रथा और संस्थाओं का समावेश है। हिंदी भाषा को छोड़कर बाकी सारा अध्ययन फ्रांसीसी भाषा में किया जाता है। दक्षिण एशियाई भाषा सीखनेवालों के लिए सभ्यता की पढ़ाई की एक ही क्लास होती है फ्रांसीसी में।

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्राचीन इतिहास, कला का इतिहास, समकालीन इतिहास, अंतरराष्ट्रीय संबंध, दक्षिण-एशियाई मूल के विदेशों में स्थित लोग, मानवशास्त्र, कुछ प्रादेशिक संस्कृति, साहित्य का इतिहास और प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं का भाषाशास्त्रीय अभ्यास जैसे विषयों की पढ़ाई की जा सकती है।

यहाँ पर सिखाने के लिए कोई विशेष पुस्तक नहीं है। हर वर्ष के अंत में एक छात्र को भाषा-बोध, मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति के विषय में क्या-क्या आना चाहिए, इसके बारे में विचार किया गया है और कुछ मानदंड निश्चित किए गए हैं। इन्हीं को लक्ष्य क़रके व्याकरण पढ़ाने के लिए एक रूपरेखा बनाई गई है। इसी सूत्र को लेकर, खास तौर से भाषा के अध्यापक अपनी पाठ्य-बोध एवं मौखिक या लिखित अभिव्यक्ति जैसी क्लास की तैयारियाँ करते हैं, जिसमें वे दृक्-श्राव्य माध्यम का भी प्रयोग करते हैं।

साधु, सर्प, हाथी, महाराजाओं के भारत से प्रेम करनेवाले छात्र आते हैं इस देश की राष्ट्रभाषा सीखने के लिए। कुछ लोग भारतीय सभ्यता, परंपरा का आदर करने आते हैं, तो अपने दादा या परदादाओं के इस देश की खोज में निकले हुए कुछ लोग आते हैं और अपनी पढ़ाई के काल में कभी-कभी अपने आपको पहचानने लगते हैं। ऐसे भी छात्र होते हैं, जो अपनी पत्नी या पति की भाषा सीखने की आशा लेकर आते है, इस तरह वे ससुराल के लोगों के हृदय में बसना चाहते हैं।

भारतीय कला, मानवशास्त्र, भू-विज्ञान जैसे विषयों पर प्रबंध लिखनेवाले छात्रों को भारत जाकर रहने की आवश्यकता होती है। ऐसे छात्र अपने प्रबंध से जुड़े विषयों पर स्थानीय लोगों से हिंदी में बातचीत करना चाहते हैं, इसी के साथ अपने दैनंदिन जीवन में भी हिंदी का उपयोग करना चाहते हैं। संगीत तथा नृत्यकला के छात्र भी हिंदी पढ़ते हैं। कुछ लोग हिंदी साहित्य समझने के लिए हिंदी भाषा सीखते हैं, तो कुछ हिंदी फिल्में समझने के लिए। आजकल पेरिस में अनेक दुकानों में हिंदी फिल्मों की डीवीडी कम दाम में उपलब्ध हैं। बच्चन परिवार को देखने के लिए हो, शाहरुख खान या रानी मुखर्जी से आटोग्राफ लेने के लिए हो हमारे छात्र हिंदी में बातचीत करते हैं। यहाँ पर भारतीय 'चित्रपट महोत्सव' में भी भीड़ लगती है, उसे देखकर बॉलीवुड ने नई पीढ़ी को कितना आकर्षित किया है, यह समझ सकते हैं।

कुछ लोग हिंदी साहित्य समझने के लिए हिंदी भाषा सीखते हैं, तो कुछ हिंदी फिल्में समझने के लिए। आजकल पेरिस में अनेक दुकानों में हिंदी फिल्मों की डीवीडी कम दाम में उपलब्ध हैं। बच्चन परिवार को देखने के लिए हो, शाहरुख खान या रानी मुखर्जी से आटोग्राफ लेने के लिए हो हमारे छात्र हिंदी में बातचीत करते हैं। यहाँ पर भारतीय 'चित्रपट महोत्सव' में भी भीड़ लगती है, उसे देखकर बॉलीवुड ने नई पीढ़ी को कितना आकर्षित किया है, यह समझ सकते हैं।

इसके अतिरिक्त राजनीति या राजदूतावास से संबंधित विषयों की पढ़ाई करनेवाले छात्र भी यदि आगे चलकर दक्षिण एशियाई देशों में काम करना चाहते हैं, तो हिंदी पढ़ते हैं, इन्हें हिंदी की एक कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता है। ऐसे छात्र कभी-कभी इनालको में आते हैं। नहीं तो फ्रांस में सियोंस पो नाम से जानी जानेवाली संस्था में जाते है जो राजनीतिशास्त्र की पढ़ाई के लिए एक प्रसिद्ध उच्च शिक्षण संस्था है, जिसकी शाखाएँ पेरिस के अलावा अन्य शहरों में भी हैं। यहाँ से यशस्वी होनेवाले कई छात्र भविष्य में फ्रांस के बड़े मंत्री बनते हैं। वहाँ पर भी इन छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हिंदी पढ़ाई जाती है। इसी तरह विदेश मंत्रालय में भी हिंदी पढ़ाई जाती है।

हिंदी भाषा सीखनेवालों की संख्या बढ़ने का और एक कारण है विदेश में भारत की बदलती हुई छवि। वैश्वीकरण के कारण अनेक अंतरराष्ट्रीय कंपनियों ने भारतीय कंपनियों के साथ कारोबार करना शुरू किया है, जिसके कारण विदेशी लोग भारत में स्थित ऐसी कंपनियों में जाते हैं और वहाँ पहुँचने से पहले हिंदी सीखने लगते हैं। भारत और फ्रांस के बीच परस्पर संबंध बढ़ने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में आदान-प्रदान के अवसर मिल रहे हैं। 14 जुलाई, 2009 को पेरिस में हुए राष्ट्रीय त्योहार के दिन भारतीय प्रधानमंत्री को निमंत्रित किया गया था और साथ-साथ भारतीय

सैनिकों को सुप्रसिद्ध 'शांज एलिजे' परेड रास्ते पर सेना प्रदर्शन में भाग लेने के लिए निमंत्रित करके गौरवान्वित किया गया। इसी दिन दोनों देशों के बीच राजनीति और व्यापार के संबंध में भी चर्चा हुई।

कभी-कभी कुछ प्राइवेट लैंग्वेज स्कूल्स कंपनी के लोगों को हिंदी पढ़ाने की जिम्मेदारी लेते हैं, लेकिन इनालको में भी इस काम के लिए एक अलग व्यवस्था की गई है। इनालको के अध्यापक ऐसी किसी सरकारी या प्राइवेट कंपनी में जाकर उनकी आवश्यकतानुसार हिंदी पढ़ाते हैं, चाहे वह चार-छह घंटों के लिए क्यों न हो। इनालको के इस विभाग ने नौकरी करनेवालों की सेवा में शाम की क्लासेस की भी व्यवस्था की है। दिन में काम करने के बाद सप्ताह में दो बार शाम को हिंदी पढ़नेवालों का उत्साह भी कोई कम नहीं। छात्रों की संख्या को देखकर इस साल एक और वर्ग बनाया गया।

अब तो इस विभाग द्वारा यहाँ पर गरमियों की छुट्टियों में हिंदी के इंटेंसिव कोर्स भी दिए जाएँगे। इसी तरह इस विभाग के जरिए कभी अनुवाद का भी काम मिलता है और कभी भारत पर बनाए गए वृत्तचित्र के लिए उपशीर्षक लिखने का।

पेरिस के उपनगर में स्थित एक इंटरनेशनल स्कूल में भी हिंदी पढ़ाई जाती है।

इतना सब बताने के बाद यह बात कहने में दुःख होता है कि फ्रांस में दूरदर्शन की किसी भी वाहिनी पर हिंदी कार्यक्रम नहीं दिखाए जाते। कनेक्शन लेने के बाद लंदन से आनेवाले कुछ कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। दोफीन की कुछ क्लासों के लिए इस तरह के और बीबीसी द्वारा दिखाए गए कार्यक्रमों को इस उद्देश्य से प्रयोग में लाया जाता है कि छात्रों को बोल-चाल की भाषा या पत्रकारिता की भाषा का उदाहरण मिले। इनालकों के ग्रंथालय में कुछ समाचार-पत्र, कुछ पत्रिकाएँ देर से सही, लेकिन पहुँचती हैं। हिंदी की पढ़ाई से संबंधित अंग्रेजी, फ्रांसीसी और हिंदी भाषाओं में किताबें ग्रंथालय की दोफीन शाखा में उपलब्ध हैं। पेरिस के भारत भवन छात्र निवास से भी फ्रांसीसी हिंदी के छात्रों का सदैव नाता रहा है। यहाँ पर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा बोलनेवालों के साथ आदान-प्रदान का अवसर प्राप्त होता है।

एक साल हिंदी पढ़ने के बाद छात्रों को भारत में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, या फिर जामिया-मिलिया इसलामिया विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है।

एक्स-ओं-प्रोवोंस विश्वविद्यालय

दक्षिण फ्रांस के इस महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय में हिंदी विषय में डिग्री नहीं मिलती। हिंदी का अध्ययन भारतीय सभ्यता, कला, संस्कृत भाषा, पत्रकारिता और प्रसार माध्यमों में व्यवहार होनेवाली हिंदी जैसे विषयों के अध्ययन का एक भाग है। इन विषयों में यहाँ स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई की जा सकती है।

केवल हिंदी में पदवी चाहनेवाले छात्रों को पेरिस में दाखिला लना पड़ता है। यहाँ के विभाग में श्रीमती एलिझाबेथ नोदु कार्यरत हैं।

जाँ मुलाँ विश्वविद्यालय का भाषा विभाग

पेरिस से कुछ पाँच सौ किलोमीटर की दूरी पर लियो शहर में हिंदी ने अपने लिए एक छोटा सा स्थान बनाया है। यह शहर फ्रांस के बड़े ऐतिहासिक शहरों में से एक है और साथ-साथ फ्रांसीसी पाककला की राजधानी कहलाता है। करोबार के लिए भी सुप्रसिद्ध इस केंद्र में अन्य भाषाओं के साथ यहाँ हिंदी पढ़ाई जाती है, यह हमारे लिए गर्व की बात है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेना हो या साहित्यकारों से भेंट करनी हो तो आपको पेरिस में ही आना पड़ेगा। कुछ साल पहले कृष्ण बलदेव वैद, निर्मल वर्मा, जैसे हिंदी साहित्य के अधिकारियों को पेरिस में निमंत्रित किया गया था। इनालको के हिंदी विभाग की प्रमुख, श्रीमती आनी मोंतो ने इन लेखकों के उपन्यासों का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया है और दुभाषिया बनकर फ्रांसीसी लोगों और इन लेखकों को आपस में बातचीत करने में सहायता भी की। मोंतोजी ने कुछ अन्य साहित्यकारों के लेखन को अनूदित करके फ्रांसीसी लोगों के लिए उपलब्ध कर दिया है।

इसी हिंदी विभाग की श्रीमती मार्गरीत ग्रिकूर जी हिंदी में ही बात करती हैं। पढ़ाने के अतिरिक्त अपने अन्य दायित्वों के साथ सामाजिक स्तर पर अनुवाद और दुभाषिया का काम करती हैं। इनका उर्दू पर भी अधिकार है।

भारतीय मूल के अध्यापकों की यहाँ सीमित कालावधि के लिए नियुक्ति की जाती है। इस विभाग में आज तक फ्रांसीसी तथा भारतीय, दोनों को मिलाकर, कितने अध्यापकों ने काम किया होगा, यह बताना असंभव है। इनमें से श्रीमती सरस्वती जोशीजी का योगदान बहुत ही बड़ा रहा है। उन्होंने न केवल हिंदी भाषा

पढ़ाई, बल्कि अपनी रहन-सहन, बातचीत से भारतीय विचार और आदर्शों को अप्रत्यक्ष रूप से अपने संपर्क में आए हुए लोगों तक पहुँचाया। कइयों ने उनके शोध कार्य का लाभ उठाया है। उन्होंने तीस साल से भी अधिक समय काम करके अपने छात्र एवं अन्य विभागों के सहकर्मियों का आदर प्राप्त किया है। इनालको से पढ़ाई पूरी करके कई छात्र अच्छे पदों पर काम कर रहे हैं और सरस्वतीजी के संपर्क में हैं।

फ्रांस में हिंदी का अस्तित्व बनाए रखने में जितने भारतीय या मॉरीशियन और फ्रांसीसी व्यक्ति एवं संस्थाओं ने परिश्रम किए हैं, उनके नाम लिखना संभव नहीं। अपने देश में बोली जानेवाली भाषा को विदेश में एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलवाने के कार्य का मैं आदर करती हूँ। इस काम में जुटे हुए विदेशियों के काम उल्लेखनीय हैं।

अंत में किताबों की एक अति संक्षिप्त सूची दे रही हूँ। पेरिस में भारतीय और दक्षिण एशिया से संबंधित किताबों की दो-तीन दुकानें हैं, जहाँ पर हिंदी भाषा में लिखी किताबें बेची जाती हैं। इनके सिवा अन्य दुकानों में भी कई किताबें मिलती हैं :

1 Manuel de la langue Hindoustani (Urdu et Hindi), Julien Vinson, Paris

(इनालको बनने से पहले जो पाठशाला थी, वहाँ ये अध्यापक थे और उनको यह व्याकरण लिखने का काम सौंप गया था।)

2. Dictionnaire Hindi-francais, Federica Boschetti, 1991

3. Dictionnaire general hindi-francais, Nicole Balbir & Jagbans Balbir (avec la collaboration de S. Joshi, N. Shrivastava & V.R. Joshi), L'Asiatheque, 1992

4. Le Hindi sans peine, Assimil, Bakaya Akshay & Montaut Annie, 1994

5. Dictionnaire Francais-hindi, Federica Boschetti (en collaboration avec Monica Juneja), 1994

6. Parlons hindi, Annie Montaut & Saraswati Joshi, L' Harmattan, 1999

7. Hindi Express, Aparna Kshirsagar & Jean Pacquement, Editions du dauphin, 2004

Ms. Aparna Kshirsagar
6, Alphonse Dante, 75014
Paris, France
Email: aparnaksh@yahoo.fr

ज्ञान कहीं भी मिलता हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। परंतु अपनी ही भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देना चाहिए, क्योंकि अपना, देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है।

-महावीर प्रसाद द्विवेदी

18

इजराइल में हिंदी: संस्कृति-संदर्भ

डॉ. गेनादी श्लोम्पेर

क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से इजराइल एक छोटा सा देश है। इजराइलवासी स्वयं इसे 'मानचित्र पर बिंदु' कहा करते हैं। पर यदि इस छोटे से देश की सड़कों पर घूमें, तो उतनी सारी भाषाएँ और बोलियाँ सुनने में आ जाएँगी, जितनी कि अमेरिका, रूस या भारत सरीखे बहुजातीय और बहुभाषीय देशों में ही गूँजती हैं। और ये भाषाएँ विदेशी यात्रियों की नहीं, वरन् इजराइल के उन नागरिकों की हैं जो यहाँ विश्व के कोने-कोने से आ बसे हैं।

यहाँ की 70 लाखवाली आबादी में भारत मूल के लगभग 70 हजार लोग रहते हैं। उनमें से अधिकांश महाराष्ट्र से आए हुए हैं और मराठी उनकी मातृभाषा है। अश्दोद, दीमोना, राम्ला जैसे नगरों में मराठीभाषियों की संख्या काफी बड़ी है। वहाँ जगह-जगह पर हिंदुस्तानी ढंग से रेस्तराँ और दुकानें हैं, जहाँ भारतीय खाना मिलता है, भारतीय फिल्मों और संगीत के सी.डी. बिकते हैं। भारतीय मूल का एक छोटा सा समूह मलयालम भी बोलता है, क्योंकि वह यहाँ पर कोचीन (केरल) से स्थानांतर हुआ था।

पर ऐसा हुआ है कि भारतीय समुदाय में भारत की सबसे बड़ी भाषा हिंदी का प्रतिनिधित्व कोई भी नहीं करता। ऐसी बात तो नहीं है कि भारत मूल के इजराइलवासियों में कोई भी हिंदी नहीं बोलता। वृद्ध और अधेड़ उम्र के लोग गुजारे लायक हिंदी बोल लेते हैं और हिंदी फिल्में आसानी से समझ पाते हैं। लेकिन भाषा का अध्यापन करने तथा उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए उनकी जानकारी स्पष्ट रूप से पर्याप्त नहीं है।

यह स्वाभाविक बात है कि भारत के भूतपूर्व नागरिकों ने भारत से अपने सांस्कृतिक संपर्क बनाए रखे हैं लेकिन इजराइली समाज में भारत के प्रति रुचि की जड़ें कहीं ज्यादा गहरी और पुरानी हैं। हमारे देश की स्थापना के बीस से ज्यादा वर्ष पहले, सन् 1926 में, यरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय में अफ्रीकी-एशियाई अध्ययन के संस्थान का उद्घाटन किया गया। शुरुआत में इसका शोध कार्य अरब देशों की परिस्थितियों पर केंद्रित था, लेकिन समय के साथ-साथ विद्वानों का ध्यान दक्षिण एशिया और पूर्वी एशिया के देशों की ओर भी गया।

दुनिया में भारत को चमत्कारों का देश माना जाता है। इसी विचार ने इजराइल के नए विद्वानों को भी प्राचीन भारत की समृद्ध संस्कृति को ढूँढ़ने और समझने के लिए प्रेरित किया। जिन विद्वानों ने इजराइल में भारत-विद्या की नींव रखी थी और इसको आगे बढ़ाया, उनमें प्रॉ. डेविड शुल्मन, प्रॉ. शऊल मिग्रोन और प्रॉ. व्लादीमीर सिरकिन प्रमुख हैं। काफी दिनों तक उनकी खोज के विषय भारत के धर्म-दर्शन, प्राचीन साहित्य और प्राचीन भाषाएँ ही रहे। मगर विद्यार्थियों की रुचियों को देखकर और हमारे दोनों देशों के बीच राजनीतिक संबंधों की स्थापना के पश्चात् वे मान गए कि भारतीय संस्कृति का अध्ययन करते हुए उसके इतिहास और लोगों की स्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। तब से भारतीय विभाग में भारत से जुड़ी हुई नई-नई बातों का पठन-पाठन प्रारंभ हुआ। पाठ्यक्रम में संस्कृत के अतिरिक्त तामिल, तेलुगू, तिब्बती जैसी भाषाओं को सम्मिलित किया गया। हिंदी की पढ़ाई प्रशिक्षित अध्यापक के अभाव के कारण कुछ समय के लिए टाल दी गई। और उसकी बारी सन् 1994 में, मेरे इजराइल में देशांतरवास के बाद ही आई। मैंने हिंदी-उर्दू

भाषाओं के अध्यापन का प्रशिक्षण ताशकंद विश्वविद्यालय में प्राप्त किया था और कोई बीस साल से हिंदी-उर्दू पढ़ाने में व्यस्त रहा। सन् 1996 में मुझे यरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय के भारत-तत्त्व विभाग में हिंदी के अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। विद्यार्थियों में हिंदी की बढ़ती हुई माँग को लेकर सन् 2001 में तेलअवीव विश्वविद्यालय में भी इस भाषा को सिखाने का निर्णय लिया गया, और मुझे वहाँ भी पूर्वी एशिया के विभाग में हिंदी पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया गया। हिंदी के कोर्स बहुत ही सफल रहे। जिसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि हर वर्ष दोनों विश्वविद्यालयों में कुल मिलाकर करीब चालीस नए-नए छात्र आ गए थे।

हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम यहाँ दो वर्षों का है। प्रथम वर्ष में विद्यार्थियों को लिखने, पढ़ने और बोलने का अभ्यास दिया जाता है। एक वर्ष के अंदर वे हिंदी व्याकरण के आधारभूत नियमों को पढ़ लेते हैं। और प्रतिदिन की आवश्यकता के विषयों पर बातचीत करना सीख लेते हैं। एक साल की पढ़ाई के बाद छुट्टियों के समय जो विद्यार्थी भारत की यात्रा पर जाते हैं वे अपनी प्राथमिक जानकारी का प्रयोग करके बहुत खुश होते हैं। हाँ, हिंदी जैसी भाषा गहराई से सीख लेने के लिए दो वर्ष अवश्य पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए दूसरे वर्ष के पाठ्यक्रम को मैंने कुछ ऐसी सामग्री पर आधारित किया है जिसके माध्यम से विद्यार्थी व्याकरण के सबसे महत्त्वपूर्ण नियमों को अपनाकर शब्दकोश की सहायता से हिंदी में कोई भी किताब पढ़ सकें। दूसरे वर्ष के अंत में विद्यार्थियों को इस स्तर पर तैयार किया जाता है कि वे रामधारी सिंह दिनकर जैसे लेखक की रचनाएँ पढ़ सकें। कोश और व्याकरण की सहायता से वे अनुवाद करते हैं और जहाँ कठिनाई होती है, मैं उनकी मदद करता हूँ।

भाषा को अपनाने में मौखिक अभ्यास कुछ कम आवश्यक नहीं हैं। बोलचाल की भाषा सीखने और हिंदी में बात करने की क्षमता बढ़ाने के लिए मैं नाटकों, फिल्मों और गानों का भी प्रयोग करता हूँ। हाँ, आजकल बहुत सी फिल्मों की भाषा शुद्ध नहीं है और अंग्रेजी से प्रभावित है, मगर थोड़ा सा प्रयत्न कर हमें कुछ नई और कुछ पुरानी फिल्में मिलीं, जिनके पात्र अच्छी मानक हिंदी बोलते हैं। गानों की तो कुछ न पूछिए इजराइल में आपको शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो हिंदी गाने नापसंद करता हो।

आधारभूत स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की कमी नहीं है। लेकिन उनमें कोई-न-कोई अवगुण जरूर पाया जाता है। उनमें या तो सामग्री के चयन और प्रस्तुतीकरण में सतहीपन है या व्याकरण के नियमों को ही भाषा समझकर उन पर बल दिया जाता है। तब मैंने अपने अनुभव पर आधारित एक ऐसी पाठ्य-पुस्तक लिखने की चेष्टा की जिसमें व्याकरण के संग जीवंत व सरल भाषा प्रस्तुत की जाए और जो पढ़ने में रोचक हो और उसमें भारत के बारे में विविध जानकारी भी मिले। फिर मेरा इरादा था कि विद्यार्थी यह पुस्तक अपनी मातृभाषा, यानी कि हिब्रू भाषा में पढ़ें। सन् 2000 तक मैंने यह कार्य पूर्ण किया, और अब मेरे पास दो साल की पढ़ाई के लिए पर्याप्त सामग्री है।

भाषा को अपनाने में मौखिक अभ्यास कुछ कम आवश्यक नहीं हैं। बोलचाल की भाषा सीखने और हिंदी में बात करने की क्षमता बढ़ाने के लिए मैं नाटकों, फिल्मों और गानों का भी प्रयोग करता हूँ। हाँ, आजकल बहुत सी फिल्मों की भाषा शुद्ध नहीं है और अंग्रेजी से प्रभावित है, मगर थोड़ा सा प्रयत्न कर हमें कुछ नई और कुछ पुरानी फिल्में मिलीं, जिनके पात्र अच्छी मानक हिंदी बोलते हैं। गानों की तो कुछ न पूछिए इजराइल में आपको शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो हिंदी गाने नापसंद करता हो। मेरे विद्यार्थी लगभग हर पाठ में कोई-न-कोई नया गाना सीख लेते हैं। संगीत के आनंद के अलावा गानों से बड़ा लाभ होता है। विद्यार्थी तनिक भी कोशिश किए बिना शब्द-भंडार बढ़ाते हैं और सही उच्चारण का अभ्यास पाते हैं।

जो विद्यार्थी हिंदी आगे सीखना चाहते हैं, वे छात्रवृत्तियाँ पाकर केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में अध्ययन के लिए जाते हैं।

हिंदी के प्रति बढ़ते रुझान को देखते हुए तेलअवीव विश्वविद्यालय ने इस साल हिंदी भाषा में तीन साल के पाठ्यक्रम को शुरू किया है। और खैफा नगर के विश्वविद्यालय ने भी आधुनिक भारत का अध्ययन करनेवालों के लिए एक साल का हिंदी कोर्स चलाया है।

इस सिलसिले में एक और बात उल्लेखनीय है। सन् 2000 से लेकर तेल-अवीव विश्वविद्यालय में पढ़ाई के हर वर्ष के अंत में 'हिंदी समारोहों' का आयोजन किया जाता रहा है, जिनमें भाग लेने के लिए भारत के और हिंदी के सैकड़ों प्रेमी आते हैं। यहाँ हर वर्ष 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस' बड़े धूम-धाम से मनाया गया। विद्यार्थी हिंदी गाने गाते हैं, नाटकों का मंचन करते हैं, हिंदी के बारे में विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं, कविताएँ सुनाते हैं। बाद में भारतीय नाच-गाने का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है और दर्शक जोरदार तालियों से कलाकारों का स्वागत करते हैं। भारत के राजदूतावास की सहायता से ऐसे समारोह एक शुभ परंपरा बन गए हैं, जो भारत और उसकी राजभाषा के प्रति इजराइलवासियों की रुचि और प्रेम का प्रदर्शन करते हैं।

हिंदी सीखने की इच्छा उन बहुत से लोगों को भी होती है जो विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ते। हल ही में मैंने जिस हिब्रू-हिंदी वातचीत की किताब तैयार की है, वह हाथोहाथ बिकने लगी है। यहाँ हिंदी में जी.टी.वी. के प्रोग्राम प्रसारित किए जाते हैं, जो बड़े लोकप्रिय हैं। यहाँ के टेलीविजन पर और सिनेमाघरों में हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन और रेडियो पर हिंदी गानों का प्रसारण एक साधारण सी बात बन गया है।

अब मैं यह समझाने की कोशिश करूँगा कि विश्वविद्यालय में विद्यार्थीगण हिंदी पढ़ने क्यों आते हैं तथा उनका क्या लक्ष्य होता है?

तेलअवीव विश्वविद्यालय के पूर्वी और दक्षिणी एशिया के विभाग में विद्यार्थी इस सारे क्षेत्र के देशों की संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करते हैं। चीन, जापान और भारत को पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व दिया गया है। पाठ्यक्रम के अनुसार इन तीनों देशों की कोई एक भाषा सीखना अनिवार्य है। इस प्रकार विद्यार्थी चीनी, जापानी, संस्कृत या हिंदी चुन सकते हैं। कुछ युवक-युवतियाँ हिंदी को बस इसलिए चुन लेते हैं कि उनके विचार में अन्य तीन भाषाओं की तुलना में हिंदी अपेक्षाकृत सरल है। छात्रों में कुछ ऐसे लोग हैं, जिन्होंने चीनी या जापानी सीखने का प्रयत्न किया भी था, मगर हारकर छोड़ दिया और हिंदी की ओर मुँह किया। लेकिन अधिकतर छात्रों को दाद देनी चाहिए। उन्होंने हिंदी को समझ-बूझकर ही चुन लिया, क्योंकि एशिया के देशों में से भारत ही को यह सम्मान दिया था।

हर वर्ष हिंदी सीखने के लिए तेल-अवीव विश्वविद्यालय में 20-25 विद्यार्थी आते हैं, और यरुशलम विश्वविद्यालय में 10-15 विद्यार्थी। उनके लिए हिंदी एक भाषा ही नहीं, वरन् भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मेरे अधिकतर छात्र कई बार भारत होकर आए हैं। बहुतों ने उत्तर और दक्षिण भारत छानकर देखा। यात्रा के समय विभिन्न लोगों से बात करने का अवसर मिलता है। भारत में निजी संपर्क स्थापित करना कितना आसान है! भारत के लोग मेल-जोल के लिए किस हद तक खुले हैं, इसका अनुमान वे लोग कर सकते हैं जो चीन जैसे देशों में यात्रा कर चुके हों। भारतीय लोग बात करने के लिए हर समय तत्पर रहते हैं, लेकिन बहुतों को इतनी अंग्रेजी नहीं आती कि वे हर भावना और विचार को संपूर्ण रूप से प्रकट कर सकें। तब तो हमारे इजराइली पर्यटक हिंदी जानने की आवश्यकता महसूस करने लगते हैं।

मेरी एक छात्रा येवगेनिया किर्नोस ने मुझे बताया कि पहली बार उसे हिंदी की कमी का अनुभव उस दिन हुआ, जब वह अपने हिंदुस्तानी दोस्तों के घर गई। वहाँ सब लोग बैठकर हिंदी में बात कर रहे थे और उनकी बातें न समझते हुए पराई-सी बैठी रही। तब उसने निर्णय लिया कि 'मैं हिंदी जरूर जानूँगी, ताकि उनके साथ बात करने और मजाक करने का आनंद ले सकूँ, हमारे बीच सहानुभूति और पारस्परिकता की भावनाओं को और प्रोत्साहन मिले।'

मेरे एक और विद्यार्थी रवीव रोइमीशेर का कहना है कि तेल-अवीव विश्वविद्यालय में दो साल हिंदी पढ़ने के बाद जब वह फिर

भारत गया तो खुशी से फूला न समाया। वह कहता है कि 'मैं कई साल पहले हिंदी न जानकर भारत की यात्रा पर कैसे निकला था? अब की बार मैं इर्द-गिर्द घटनेवाली घटनाओं का अर्थ समझ पाया, लोगों से बात करके उनके जीवन और समस्याओं को बेहतर तौर पर समझ सका। अब मैं एक विदेशी पर्यटक की नहीं, एक शोधक की नजरों से सब कुछ देखने लगा।'

अब आइए देखें कि इजराइल में लोग हिंदी जानने से क्या लाभ उठा सकते हैं? यहाँ की सड़कों पर तो हिंदी नहीं गूँजती। यहाँ तक कि भारत मूल के इजराइलवासी आपस में हिंदी में नहीं, मराठी में बात करना पसंद करते हैं। न तो यहाँ के सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग होता है और न ही हिंदी सीखकर उन कार्यालयों में रोजगार पाने की आशा है। तो किसी एक आदमी से या कई लोगों के समूह से निजी संपर्क स्थापित करने के लिए ही विश्वविद्यालय में तीन साल पढ़ने और ढेर सारे पैसे खर्च करने की क्या जरूरत है? पाठ्य-पुस्तक और शब्दकोश खरीदकर हर एक व्यक्ति स्वयं विदेशी भाषा सीख सकता है।

बात दरअसल यह है कि हमारे युवकों और युवतियों के लिए हिंदी का अध्ययन उनके लिए भारत की संस्कृति को ज्यादा गहराई से समझने का माध्यम है। और तो और, मैं अपने कोर्स में दुभाषियों का प्रशिक्षण नहीं करता। विद्यार्थी व्याकरण के सबसे महत्त्वपूर्ण नियमों को अपनाकर, दो सालवाले इस कोर्स के बाद शब्दकोश की सहायता से हिंदी में किताबें पढ़ने की क्षमता रखते हैं। हाँ, यह भी सच है कि बी.ए. की डिगरी पानेवाले बहुत से छात्रों के जीवन में हिंदी का कोर्स बस एक मीठी याद बनकर रह जाएगा। हो सकता है कि कभी भारत की यात्रा के दौरान हिंदी उनके काम आए। लेकिन जो विद्यार्थी भारत से संबंधित शोधकार्य में जुटना चाहें, उनके लिए कई रास्ते खुले हैं। वे अपनी पढ़ाई इजराइल में या भारत में जारी रख सकते हैं। शोधकार्य परिपूर्ण करने पर उन्हें किसी विश्वविद्यालय में रोजगार मिलने की संभावना है, क्योंकि पिछले कुछ बरसों में भारत की सभ्यता और आधुनिक परिस्थिति से जुड़े हुए विषयों की माँग बड़ी हद तक बढ़ गई है।

जब से हमारे दोनों देशों के बीच पारस्परिक संपर्कों को प्रोत्साहन मिला, विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग और व्यापार बढ़ा, तब से हिंदी की माँग भी लगातार बढ़ती चली आई है। इधर इजराइल की कुछ कंपनियाँ, जो अपना उत्पादन निर्यात करती हैं, हिंदी जाननेवालों को अपने यहाँ आमंत्रित करने लगी हैं। मेरे विद्यार्थियों में व्यापारिक फर्मों के एजेंट और पर्यटन संघों के मार्गदर्शक भी हैं। एक ऐसे व्यावसायिक एजेंट रोनेन ने, जो अपने काम के सिलसिले में हर साल कई बार भारत जाया करता था, सुनाया कि हिंदी की जानकारी ने उनके काम को कहीं ज्यादा सरल और सफल बना दिया। यही नहीं कि विभिन्न लोगों से मिलने-जुलने में उन्हें सहायता मिली, वरन् रोनेन के प्रति भारतीय सौदागरों में विश्वास और सम्मान का अनुभव भी पैदा हुआ। इस प्रकार वर्तमान में आर्थिक उदारीकरण के युग में हिंदी के कारण इजराइल के कुछ नागरिकों को रोजगार भी मिलने लगा है।

लेकिन हिंदी के मुख्य उपभोक्ता इजराइल के हजारों यात्री और भारतीय सभ्यता के प्रेमी हैं। इजराइल जैसे छोटे देश से 30-40 हजार पर्यटक हर वर्ष भारत की यात्रा करते हैं। आम विदेशी यात्री स्थानीय भाषाएँ जाने बिना अपना काम चला लेते हैं। पर इजराइल के यात्री बस घूमने-फिरने नहीं, तरह-तरह की बातें सीखने जाते हैं। बहुतों को भारतीय कला में रुचि है। किसी को शास्त्रीय गाने गाने का, किसी को नृत्य का, तो किसी को बाजे बजाने का शौक है। उनमें से बहुतों ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनको हिंदी सिखाऊँ, ताकि वे अपने हिंदुस्तानी गुरुओं से उनकी भाषा में ही बात कर सकें और भारत की कला का अर्थ बेहतर तौर पर समझ सकें। लेकिन सबकी प्रार्थनाएँ पूरी करना असंभव है। मैं हिंदी की 'स्वयं शिक्षक' किताब लिखने में जुट गया हूँ। आनेवाले कुछ महीनों के अंदर ही वह प्रकाशित होगी। आशा है कि इसके कारण हिंदी बोलनेवालों की संख्या और बढ़ जाएगी। इजराइल के बहुत से लोग यह अच्छी तरह समझने लगे हैं कि हिंदी के माध्यम से भारत की सभ्यता के द्वार खुल सकते हैं।

इस तरह हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए किसी पर दबाव डालने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। प्राचीन संस्कृतिवाली एक बड़ी ताकत की राष्ट्रीय भाषा होते हुए हिंदी खुद अपना महत्त्व साबित करती है।

Dr. Genady Shlomper
University of Tel Aviv
Israel
Email: genady.shlomper@gmail.com
Tel: +972-54-6324449

19

जर्मनी में हिंदी की वर्तमान स्थिति

डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय

लगभग 25 साल पहले मैंने एक लेख लिखा था, जिसके माध्यम से मैंने यह बताने की कोशिश की थी कि जर्मनी में उस समय हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की क्या स्थिति थी। आज बहुत अंतर तो नहीं आया है, फिर भी उस समय के अधिकांश अध्यापक अध्यापन-कार्य में अब सक्रिय नहीं हैं। जो स्वाभाविक ही है। प्रारंभिक काल में उत्साह कुछ अधिक था और भारतीय शिक्षकों में हिंदी-प्रचार एवं प्रसार की महत्त्वाकांक्षा भी अधिक थी। हमारे जैसे शिक्षक शीघ्रातिशीघ्र हिंदी को विश्व-भाषा के स्थान पर पहुँचा देने के सपने देख रहे थे। देश में हिंदी की राजनीति अधिक थी और अधिक ध्यान हिंदी के प्रचार और प्रसार की ओर था। सन् 1965 तक हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्थापित हो जानेवाली थी। यहाँ भी, इस संभावना को लेकर, कुछ विशेष तत्परता थी। हिंदी के राष्ट्रभाषा बन जाने पर भारत की सरकार के साथ हिंदी में काम-काज चलाने की चिंता भी थी। ऐसी परिस्थिति का पूरा मुकाबला करने के लिए तैयारी करनी थी। तब कुछ ऐसा भाव था।

हिंदी-अध्यापन के लिए जब मैं जून 1963 में जर्मनी आया था, अभी केवल एक साल पहले, हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय के अंतर्गत दक्षिण-एशिया संस्थान की स्थापना हुई थी। उस समय इस संस्थान में, हिंदी-उर्दू पढ़ाने के लिए हम चार अध्यापक थे प्रो. आर्येंद्र शर्मा, प्रो. फरमेयर, श्रीमती तैयब अली और मैं। कभी एक और कभी दो विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए हम चारों प्रोफेसर कक्षा में जाते थे। एक पढ़ाता था और हम सभी पढ़ते थे। अहिंदी भाषी विदेशी को हिंदी पढ़ाने के लिए आवश्यक सामग्री का अभाव था। जो व्याकरण की पुस्तकें थीं भी, वे सब अंग्रेजी या हिंदी में थीं। आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अतः सामग्री तैयार की जाने लगी। इस जल्दबाजी में जिस प्रकार की आपा-धापी शुरू हुई, मेरे जैसा संकोची व्यक्ति तो मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। फिर भी इन 40 सालों में बहुत काम हुआ। पाठ्यपुस्तकें बनीं, कोश तैयार हुए भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में अच्छे अनुसंधान और अनुवाद भी प्रस्तुत हुए। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि प्रचारात्मक दृष्टि सौभाग्य से क्षीण हुई और ठोस काम शुरू हुआ। इससे हिंदी अध्ययन-अध्यापन के मामले में रचनात्मक प्रगति हुई, साथ ही सही निर्माण की नींव मजबूत होने लगी।

जर्मनी के लगभग बीस विश्वविद्यालयों के भारोपीय भाषा-शास्त्र संस्थानों एवं भारतीय विद्या गुरुकुलों (सेमिनारों) में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन-कार्य आज भी चल रहा है। यथावत तो नहीं, कुछ अंतर अवश्य आया है। कई संस्थानों में हिंदी-अध्यापन बंद हो गया है और जो हिंदी शिक्षकों के पद थे, उन्हें समाप्त कर दिया गया है। कुछ तो इसलिए कि हिंदी भाषा के प्रति वह प्रारंभिक रुचि कम हो रही थी और कुछ धनाभाव के कारण भी ऐसा हुआ। सन् 1963 से सन् 1973 तक सभी उत्साही जर्मनों को अपने भारतीय अनुभवों से यह प्रतीति होने लगी थी कि भारत में अंग्रेजी से काम ज्यादा आसानी से चल जाता है। हिंदी बोलने पर भारतीय अपने को प्रायः अपमानित महसूस करते हैं। जब विदेशी हिंदी में बोलने की कोशिश करते हैं, तो भारतीय कहते हैं, ''आप हिंदी में क्यों बोलते हैं? मुझे क्या अंग्रेजी नहीं आती?'' तब टूरिस्ट के रूप में सैलानियों ने भारत जाने की तैयारी में हिंदी सीखना कम कर दिया। सरकारी आदमी, अफसर होने के कारण, हिंदी भाषी होने पर भी, अंग्रेजी ही बोलता है। और जर्मनों के संपर्क अंग्रेजीदाँ भारतीयों से ही होते हैं। तो हिंदी की जरूरत यहाँ किसी को महसूस ही नहीं होती। और अब तो भारत में हिंदुस्तानी बच्चे भी अंग्रेजी या 'हिंगलिश' ही बोलते-समझते हैं।

यहाँ के कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में ऐसे संस्थान हैं, जिनमें हिंदी भाषा, हिंदी व्याकरण और हिंदी साहित्य का अध्यापन होता है और उनमें अनेक विद्यार्थी तथा प्रोफेसर अनुवाद तथा अनुसंधान का काम कर रहे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण अंतर है, जो सराहनीय है। मैंने अपनी पुस्तक 'Hindi Literature : Trends and Traits' (1975) में लिखा था कि हिंदी का अध्ययन जब

साहित्योन्मुखी होगा, तभी हिंदी का सही विकास एवं विस्तार हो सकेगा। और कुछ ही सालों में यहाँ के कतिपय विद्यार्थियों ने इस दिशा में ठोस कदम उठाया और हिंदी-अध्यापन का काम भी शुरू कर दिया। भारत से हिंदी प्राध्यापकों का आयात धीरे-धीरे बंद हो गया। अब अधिकांश संस्थानों में हिंदी के अध्यापक स्वयं जर्मन हैं। भारतीय प्राध्यापकों के अवकाश ग्रहण करने पर नए प्राध्यापक भारत से नहीं बुलाए गए, उनके स्थानों पर जर्मनों को अवसर दिया गया। यह ठीक भी है। लेकिन यह ठीक नहीं हुआ कि भारतीयों के हटने पर उनके पद ही समाप्त कर दिए जाएँ। सही उच्चारण और बोलचाल के मुहावरे को ठीक से सीखने-समझने के लिए 'नेटिव स्पीकर' की जरूरत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

कुछ ही सालों में यहाँ के कतिपय विद्यार्थियों ने इस दिशा में ठोस कदम उठाया और हिंदी-अध्यापन का काम भी शुरू कर दिया। भारत से हिंदी प्राध्यापकों का आयात धीरे-धीरे बंद हो गया। अब अधिकांश संस्थानों में हिंदी के अध्यापक स्वयं जर्मन हैं। भारतीय प्राध्यापकों के अवकाश ग्रहण करने पर नए प्राध्यापक भारत से नहीं बुलाए गए, उनके स्थानों पर जर्मनों को अवसर दिया गया। यह ठीक भी है। लेकिन यह ठीक नहीं हुआ कि भारतीयों के हटने पर उनके पद ही समाप्त कर दिए जाएँ।

एक और स्वागतयोग्य परिवर्तन धीरे-धीरे आ रहा है, जिसके स्थापित हो जाने पर हिंदी को अपना सही स्थान प्राप्त हो जाएगा। अभी तक हिंदी को 'इंडोलॉजी' या भारोपीय भाषा-शास्त्र के संस्थानों में वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल कर लिया जाता रहा है। हिंदी परीक्षा का विषय नहीं थी, और न इसका अध्ययन विद्यार्थी को अपनी मुख्य विषय परीक्षा में किसी प्रकार सहायक हो सकता था। अब हिंदी अनेक संस्थानों में परीक्षा का विषय बन गई है। किंतु अभी भी हिंदी-पीठ या हिंदी का Lehrstuhl किसी भी संस्थान में स्थापित नहीं हुआ है। अर्थात् अभी तक यहाँ जर्मनी में एक भी हिंदी प्रोफेसर नहीं है, प्राध्यापक अनेक हैं। इस वजह से एक स्वतंत्र विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन नहीं हो सकता था और न प्रोफेसर के अभाव में कोई हिंदी की परीक्षा ही दे सकता था। उसे 'इंडोलॉजी' या भारोपीय भाषा-शास्त्र के प्रोफेसर का संरक्षण प्राप्त करना होता था। अब इस स्थिति में परिवर्तन आ रहा है, और वेनिस की तरह स्वतंत्र हिंदी संस्थान का संगठन हो सकेगा, जिसके अंतर्गत संस्कृत तथा अन्य विषयों का अध्ययन होने लगेगा। यदि एकदम तुरंत ऐसे संस्थान नहीं भी बन पाएँ, फिर भी हिंदी के साथ संस्कृत इत्यादि को जोड़कर अध्ययन-योजना बनाई जाएगी। अब हिंदी को 'अपैंडिक्स' की तरह नहीं माना जाएगा, जिसे जब चाहा अलग कर दिया।

इसके अतिरिक्त यहाँ की शिक्षा-पद्धति में एक संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Change) भी होने जा रहा है। अभी तक यहाँ विश्वविद्यालयों के अधिकांश कला संकायों में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए अध्ययन होता था और 7-8 साल के अनुसंधान के बाद, सफल होने पर, पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त होती थी। लगभग 15 वर्ष पूर्व एम.ए. की उपाधि को अध्ययन-क्रम में शामिल किया गया है। और अब ऐंग्लो-सैक्सन देशों की शिक्षा-पद्धति के अनुसार यहाँ भी विश्वविद्यालयों के शिक्षा-क्रम में बी.ए. भी शामिल किया जा रहा है। ऐसा हो जाने पर अध्ययन-क्रम में हिंदी भी शामिल होगी और अध्यापकों के पदों और उनकी परिस्थितियों में भी सुधार होगा। इसके साथ ही हिंदी परीक्षा का एक स्वतंत्र विषय बन जाएगी। तब हिंदी अन्य प्रोफेसरों के मातहत न होगी। अस्तु, हिंदी का भविष्य अच्छा है, ऐसा कहा जा सकता है।

अब कुछ विस्तार में जाएँ तो पाएँगे कि यहाँ के कतिपय प्रमुख विश्वविद्यालयों में जैसे कि बर्लिन, हाइडेलबर्ग, बौन, हैम्बर्ग, माइन्त्स, म्यूनिख तथा ट्यूबिंगन के संस्थानों में एक से अधिक अध्यापक हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। फिर भी, यहाँ की एक विशेष कठिनाई यह भी है कि प्रोफेसर ज्यादातर अपने 'आइवरी टावर' में रहना पसंद करते हैं और सामान्य सामाजिकता एवं लोकप्रियता से घबराते हैं। हिंदी प्राध्यापकों का न तो कोई संगठन है और न यहाँ पर कभी कोई गोष्ठी ही होती है। पारस्परिक संवाद का अभाव है। छपने के पहले अपने लेखन के बारे में कोई किसी से बातचीत नहीं करता।

अधिकांश हिंदी के भारतीय प्राध्यापकों ने अवकाश ग्रहण कर लिया है और इस तरह अनेक पद भी समाप्त हो गए हैं। फ्रांकफर्ट से डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय, मारबुर्ग से डॉ. सर्मा पेरी, म्युन्स्टर से डॉ. सत्य नारायण शर्मा, बौन से डॉ. तिलक राज चोपड़ा, हैम्बर्ग से डॉ. बहादुर सिंह रिटायर होकर अपने-अपने क्षेत्रों में लिखने-पढ़ने

का काम कर रहे हैं। कुछ जर्मन प्रोफेसर भी अवकाश ग्रहण कर चुके हैं, इनमें से माइन्त्स के प्रो. बुदुस, कील के प्रो. लीनहार्ड, हाइडेलबर्ग के डॉ. लुत्से प्रमुख हैं।

अपेक्षाकृत कुछ नए हिंदी प्राध्यापकों की ओर ध्यान देना उचित होगा। बर्लिन के अनेक संस्थानों में व्यस्त प्राध्यापकों के नाम निम्न प्रकार हैं : Frau Dr. Hannelore Bauhaus-Loetzke, Frau Dr. Barbara Boerner-Westphall, Frau Dr. Angelika Maliner क्रमशः भाषा, व्याकरण तथा हिंदी साहित्य पढ़ाती हैं। बौन विश्वविद्यालय के संस्थान में Dr. Heinz Werner Wessler हैं। चोपड़ा जी संस्कृत, पाली, तिब्बती तथा हिंदी के अच्छे विद्वान् हैं, किंतु आजकल रिटायर्ड जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हिंदू धर्म के भी अच्छे ज्ञाता हैं। अनेक सालों तक फ्रांकफर्ट विश्वविद्यालय में हिंदू धर्म पर प्रो. वेबर के साथ सेमिनार चलाते थे। डॉ. वैसलर हिंदी भाषा तथा साहित्य का अध्यापन करते हैं और स्वयं हिंदी के दलित साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान कर रहे हैं। मन्नू भंडारी के नाटक 'बिना दीवारों का घर' पर इन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण प्रबंधन प्रस्तुत किया है, जो सराहनीय है।

हाइडेलबर्ग के दक्षिण एशिया संस्थान में कई अध्यापक हैं, जिनमें से मेरा परिचय केवल Prof. Dr. Monika Boehm-Tettelbach से है। वे अर्से से भारत-विद्या की प्रोफेसर हैं। जब वे कोलोन के संस्थान की अध्यक्षा थीं, तब मैंने, उनके आमंत्रण पर, वहाँ दो सालों तक हिंदी साहित्य का अध्यापन किया था। मेरा अध्ययन-क्षेत्र उपन्यास है और मैंने इस क्षेत्र में हिंदी, अंग्रेजी तथा जर्मन में कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अब वे दक्षिण-एशिया संस्थान में आधुनिक भारतीय भाषा विभाग की अध्यक्षा हैं और उनके साथ हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में अन्य तीन व्यक्ति काम कर रहे हैं। Dr. Ulrike Stark हिंदी साहित्य पढ़ाती हैं। इन्होंने नवल किशोर प्रेस के योगदान पर तथा मुसलिम लेखकों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। Dr. Christina Oesterheld हिंदी और उर्दू भाषाएँ सिखाती हैं। Lila Huettemann भी हिंदी सिखाती हैं। इन्होंने हिंदी फिल्मों पर अच्छा कार्य किया है।

वैसे इस संस्थान से मेरा संबंध प्रारंभ से ही रहा है और मेरी पुस्तक Regionalism in Hindi Novels को यहाँ की अनुसंधान-माला में सन् 1974 में प्रकाशित किया गया था। अकसर मुझे इस संस्थान ने व्याख्यानों के लिए भी आमंत्रित किया है। मेरे बाद और आज के इन प्राध्यापकों के पहले Dr. Lothar Lutze विभागाध्यक्ष और हिंदी के कुशल अध्यापक थे। इन्होंने हिंदी की आधुनिक कविता का अच्छा अनुवाद किया और कराया है। इन्होंने वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी तथा अनेक अन्य कवियों को अतिथि प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित कर आधुनिक हिंदी काव्य को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। डॉ. पीटर त्सौलर (Dr. Peter Zoller) भी यहाँ हिंदी पढ़ाते थे। कुछ समय तक इन्होंने मेरे सेमिनार में भी काम किया है। पश्चिमी गढ़वाल पर इनका ज्ञान गहरा है। साहित्य के क्षेत्र में धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' का अनुवाद किया है और विद्वतापूर्ण टिप्पणी भी प्रस्तुत की है।

माइन्त्स लेल विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या संस्थान के Prof. Georg Buddruss ने हिंदी को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। स्वयं तो हिंदी उपन्यास पढ़ाते ही थे अपने विद्यार्थियों को भी प्रेरित और प्रोत्साहित करते रहते थे। उन्हीं के अंतर्गत Walter Schmitt ने प्रेमचंद जी पर 420 पृष्ठों का एक खोजपूर्ण प्रबंध प्रस्तुत किया, जिस पर उन्हें पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। इस प्रबंध में लेखक ने उनकी 40 कहानियों पर विशेष ध्यान दिया है जिनमें प्रेमचंद जी ने 'मैं' नैरेटर का सुंदर उपयोग किया है। प्रो. बुदुस के रिटायर्ड होने के बाद आजकल Prof. Dr. Konard Meisig विभागाध्यक्ष हैं जो हिंदी आख्यान-साहित्य के अच्छे अध्येता हैं। इन्होंने यशपाल के संकलन 'फूलों का कुर्ता' से अनुवादित अनेक कहानियों का संपादन किया है। अनेक कहानियों का स्वयं अनुवाद किया है। मेरी पत्नी ने मेरी पुस्तक 'अवधी व्रत कथाएँ' से 35 कथाएँ जर्मन में अनुवादित की हैं, और इस संकलन का प्रकाशन भी प्रो. माइसिंग की देखरेख में इसी संस्थान से हुआ है। प्रो. माइसिंग ने इस पुस्तक का मूल्य और भी बढ़ा दिया है। इन कथाओं के अभिप्रायों को संसार की अन्य कथाओं के साथ मिलाकर एक सुंदर तुलनात्मक अध्ययन तैयार कर दिया है। Die Pockengoettin नाम से हमारी इस पुस्तक का प्रकाशन इसी संस्थान की अनुसंधान-माला के अंतर्गत सन् 2002 में हुआ है। मेरी पत्नी, हाइडेमरी पांडेय ने मृदुला गर्ग के उपन्यास 'चितकोबरा' और मंजुल भगत के 'अनारो' का जर्मन में अनुवाद किया है। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' का भी अनुवाद किया, जो अभी तक अप्रकाशित है।

शर्मा-वैरमेअर के नाम से एक हिंदी व्याकरण की छोटी सी पुस्तक अनेक सालों से चल रही है और साथ में एक पाठ्य पुस्तिका भी है, जिसके पाठ प्रारंभ मैंने ही तैयार किए थे। लेकिन प्रकाशन संबंधी झगड़े के कारण मैं इस्तीफा देकर बर्कले चला गया था। मेरी अनुपस्थिति में यहाँ यह पुस्तक प्रकाशित कर दी गई

और मेरे नाम का उल्लेख भी नहीं किया गया। कालांतर में शर्मा-वैरमेअर ने हिंदी-जर्मन कोश बहुत अच्छा निकाला, जो बहुत उपयोगी साबित हो रहा है। Margot Gatzlaff-Haelsig (Loetzke) व्याकरण और कोश के क्षेत्र में बहुत सराहनीय प्रकाशन प्रस्तुत कर चुकी हैं। इस प्रकार देखने पर हम बहुत से ऐसे विद्वांन् और उनकी रचनाएँ पाएँगे, जो वस्तुतः प्रशसंनीय हैं। अंगेलिका मालिनेर ने अज्ञेय जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' पर काम किया है। कोलोन के Prof. Kapp ने जायसी की भाषा पर काम किया है और डॉ. बहादुर सिंह ने दिल्ली की बोली पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किया है। 'Deutsche Welle' जर्मन प्रसारण संस्था है, जो लगभग सन् 1960 से संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बंगाली इत्यादि भारतीय भाषाओं में समाचार तथा अन्य उपयोगी सामग्री का विश्वव्यापी प्रसारण कर रही है। इस प्रसारण संस्था के होने के कारण भी बौन-क्योल्न हिंदी के महत्त्वपूर्ण स्थान बन गए हैं, जहाँ भारत से अनेक भारतीय भाषाओं के विद्वान् आते रहते हैं और प्रसारण कार्य में सहयोग देते हैं।

लेकिन जर्मनी में जापान की तरह हिंदी में ऐसी कोई पत्र-पत्रिकाएँ नहीं हैं, जिनमें वर्तमान हिंदी साहित्य की सामग्री प्रस्तुत होती हो। न ही कोई ऐसे दल ही निर्मित हो पाए हैं, जो समय-समय पर भारत जाकर हिंदी के नाटक अभिमंचित करते हों या अपने देश में ही लघु रूपक मंचित करते हों। फिर भी ऐसा नहीं है कि यहाँ इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य न हो रहा हो। हमारे देश में यदि हमारी हिंदी की हालत ठीक रहती और श्रेष्ठ साहित्य की रचना होती रहती और नए-नए प्रेमचंद और रेणु पैदा होते रहते, तो हिंदी को भी वह सम्मान प्राप्त हो जाता, जिसकी यह पूर्ण अधिकारिणी है। फिर भी जर्मन विद्वान् अपने स्वभाव के अनुसार अनुसंधान के क्षेत्र में बहुत अच्छा और ठोस कार्य करके हिंदी अध्ययन-अध्यापन को सच्ची प्रगति प्रदान कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों के बाहर भी अन्य अनेक विद्वान हिंदी को समृद्ध बनाने में निरंतर सक्रिय हैं। सन् 1985 में मैंने अपनी पत्नी हाइडेमरी पांडेय के साथ मिलकर फ्रंकफर्ट में 'भारतीय संस्कृति संस्थान' की स्थापना की, जो आज भी भारतीय संगीत एवं नृत्य के साथ हिंदी भाषा के अध्यापन का कार्य कर रही है। हमारे कौंसिलावास में भी हिंदी-अध्यापन का काम चलता रहता है।

Shri Indra Prakash Pandey
Berliner Strasse 19, 65824
SCHWAL BACH
Germany
Email: pandey@web.de

देवनागरी लिपि में अपेक्षाकृत वे गुण हैं, जो संसार की अन्य किसी लिपि में दुर्लभ हैं।

-डॉ. परमानंद पांचाल

20

इटली में हिंदी शिक्षण

प्रो. श्याममनोहर पांडेय

सन् 1757 में इटली से एक कैथोलिक धर्म प्रचारक बिहार के बेतिया गाँव गए थे। वे पटना और बनारस भी गए पर उनका प्रमुख केंद्र बेतिया बना रहा। इस धर्म प्रचारक का नाम 'मार्को देल्ला तोम्बा' था। इन्होंने भारत की यात्रा की। वहाँ धर्म, राजनीति, सामाजिक व्यवस्था और साहित्य का अध्ययन अपनी दृष्टि से किया। उनकी कृतियों का एक संग्रह Gli Scritti del padre della tomba (फादर दलमा तोम्बा की रचनाएँ) के नाम से छपा था। इसमें एक विशद् अध्याय संत कबीर पर है। इस अध्ययन में कबीर की प्रक्षिप्त रचनाओं को भी समाविष्ट किया गया है पर यह अध्ययन यूरोप में कबीर का प्रथम अध्ययन था। ग्रंथ इटालियन में होने के कारण हिंदी जगत् में उसकी चर्चा कम हुई।

सन् 1900 के आस पास इटली के ही एल.वी टेस्सीटोरी ने भारत में रहकर राजस्थानी साहित्य कला और भाषा का अध्ययन सम्पन्न किया। राजस्थानी भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त उन्होंने राजस्थानी के विपुल साहित्य को प्रकाश में लाने का कार्य किया था। सन् 1919 में उन्होंने पृथ्वीराज राठौर कृत 'वेलि किसन रुकमणी' का वैज्ञानिक पाठ-सात प्रतियों के आधार पर संपादित किया था, जो एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किया गया था। इन दोनों इटालियन विद्वानों का उल्लेख किये बिना इटली में हिंदी का कोई विवरण अपूर्ण माना जाएगा। इटालियन विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन बराबर होता रहा है। किन्तु इधर 60 वर्षों में इटली में हिंदी का अध्ययन भी विकासोन्मुख है। यहाँ 7 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। पर पाँच विश्वविद्यालय ऐसे हैं जहाँ हिंदी में विशेष अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। हिंदी के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष यहाँ के विश्वविद्यालयों-ओरियंटल विश्वविद्यालय, नेपुल्स, रोम, वेनिस, मिलान, टूरिन आदि में लगभग तीन सौ विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं।

ओरियंटल विश्वविद्यालय

ओरियंटल विश्वविद्यालय, नेपुल्स में आजकल 50 विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। प्रथम वर्ष में व्याकरण के अतिरिक्त इटालियन भाषा में हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ाना यहाँ अनिवार्य समझा जाता रहा है क्योंकि इससे विद्यार्थियों को पता चल जाता है कि हिंदी में क्या-क्या सामग्री पठनीय है, उसका साहित्य कितना विस्तृत है।पृथ्वी राज रासो से लेकर आधुनिक काल के हिमांशु जोशी, चित्रा मुद्गल के उपन्यासों के अतिरिक्त ममता कालिया तथा मन्नू भंडारी की कहानियाँ भी यहाँ पढ़ाई जाती रही हैं। द्वितीय वर्ष में छायावादी कविताओं का अध्ययन भी मैंने कराया था, और मुझे प्रसन्नता है कि मेरी एक छात्रा जयशंकर प्रसाद और उनकी कामायनी पर भी कार्य कर रही है। ओरियंटल विश्वविद्यालय के एशिया विभाग के सहयोग से मेरे लोक महाकाव्य लोरिकी, चनैनी तथा लोरिकायन के पाँच भाग प्रकाशित हुए हैं। यहाँ की पत्रिका 'अन्नाली' में चंदायन, कुसुबन, मीराबाई तथा तुलसीदास पर कई निबंध प्रकाशित हुए हैं। ओरियंटल विश्वविद्यालय में हिंदी की पुस्तकों का एक बृहद् संग्रह है, जिसमें आदिकाल से लेकर मध्यकाल तथा आधुनिक काल के साहित्य पर भी प्रचुर सामग्री मिल जाती है। यहाँ मैं कबीर, तुलसी, सूरदास, मीराबाई को पढ़ाता रहा हूँ। अतः भक्तिकाल पर एक अच्छा संग्रह यहाँ उपलब्ध है। पिछले वर्ष मेरे अवकाश प्राप्त करने के बाद सुश्री रेत्ते फानिया कावेलियेरी हिंदी के अध्ययन अध्यापन का कार्य संभाल रही हैं। वह केशवदास तथा उनकी 'जहाँगीर-जस चंद्रिका' पर कार्य कर रही हैं। 'जहाँगीर-जस चंद्रिका' तथा तुलसीदास पर उनके शोध निबंध भी प्रकाशित हो चुके हैं।

रोम विश्वविद्यालय

रोम विश्वविद्यालय में हिंदी लगभग 50 वर्षों से पढ़ाई जा रही है। आजकल प्रोफेसर मिलानेत्ती इस विभाग का कार्य सँभाल रहे हैं। 'पद्मावत' का उन्होंने इटालियन में अनुवाद किया है। तान्या

गुप्ता के साथ उन्होंने प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए एक हिंदी का व्याकरण तैयार किया है। यह ग्रंथ पहले साल के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। मिलानेत्ती जी के साथ दो भाषा सहायक काम कर रहे हैं, तान्या गुप्त तथा जयप्रकाश भारद्वाज। रोम में हिंदी सिनेमा पर भी एक कोर्स दिया जा रहा है। वहाँ आधुनिक हिंदी साहित्य एक मेरी भूतपूर्व छात्रा मारु मात्रा पढ़ा रही है। रोम विश्वविद्यालय में लगभग 120 छात्र हिंदी पढ़ रहे हैं।

रोम में ही पोप की नगरी वेटिकन है। यहाँ वेटिकन में हिंदी में रेडियो प्रसारण होता है। वेटिकन रेडियो एक प्रकार से धार्मिक संस्थान है, जो ईसामसीह और उनके संदेशों का प्रसारण करता है। कुछ सामान्य खबरें भी इनमें रहती हैं। भारत में उस रेडियो के श्रोता काफी हैं, उनके द्वारा भेजे गये पत्रों से यह ज्ञात होता है।

रोम में एक दूसरी संस्था है 'इसियाओ'। यह पहले Ismeo (इस्मेओ) हुआ करता था जिसकी स्थापना सुप्रसिद्ध विद्वान टूच्ची ने की थी। इस्मेओ को कुछ वर्ष पूर्व अफ्रीका संस्थान से जोड़कर इसको (Isiao) 'इसिआओ' बना दिया गया। यहीं से 'ईस्ट एंड वेस्ट' पत्रिका निकलती है। इस संस्था का पुस्तकालय समृद्ध है और इसमें हिंदी की पुस्तकें भी हैं। यह संस्थान मेरे द्वारा संपादित हिंदी इटालियन कोश प्रकाशित कर रहा है। कोश प्रेस में है और सन् 2010 के आरंभ में यह प्रकाशित हो जाएगा। इस कोश में विशेष शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी सम्मिलित किया गया है।'दाल में काला है', 'उसकी नानी मरने लगी, 'वह नौ दो ग्यारह हो गया' ये सभी मुहावरे विदेशी विद्यार्थियों के लिए क्लिष्ट हैं।ऐसे मुहावरों का प्रयोग और अर्थ इस कोश में मिलेगा।

वेनिस विश्वविद्यालय

वेनिस विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के डाइरेक्टर श्री लक्ष्मण प्रसाद मिश्र थे। वर्षों पहले उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। हिंदी के पठन-पाठन की यहाँ अच्छी परंपरा है। सुश्री मारियोला ओफ्रेदी भी यहाँ थीं जो तीन साल पूर्व अवकाश प्राप्त कर वैरगमो नामक स्थान में रहती हैं। उन्होंने हिन्दी के कई उपन्यासों का इटालियन अनुवाद किया है, जिनमें अलका सारावगी का 'कलिकथा : वाया बाइपास' तथा 'गोदान' के अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस विभाग में चेचिलिया कोसियो नाम की एक और अध्यापिका थीं जिन्होंने रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' का अनुवाद किया था। इस विश्वविद्यालय में हिंदी का कार्य आजकल जॉन फिलिप्पी सँभाल रहे हैं। उनके सहयोगी श्री घनश्याम शर्मा हैं, जिन्होंने हिंदी-इटालियन और इटालियन-हिंदी कोश प्रकाशित किया है। इस विश्वविद्यालय में लगभग 40 विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं।

टूरिन (तोरीनो) विश्वविद्यालय

इटली में आजकल सबसे अधिक व्यवस्थित हिंदी विभाग टूरिन विश्वविद्यालय का है। यहाँ प्रोफेसर पेनुचा कराक्की हिंदी विभाग का कार्य सँभालती हैं। यहाँ भी लगभग 50 विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। श्रीमती कराक्की का एक शोध ग्रंथ संत रामानंद पर है। यह रामानंद पर अध्ययन के लिए एक मानक ग्रंथ है। कराक्की जी ने एक व्याकरण भी लिखा है, जिसे संदर्भ ग्रंथ के रूप में इटली के हिंदी छात्र उपयोग में लाते हैं। श्रीमती कॉनसालारो उनकी सहयोगी है जो आधुनिक हिंदी साहित्य पर काम करती हैं। बनारस की सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपरा पर उनका ग्रंथ इटली में प्रख्यात है। इन्होंने हिंदी की कहानियों का अनुवाद भी किया है।

इस विभाग के भूतपूर्व निदेशक स्तेफनो पियानो हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के विद्वान हैं। प्रोफेसर कराक्की और स्तेफनो पियानो ने संयुक्त रूप से हिंदी कहानियों के एक इटालियन अनुवाद का संग्रह प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका

इटली में आजकल सबसे अधिक व्यवस्थित हिंदी विभाग टूरिन विश्वविद्यालय का है। यहाँ प्रोफेसर पेनुचा कराक्की हिंदी विभाग का कार्य सँभालती है। यहाँ भी लगभग 50 विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। श्रीमती कराक्की का एक शोध ग्रंथ संत रामानंद पर है। यह रामानंद पर अध्ययन के लिए एक मानक ग्रंथ है। कराक्की जी ने एक व्याकरण भी लिखा है, जिसे संदर्भ ग्रंथ के रूप में इटली के हिंदी छात्र उपयोग में लाते हैं।

कराक्की जी ने लिखी है, जिसमें हिंदी की कहानियों के विकास का अच्छा विश्लेषण हुआ है। इटली के पाठक और विद्यार्थी इसे रुचिपूर्वक पढ़ रहे हैं। टूरिन में एक भाषा सहायक रूपलाल संधु भी हैं। यहाँ शोध की गंभीर परंपरा है। एक विद्यार्थी नाभादास के भक्तमाल पर भी कार्य कर रहा है। टूरिन विश्वविद्यालय में हिंदी पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह है।

मिलान विश्वविद्यालय

मिलान विश्वविद्यालय में प्रोफेसर दोलचीनी हिंदी की प्रोफेसर हैं। वह राजनीति की फैकल्टी के अतिरिक्त आर्ट्स फैकल्टी में भी हिंदी पढ़ाती हैं। विद्यार्थियों की संख्या यहाँ भी 60 के लगभग है। एक भाषा सहायक भी यहाँ हैं। दोलचीनी जी ने भारतेंदु और फोर्ट विलियम कॉलेज और उसकी कार्य पद्धति का अध्ययन तो किया ही है, 'रानी केतकी की कहानी' का इटालियन अनुवाद भी किया है। बहुत पहले श्री लक्ष्मण मिश्र के जीवनकाल में वे वेनिस में पढ़ाती थीं। बाद में मिलान चली आईं। प्रोफेसर दोलचीनी को विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में सम्मानित भी किया गया था। दोलचीनी जी ने मिलान की एक संस्था एकेदेमिया अम्ब्रोजियाना में भी हिंदी को सम्मिलित कराया है। 30-31 अक्टूबर, 2009 को वहाँ एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें मैं भी शामिल हुआ था। इटालियन में यदि हिंदी पर कोई गंभीर कार्य हुआ है, जिसका संबंध आदि या भक्तिकाल से है तो यहाँ प्रकाशित कराया जा सकता है। मिलान विश्वविद्यालय में साहित्य से अधिक भारतीय संस्कृति के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। दोलचीनी जी की एक भाषा सहायिका भी हैं जो 'बातचीत' के पाठ में विद्यार्थियों की सहायता करती हैं।

इन प्रमुख केंद्रों के अतिरिक्त मचेराता तथा कुछ और विश्वविद्यालयों में भी हिंदी को प्रारंभ किया गया है। इटली एक ऐसा देश है जहाँ हिंदी का अध्ययन और अध्यापन सात विश्वविद्यालयों में किसी-न-किसी रूप में होता है। हिंदी का भविष्य यहाँ उज्ज्वल है। ये सारे विश्वविद्यालय अपने कोष से हिंदी विभाग को प्रश्रय दे रहे हैं। भारत में लोगों को पता भी नहीं है कि इटली में हिंदी के लिये एक वर्ग में कितनी जागरूकता है। शायद जब भारत और इटली का व्यापारिक संबंध और सुदृढ़ हो, तब भारत सरकार हिंदी प्रेमियों को जोड़ने में और अधिक सहायक होगी।

Prof. Shyam Manohar Pandey
24 Midmoor Road
Wimbledon South West 19 4JD
U.K.
Email: smpandey@hotmail.co.uk
Phone : +44-208-946-3326

स्वदेशाभिमान की एक शाखा यह भी है कि हम अपनी भाषा का मान रखें, उसे ठीक तरह से बोलना सीखें और उसमें विदेशी भाषा के शब्दों का उपयोग यथासंभव कम करें।

-महात्मा गांधी

21

एशियाई देशों में हिंदी की स्थिति

डॉ. परमानंद पांचाल

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व अप्रैल 1947 में दिल्ली के पुराने किले में आयोजित प्रथम एशियाई कॉन्फ्रेंस में महात्मा गांधी ने अपना भाषण हिंदी में देकर एशियाई देशों में हिंदी के महत्त्व की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया था। यह इस बात का संकेत था कि एशियाई महाद्वीप के देशों के साथ हिंदी का बड़ा ही स्वाभाविक और निकट का संबंध है।

हिंदी आज विश्व भाषा के रूप में अनेक देशों में तेजी से लोकप्रिय होती जा रही है और विश्व के विराट् फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं, भारतीय संस्कृति की सबल, समर्थ और सशक्त संवाहिका है, जो विदेशों में बसे करोड़ों की संख्या में प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों के बीच आत्मीयता के संबंध-सूत्र स्थापित करने और उन्हें भारत, भारतीयता तथा भारतीय संस्कृति से निरंतर जोड़े रखने में एक सशक्त माध्यम का काम करती है। इसी में वे अपनी अस्मिता की पहचान भी पाते हैं।

हिंदी में संप्रेषणीयता के ऐसे अद्भुत गुण विद्यमान हैं, जिनके कारण वह विश्व के अनेक देशों में बोली, समझी और पढ़ाई जाती है। सन् 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन सम्मिट' नामक गोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने जो भाषायी आँकड़े प्रस्तुत किए थे, उनके अनुसार विश्व भर में चीनी भाषा बोलनेवालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है, और ये दोनों ही एशियाई भाषाएँ हैं। अंग्रेजी तो तीसरे स्थान पर रह जाती है।

विश्व में हिंदी की व्यापकता और उसकी लोकप्रियता का अध्ययन करने के लिए हमें विश्व के विभिन्न देशों, और महाद्वीपों में हिंदी की स्थिति का आकलन करना होगा। यहाँ हम एशियाई देशों, विशेषकर दक्षेस (सार्क) के देशों में हिंदी की स्थिति पर विचार करेंगे। भारत एशिया का एक महान देश है। इस महाद्वीप के अन्य देशों के साथ भारत के हजारों वर्षों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भाषायी संबंध रहे हैं। बौद्ध मत के अभ्युदय के साथ ये संबंध और भी प्रगाढ़ और सुदृढ़ हुए। एशिया के अधिकांश देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ और उसी के साथ भारतीय संस्कृति, भाषा और साहित्य का भी इन देशों मे प्रवेश हुआ। संस्कृत, प्राकृत और पाली के माध्यम से विपुल संख्या में भारतीय शब्द ईरान, अफगानिस्तान, ताजिकस्तान, उज्बेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, मंगोलिया, चीन, जापान, थाईलैंड, कोरिया, मंचूरिया, लाओस, कंबोडिया, मलाया, जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया, वियतनाम और सिंगापुर आदि देशों में पहुँचे। इन्हीं के परिणामस्वरूप आज इन देशों के अनेक शब्द हिंदी में भी समान अर्थों में प्रचलित हैं। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में 60 प्रतिशत शब्द संस्कृत और पाली से ही गृहीत है, किंतु उच्चारण भिन्नता के कारण अपरिचित प्रतीत होते हैं। जैसे इंडोनेशिया की भाषा का तो नाम ही 'बहासा इंडोनेशिया' है। वहाँ की तीनों सेनाओं के समाचार-पत्र का नाम 'त्रिशक्ति' है और विमान सेवा का नाम 'गरुड़' है। थाईलैंड में इंजीनियर के लिए 'फिश्वकम' शब्द है, जो 'विश्वकर्मा' का तद्भव रूप ही है। इस प्रकार भाषायी दृष्टि से एशियाई भाषाएँ बहुत हद तक हिंदी के समीप ही हैं। यही स्थिति अफगानिस्तान और ईरान आदि देशों के संबंध में भी हैं। जहाँ भारतीय मूल के अनेक शब्दों के साथ-साथ तुर्की और अरबी के अनेक शब्दों का प्रयोग हिंदी और इन भाषाओं में समान रूप से होता है।

यहाँ हम एशियाई देशों में हिंदी के प्रयोग की संभावनाओं पर निम्न वर्गों के अधीन विचार करेंगे :

1. दक्षेस (सार्क) के देश।
2. दक्षिण-पूर्व एशिया के देश।
3. चीन, जापान और बौद्ध संस्कृति से प्रभावित देश।

4. अरब और इसलाम की संस्कृति से प्रभावित देश।

दक्षेस के देश

विश्व भाषा के रूप में हिंदी के विकास की दिशा में दक्षेस के देश जिनमें भारत के अतिरिक्त नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बँगलादेश, मालदीव और श्रीलंका सम्मिलित हैं, बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। नवंबर 1990 में मालदीव की राजधानी माले में आयोजित पाँचवें दक्षेस सम्मेलन को भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर ने हिंदी में संबोधित कर सदस्य देशों का ध्यान इस वास्तविकता की ओर आकृष्ट किया था। सभी सदस्यों ने इस नई शुरुआत का स्वागत भी किया था, क्योंकि प्रायः सभी देशों के प्रतिनिधियों को इस भाषा को समझने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। दक्षेस के देश भारत के पड़ोसी देश हैं, जिनका भारत के साथ हजारों वर्षों का सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंध रहा है। भाषायी दृष्टि से भी ये एक दूसरे के साथ निकट से जुड़े हुए हैं। सर्वप्रथम हम नेपाल को लेते हैं।

1. नेपाल – नेपाल में हिंदी समझने और बोलनेवालों की संख्या 90 प्रतिशत के लगभग है। दोनों देशों की सीमाएँ खुली हैं। लोग धार्मिक, सामाजिक और व्यवसाय की दृष्टि से एक दूसरे देश में आते-जाते रहते हैं। सन् 1960 तक नेपाल में शिक्षा का माध्यम हिंदी रहा था। आज भी माध्यमिक स्तर तक हिंदी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में एम.ए. तक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। नेपाली भाषा हिंदी के बहुत निकट है। दोनों की लिपियाँ भी देवनागरी ही हैं। तराई क्षेत्र में हिंदी उसी रूप में प्रथम भाषा है जिस रूप में बिहार और उत्तर प्रदेश में है। यहाँ हिंदी की उप भाषाएँ और बोलियाँ, जैसे मैथिली, भोजपुरी, नेवारी आदि भी बोली जाती हैं। संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन भी प्राचीन काल से होता आ रहा है। प्रत्येक विश्व हिंदी सम्मेलन में नेपाल का सरकारी प्रतिनिधि मंडल भाग लेता है। पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन में मंत्री स्तर पर यहाँ से प्रतिनिधि मंडल भेजा गया था। भारत के साधु-संत यहाँ निरंतर धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने आते रहते हैं। यहाँ से हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इनमें मुख्य हैं–चर्चा, आरोहण, हिमालिनी, साहित्यलोक आदि। हिंदी के कई लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार, यथा शंभु प्रसाद मिश्र, मोती राम भट्ट, गिरीश वल्लभ जोशी, श्रीमती उषा ठाकुर, केदार नाथ व्यथित तथा लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा आदि हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन कर रहे हैं। नेपाली भाषा भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित है। इस प्रकार नेपाल में हिंदी की स्थिति स्वाभाविक रूप में दृढ़ है। कुछ राजनीतिक कारणों से नेपाल में कभी-कभी हिंदी का विरोध भी देखने को मिलता है, किंतु वह स्थायी नहीं है। वहाँ हिंदी की स्थिति को सहजता के साथ सुदृढ़ किया जा सकता है।

2. पाकिस्तान – पाकिस्तान तो भारत का ही एक अंग था। इसलिए दोनों देशों के लोगों की बोलचाल, रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाजों में अधिक अंतर नहीं है। पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू है, जो मूल रूप से भारत की ही भाषा है। उर्दू और हिंदी में कोई विशेष अंतर नहीं है। भाषिक दृष्टि से दोनों एक ही भाषाएँ हैं। दोनों का व्याकरण प्रायः एक ही है। वाक्य-रचना, क्रिया, सर्वनाम, विशेषण और शब्द-भंडार प्रायः समान हैं। मुख्य अंतर केवल लिपियों में भिन्नता का है। उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है। फारसी, अरबी के शब्द अपेक्षाकृत हिंदी से कुछ अधिक हैं। कवि मुरादशाह ने ठीक ही कहा था :

'वह उर्दू क्या है, यह हिंदी जबाँ है,

कि जिसका कायल अब सारा जहाँ है।'

दोनों भाषाओं का आधार खड़ी बोली ही है। जब विदेशों में भारत और पाकिस्तान के लोग मिलते हैं, तो दोनों की भाषाओं में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता। पाकिस्तान रेडियो और टेलीविज़न से जो समाचार प्रसारित होते हैं, उन्हें हिंदी जाननेवाले बखूबी समझ लेते हैं। पाकिस्तान में हिंदी का विरोध दोनों देशों के बीच पनप रही परंपरागत असहिष्णुता के कारण ही है। पाकिस्तान के एक विश्वविद्यालय में तथा इस्लामाबाद के 'स्कूल ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजिज' में हिंदी के शिक्षण की व्यवस्था है। यहाँ के संघ लोक सेवा आयोग में हिंदी को भी एक विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। हिंदी के गाने और हिंदी फिल्मों की यहाँ अच्छी माँग है।

3. भूटान – भूटान भारत का पड़ोसी देश है। वहाँ के लोग बौद्ध मत के अनुयायी हैं। पाली, संस्कृत, नेपाली भाषाओं का वहाँ की भाषा पर विशेष प्रभाव है। भारत के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध होने के नाते भारतीय लोग भी उस देश की सेवा में कार्यरत हैं। इसीलिए यहाँ हिंदी का प्रचार-प्रसार सहज ही बढ़ाया जा सकता है। भूटान के पाँच स्कूलों में हिंदी के पठन-पाठन की भी व्यवस्था है।

4. बँगलादेश –बँगलादेश सन् 1947 तक भारत का ही एक अंग था। सन् 1971 में पाकिस्तान से स्वतंत्र होने के बाद यहाँ बांगला को राजभाषा बनाया गया। बाँगला भारत की भी एक भाषा है। अतः दोनों देशों के बीच भाषायी संबंध बहुत निकट हैं। अप्रैल 1995 में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की सूचना के अनुसार सन् 1995 में बँगलादेश में ढाका विश्वविद्यालय में हिंदी का चार वर्षों

का भाषा पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की योजना बनी थी। हिंदी की पढ़ाई वहाँ 'इंडियन इंटरनेशनल स्कूल' में भी होती है। बाँगला और हिंदी में अधिक अंतर नहीं है! दोनों भी भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं। दोनों देशों में राजनैतिक परिपक्वता और सौहार्दपूर्ण संबंधों पर वहाँ हिंदी का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है।

5. श्रीलंकाश्रीलंका भारत के दक्षिण में स्थित एक द्वीप है। वहाँ की राजभाषा 'सिंहली' है। यह भाषा भी आधुनिक आर्यभाषा वर्ग की एक भाषा है। बौद्ध तीर्थ यात्रियों का निरंतर भारत में आगमन होता रहता है। इसलिए भारत और श्रीलंका में बोलचाल की भाषा में पर्याप्त समीपता है। यहाँ के परीक्षा विभाग द्वारा संचालित 'उच्चतम पाठशाला प्रमाण-पत्र' परीक्षा के लिए हिंदी भी एक विषय के रूप में सम्मिलित है। 'कलोणिय' विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। यहाँ बी.ए. और एम.ए. की उपाधि हिंदी में भी प्राप्त की जा सकती है। यहाँ के टेलीविजन पर हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार भारत और श्रीलंका में हिंदी के प्रचार-प्रसार की महती संभावनाएँ हैं।

6. मालदीव – मालदीव की भाषा 'दिवेही' है, जो भारोपीय परिवार की एक भाषा है। यह भाषा भारत के एक द्वीप 'मिनिकोय' में भी बोली जाती है, जहाँ इसे 'महल' कहा जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि इस भाषा और हिंदी में अद्‌भुत समानता है, इसकी संख्याएँ बिलकुल हिंदी से मिलती-जुलती हैं। हिंदी समझने में मालदीव के लोगों को अधिक कठिनाई नहीं होती। इसीलिए श्री चंद्रशेखर जी का 'दक्षेस' सम्मेलन में भाषण हिंदी में होने पर भी कोई असुविधा नहीं हुई थी। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार द्वारा 'दिवेही-हिंदी वार्त्तालाप' पुस्तिका तैयार की गई। मुझे भी इसके सह-संपादन का श्रेय प्राप्त है।

दक्षिण-पूर्व के देश – 'दक्षेस' के देशों के अलावा दक्षिण-पूर्व के अन्य देशों में भी हिंदी की स्थिति बहुत संतोषजनक है। इन देशों को कभी 'वृहत्तर भारत' के नाम से जाना जाता था। स्पष्ट है कि इन देशों में भारतीय संस्कृति और भाषा का प्रवेश हजारों वर्ष पुराना है। लाओस, थाइलैंड, कंबोडिया और म्यांमार प्रायः बौद्ध देश हैं। सांस्कृतिक और धार्मिक समानताओं की दृष्टि से इन देशों में भारतीय परंपरा आज भी विद्यमान है। भिक्षु लोग आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। भिक्षा लेने के बाद प्रधान भिक्षु आज भी आशीर्वाद स्वरूप कहता है, 'सुखी होतु' अर्थात् 'आप सुखी रहें।' इन देशों का प्राचीन साहित्य संस्कृत और पाली से पूर्णतः प्रभावित हैं तथा 'जातक कथाएँ' जनता में लोकप्रिय हैं। इन देशों के लोग तीर्थयात्रा के लिए भारत में बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और लुंबिनी आते हैं। बोधगया तो बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए भारत में 'मक्का' की भाँति पवित्र है। इसे विश्व बौद्ध केंद्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

म्यांमार ब्रिटिश भारत का ही एक भाग रहा था। इसलिए हिंदी संपर्क भाषा के रूप में यहाँ पहले से ही प्रचलित रही है। यहाँ हिंदी में पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं। अनेक भारतीय लोग म्यांमार में आकर बस गए हैं। यहाँ की राजधानी यांगून के 'प्राची' प्रकाशन से पहले हिंदी दैनिक और साप्ताहिक पत्र 'प्राची' निकलता था। यहाँ के हिंदी साहित्य सम्मेलन की तरह से 'ब्रह्म भूमि' नामक मासिक पत्र भी निकलता था। मांडले, चोगला में हिंदी सम्मेलन और 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' वर्धा की परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं।

इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर और थाईलैंड 'आशियान' के प्रमुख देश हैं, जहाँ भारतीय मूल के लोग कई पीढ़ियों से रहते आ रहे हैं। हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी यहाँ के शिक्षाक्रम में स्थान प्राप्त है। ललित कलाओं में 'रामायण' व 'महाभारत' के आख्यानों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इंडोनेशिया की भाषा का नाम ही 'बाहासा इंडोनेशिया' है, जिसमें 18 प्रतिशत से अधिक शब्द तो संस्कृत के ही हैं। इंडोनेशिया का एक द्वीप बाली तो हिंदू-बहुल द्वीप है। इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड और हाँगकाँग में हिंदी फिल्में बहुत लोकप्रिय हैं। हाँगकाँग के बाजार में तो हिंदी बोलकर भी काम चल जाता है। थाईलैंड में हिंदी जाननेवालों की संख्या लगभग एक लाख है। इनमें से अधिकांश दूसरे विश्वयुद्ध के समय यहाँ बस गए थे। सिंगापुर आदि देशों में बसे भारतीयों ने दूसरे विश्वयुद्ध के समय नेताजी सुभाषचंद्र बोस की सहायता में बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

इंडोनेशिया का एक द्वीप बाली तो हिंदू-बहुल द्वीप है। इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड और हाँगकाँग में हिंदी फिल्में बहुत लोकप्रिय हैं। हाँगकाँग के बाजार में तो हिंदी बोलकर भी काम चल जाता है। थाईलैंड में हिंदी जाननेवालों की संख्या लगभग एक लाख है। इनमें से अधिकांश दूसरे विश्वयुद्ध के समय यहाँ बस गए थे।

चीन के साथ भारत के प्राचीन सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध रहे हैं। फाहियान और ह्वेनसांग की भारत यात्राओं के बाद ये संबंध और भी दृढ़ हुए थे। तब से निरंतर चीन और भारत में धार्मिक और सांस्कृतिक संबंध चले आ रहे हैं। चीनी सहर्ष स्वीकार करते हैं कि उनकी भाषा के निर्माण में पाणिनि के व्याकरण का विशेष योगदान है। अनेक अंतर्विरोधों के बावजूद चीन में आज भी भारत के प्रति मैत्री की आवाज उठती रहती है। चीन की ऐतिहासिक दीवार की स्वागत-शिला पर 'ओम नमो भगवते' अंकित है। प्रो. ची-श्येन द्वारा स्थापित 'भारत विद्या विभाग' में हिंदी पाठ्यक्रम निरंतर लागू है। प्रो. ची-श्येन संस्कृत के अग्रणी विद्वान् रहे हैं। उन्होंने 'वाल्मीकि रामायण' का चीनी में पद्यबद्ध अनुवाद किया है। प्रो. चिंतन हान ने 'रामचरितमानस' का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की पुस्तकों के चीनी में अनुवाद हो चुके हैं। पेइचिंग रेडियो से प्रतिदिन हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। वहाँ से 'सचित्र चीन' का हिंदी के अध्ययन की विधिवत् व्यवस्था केवल पेइचिंग विश्वविद्यालय में ही है, किंतु जहाँ-जहाँ दक्षिण-एशियाई अध्ययन संस्थान हैं, वहाँ-वहाँ हिंदी के विद्वान भी हैं, जो हिंदी पठन-पाठन को प्रोत्साहन देते हैं।

जापान और भारत के प्राचीन संबंध रहे हैं। पाली और संस्कृत भाषाएँ बौद्ध धर्म के साथ यहाँ पहुँची। हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला पचास-साठ के दशकों में आरंभ हुआ। हिंदी की सुव्यवस्थित ढंग से शिक्षा ग्रहण करनेवाले प्रथम जापानी विद्वान् स्व. प्रो. दोई थे। टोक्यो तथा ओसाका के विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा में बी.ए. तथा एम.ए. की शिक्षा दी जाती है। प्रो. दोई के अतिरिक्त प्रो. एइजो सावा ने सन् 1948 में 'हिंदी प्रवेशिका' नामक पुस्तक लिखी थी, जो यहाँ देवनागरी में लिखी गई प्रथम पुस्तक थी। डॉ. त्सुयोशि नारा, प्रो. काजुहिको माचिदा तथा तोमियो मिजोकामी हिंदी के प्रख्यात विद्वान् हैं। जापान रेडियो से भी हिंदी में प्रतिदिन दो बार प्रसारण होता है। 'ज्वालामुखी' पत्रिका में केवल जापानियों की ही हिंदी रचना प्रकाशित होती थी। यहाँ से 'अंक' पत्रिका और 'जापान भारती' का भी प्रकाशन होता है। यहाँ आठ विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई होती है। इस प्रकार जापान, जहाँ अपनी भाषा को समुचित महत्त्व देता है, वहीं हिंदी के प्रति भी पूरी तरह सजग हैं। पिछले दिनों भारत में जापानी राजदूत श्री हिरोशी हीरावायाशी ने दिल्ली के मेट्रो रेल के उद्घाटन के अवसर पर हिंदी में धाराप्रवाह भाषण देकर लोगों का मन जीत लिया था। उन्होंने कहा था कि 'अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत के व्यक्तित्व की, उसकी भाषा में अभिव्यक्ति कर भारत की मौलिक शक्ति का उद्बोध कराया जाए, नहीं तो भारत भले ही धनी हो जाए, वह उस मान का अधिकारी नहीं होगा, जो उसका व्यक्तित्व है।'

मंगोलिया में सैकड़ों वर्षों से हिंदी और संस्कृत का प्रचार होता आया है। यहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार करने के लिए 'ज्ञान वज्र' नाम के बौद्ध विद्वान् भारत से गए थे। सन् 1994 में यहाँ हिंदी कक्षाएँ शुरू हुई और मंगोलियाई लोगों ने हिंदी में रुचि लेनी आरंभ की। मंगोलिया में भारत के राजदूत का काफी सम्मानजनक स्थान है। यहाँ के विदेशी साहित्य में रूसी और हिंदी का सर्वप्रमुख स्थान है।

अरब और इसलामी देश – जहाँ तक अरब और इसलामी देशों, जैसे ईरान, इराक, अफगानिस्तान, सऊदी अरब, यू.एस.ई., कतर, ओमान, यमन और मध्य एशिया के देश, जैसे कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उज्बेकिस्तान का प्रश्न है, इन देशों के साथ भारत के व्यापारिक और मैत्रीपूर्ण संबंध रहे हैं। ईरान की भाषा फारसी है, जो भारोपीय परिवार की भाषा है, जिसके अनेक शब्द हिंदी में भी आए हैं। अफगानिस्तान में तालिबान शासन के दमन के बाद भारत के संबंध मधुर हो रहे हैं। वहाँ पहले से ही हिंदू और सिख भारतीय संस्कृति को सँजोए हुए थे। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में अनेक भारतीय लोग योगदान दे रहे हैं, मध्य एशिया के देशों और ईरान तथा अफगानिस्तान में आज भी भारत के प्रसिद्ध कवि 'अमीर खुसरो' (1253-1325 ई.) को पढ़ाया जाता है।

संयुक्त अरब अमीरात (दुबई) में तो सर्वत्र हिंदी बोली और समझी जाती है। वहाँ के बाजार का माहौल भारत जैसा ही है, जहाँ भारतीय और अरब निवासी आपस में हिंदी में ही बात करते हैं। इन देशों में भारतीय तकनीशियन, श्रमिक और व्यापारी पूरी तरह से फैले हुए हैं, जिनमें हिंदी पूर्णतः लोकप्रिय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एशियाई देशों में, विशेषकर, दक्षेस के देशों, खाड़ी के देशों और दक्षिण-पूर्व के देशों में हिंदी दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है। हमें ऐसी स्थिति का लाभ उठाते हुए हिंदी को विश्व-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे। इसमें भारत सरकार का विदेश मंत्रालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

Dr Parmanand Panchal
232A, Pocket-1, Mayur Vihar, Phase-1,
Delhi-110091 (INDIA)
Email: dr_panchal@yahoo.co.in
Tel: +91-11-22751649

22

न्यूजीलैंड में हिंदी : फीजी संदर्भ

डॉ. सतेंद्र कुमार सिंह

कुछ वर्ष पूर्व यूनेस्को की 55वीं सभा ने यह घोषित किया कि मातृभाषाओं का संरक्षण, परीक्षण एवं उन्नयन एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है।

विश्व भर में व्याप्त करोड़ों भारतीयों के लिए हिंदी एक मातृभाषा है, जो एक पीढ़ी से दूसरी में गतिमान होती रहती है। यह स्नेहपूर्वक संरक्षित की जाती है। न्यूजीलैंड की कुल जनसंख्या 40 लाख से कुछ अधिक है। यहाँ भारत, फीजी, दक्षिण अफ्रीका और अन्य स्थानों के भारतीय विरासत से घनिष्ठ संबंध रखनेवाले करीब 60 हजार भारतीय हैं। न्यूजीलैंड में शिक्षा पाठ्यक्रम में सामुदायिक भाषाओं सहित सभी भाषाओं के महत्त्व पर बल दिया गया है। सामान्यतः सामुदायिक अनिवार्यताओं के अनुसार मातृभाषा कार्यक्रमों के स्वरूप का निर्णय स्कूलों द्वारा लिया जाता है। क्योंकि न्यूजीलैंड में अपने विद्यार्थियों तथा समुदायों की जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ उनकी विभिन्न कानूनी और विनियामक आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व स्वशासित स्कूलों और कुल मिलाकर स्व-कार्यकारी अस्तित्ववाले स्कूलों का है।

भाषा उन अनिवार्य शिक्षा क्षेत्रों में से है जो विद्यार्थियों के लिए दिशा-निर्धारण करती है, लेकिन शिशु पाठशाला और बढ़ते हुए प्राथमिक विद्यालयों में भाषा परियोजनाओं में मूल जनसंख्या की भाषा माओरी सहित सामान्यतः अंग्रेजी को प्राथमिकता दी जाती है। किंतु यहाँ फीजी भारतीयों की पर्याप्त जनसंख्या है। सन् 1970 से यह संख्या निरंतर बढ़ रही है। सन् 1987 के विप्लव और सन् 2000 के राजनीतिक संकट, जब एक फीजियिन समूह द्वारा, जो भारतीय प्रभुत्ववाले शासन की समाप्ति चाह रहा था, फीजी के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री महेंद्र पाल चौधरी को उनके 30 मंत्रियों के समूह और संसदीय सहकर्मियों सहित बंधक बना लिया गया था, के बाद से यह संख्या तेजी से बढ़ी है।

हाल ही के सेना-विप्लव को मिलाकर, फीजी में 20 वर्षों में हुए चार विप्लवों ने फीजी छोड़नेवालों की संख्या में वृद्धि की है। न्यूजीलैंड कुशल कामगारों और व्यवसायी समाज के लिए एक प्रिय स्थान रहा है। इनमें से कई यहाँ से स्थानांतरित हो गए या न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया के निकटवर्ती स्थानों में उन्होंने सहायक कंपनियाँ स्थापित कर लीं।

समस्त न्यूजीलैंड में, विशेषकर फीजी भारतीयों और भारत से हाल ही में आए लोगों के मध्य, व्यापक स्तर पर हिंदी बोली जाती है। गुजराती के साथ पंजाबी पुराने बसे हुए भारतीयों की प्रधान भाषा रही है, क्योंकि भारत से प्रारंभिक प्रवास या तो गुजरात से या पंजाब से ही हुआ था। न्यूजीलैंड में सर्वत्र कई दशकों से गुजराती भाषा पढ़ाई जा रही है और विभिन्न भारतीय संगठनों द्वारा व्यापक स्तर पर प्रोत्साहित की जा रही है।

सन् 1970 के दौरान रेडियो के माध्यम से हिंदी का संवर्धन किसी भी सुव्यवस्थित रीति से पोषित की गई प्रथम घटना थी। इसके आरंभिक विकासकर्ता एक्सेस रेडियो स्कीम के सदस्य थे। ऑकलैंड और वेलिंगटन में विभिन्न समुदायों को उनकी मातृभाषा का रसास्वादन और प्रोत्साहन करने हेतु एक सामुदायिक नेटवर्क गठित किया गया।

ऑकलैंड में श्री प्रविंद्र सिंह, वेलिंगटन में श्रीमती प्रभा मिश्र और श्रीमती बाला थॉमसन इसके प्रणेताओं में से थे। इन लोगों को फीजी के भूतपूर्व प्रसारक श्री नित्यानंद सुंदर सरीखे कर्मठ वाचक का सहयोग प्राप्त हुआ, जिनकी प्रतिभा से सभी केंद्र लाभान्वित हुए। आरंभ से युवकों ने सेकेंडरी स्कूल विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत नियमित फीचरों के साथ अपने ही हिंदी कार्यक्रम विकसित किए जिनमें शोना, डेरियस, रानीजा और अनोख थे।

श्री रविनलाल द्वारा प्रचारित एक आरंभिक मासिक संदेश के साथ न्यूजीलैंड में भारतीय समाचार-पत्रों का शुभागमन हुआ, जो जिज्ञासु पाठकों तथा तेजी से बढ़ रहे भारतीय विज्ञापनों के लिए भारत, फीजी व अन्य स्थानों की खबरें लाया। हालाँकि यदा-कदा छपनेवाले हिंदी परिशिष्टों के साथ यह मुख्य रूप से अंग्रेजी में था। अन्य शुरुआती समाचार-पत्र 'इंडियन टाइम्स' था, जो स्वर्गीय स्कूली बच्चों की अनुपूरक सामग्री के साथ हिंदी के विशिष्ट लेख होते थे।

ऑकलैंड और वेलिंगटन में रामायण मंडलियों ने जहाँ कई वर्षों से प्रस्तुतियों, संगीत गोष्ठियों और बच्चों के लिए शिशु कक्षाओं के माध्यम से परिश्रमपूर्वक हिंदी के उन्नयन का कार्य किया है, वहीं कई हिंदू कृतियों से ली गई पुरा-कथाओं पर आधारित मंच नाटकों के विभिन्न मंडलियों द्वारा मंचन ने नाट्य कला बोध का संवर्धन किया है।

कौर सिंह और ए. शाह द्वारा चलाया गया। इस पत्र में स्कूली बच्चों की अनुपूरक सामग्री के साथ हिंदी के विशिष्ट लेख होते थे।

आज न्यूजीलैंड में भारतीयों के पास विविध समाचार-पत्र हैं 'द ऑकलैंड टाइम्स' एवं 'इंडियन ट्रिब्यून' और मासिक 'इंडियन न्यूजलिंक'। यह सभी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध पाक्षिक प्रकाशन हैं। यह न केवल भारतीय समुदाय बल्कि सर्वदेशी जनसमुदाय में विज्ञापकों तथा अन्य पाठकों के लिए उपलब्ध हैं, किंतु यह सभी अंग्रेजी में हैं। प्रमुख भारतीय समाचार-पत्रों के वर्तमान संपादक हैं श्री वेंकट रमन (इंडियन न्यूज लिंक), श्री शेख इसरास (ऑकलैंड टाइम्स), श्री प्रेमनाथ (इंडियन ट्रिब्यून) तथा श्री बलबिंदर सिंह (इंडो टाइम्स)।

फीजी की एक स्कूल अध्यापिका श्रीमती सुनीता नारायण ने वेलिंगटन में एक समुदाय आधारित हिंदी स्कूल विकसित किया है। जिसने नियमित कक्षाओं के लिए संबद्ध अभिभावकों और बच्चों के समूह को एक साथ आकृष्ट किया है। श्रीमती नारायण अपने समूह के स्कूल पाठ्यक्रम को विकसित करने के उत्तरदायित्व का वहन करती रही हैं।

ऑकलैंड और वेलिंगटन में रामायण मंडलियों ने जहाँ कई वर्षों से प्रस्तुतियों, संगीत गोष्ठियों और बच्चों के लिए शिशु कक्षाओं के माध्यम से परिश्रमपूर्वक हिंदी के उन्नयन का कार्य किया है, वहीं कई हिंदू कृतियों से ली गई पुरा-कथाओं पर आधारित मंच नाटकों के विभिन्न मंडलियों द्वारा मंचन ने नाट्य कला बोध का संवर्धन किया है।

श्रीमती कन्नन देवभक्त अपने नृत्य स्कूल के माध्यम से बालिकाओं में हिंदी बोध के विकास में अग्रणी थीं। यह विद्यालय उत्सुक विद्यार्थियों में विलक्षण ज्ञान संवर्धन के लिए सन् 1970 में आरंभ हुआ। आज ऐसे विद्यालय बहुतायत में हैं। उनमें से कुछ हैं : अनुराधा नृत्य विद्यालय, मोनिशा कुमार नृत्य विद्यालय। 'हिंदू हेरिटेज सेंटरद्ध ऑकलैंड में विभिन्न समुदायों को साथ लेकर चल रहा है।

ऑकलैंड और वेलिंगटन के आस-पास कई मंदिरों में हिंदी सफलतापूर्वक फल-फूल रही है। भारतीय मंदिर, राधाकृष्ण मंदिर, हरे कृष्णा मंदिर परिसर और स्वामी नारायण मंदिर, जो सभी ऑकलैंड में हैं। इन भाषाओं की शिक्षण कक्षाओं के माध्यम से भारतीय समाज की बेहतर सेवा करते हैं। इसके अलावा ये भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने हेतु पुस्तकों, टेपों और संसाधनों के लिए अंशदान करके सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। ऑकलैंड निवासी सुश्री रूपा सचदेव ने भारतीय मंदिर में हिंदी अध्ययन को उच्चस्तरीय व्यावसायिकता के साथ प्रोत्साहित किया है और उन्होंने इसे हिंदी रेडियो पर अपने काम के माध्यम से अंजाम दिया है। ठीक यही समर्पण भावना भारतीय समाज संगठन में भी व्याप्त रही है, जो हिंदी परियोजनाओं को उत्कृष्ट रीति से व्यवस्थित करता है।

प्रधानमंत्री हेलेन क्लार्क ने कुछ समय पूर्व एक ऐतिहासिक उद्घोषणा में न्यूजीलैंडवासियों को बताया कि एक भारतीय, जिनके माता-पिता फीजी से थे और दादा-परदादा भारत से फीजी आए थे, को महारानी ने राज्य-प्रमुख के रूप में नियुक्त किया है।

श्री आनंद सत्यानंद के पितामह श्री रमन फीजी में ब्रिटिश व्याख्याता के तौर पर थे एवं एक साहित्यिक व्यक्ति थे। उनकी हिंदी त्रुटिहीन थी। अपने मित्र पूरन सिंह, हिंदी रचनाकार एवं

गायक के साथ उन्होंने हिंदी भाषियों के लिए कई हितकारी कार्य संपादित किए।

श्री सत्यानंद न्यूजीलैंड में पैदा हुए, ऑकलैंड में शिक्षा पाई एवं न्यायाधीश बनने से पूर्व एक न्यायाभिकर्ता के रूप में कार्य किया। उनकी धर्मपत्नी न्यूजीलैंड से हैं और उनकी तीन संतानें हैं। गवर्नर जनरल के रूप में श्री सत्यानंद की नियुक्ति ने न्यूजीलैंड में रहनेवाले भारतीयों को असीम गौरव एवं संतोष प्रदान किया है।

वर्तमान न्यूजीलैंड भारतीय परिदृश्य प्रस्तुतियों का एक आह्लादकारी मिश्रण है। चौबीस घंटे रेडियो तराना और अपना एफ. एम. रेडियो हिंदी में विभिन्न वर्ग के लोगों का भरपूर मनोरंजन करते हैं, साथ ही अगली विशिष्ट परियोजनाओं के लिए अवसर प्रदान करते हैं। श्री रॉबर्ट खान के प्रयास रेडियो तराने को एक नई ऊँचाई पर ले जा रहे हैं और विभिन्न प्रस्तुतियों के माध्यम से हिंदी को भारतीयों के घरों में पहुँचा रहे हैं।

हिंदी पर आधारित नियमित कार्यक्रम जीवन-शैली का हिस्सा वन गए हैं। बॉलीवुड के विभिन्न कलाकार यहाँ निरंतर आते रहते हैं और सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

यहाँ एक हिंदी समाचार पत्र की जरूरत है। वर्तमान में मंदिरों और सामुदायिक संगठनों द्वारा हिंदी सूचना-पत्र निकाले जाते हैं। कई भारतीय समाचार-पत्र यहाँ हैं, किंतु वे मुख्य रूप से अंग्रेजी में हैं। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (आई.सी.सी.आर.) विद्यार्थियों और अध्यापकों, संगठनों एवं पुस्तकालयों को पुस्तकें तथा सामग्रियाँ उपलब्ध कराने में विश्वस्त सहायक रही है और इन्होंने कई स्रोत केंद्रों की स्थापना की है। आई.सी.सी.आर की सहायता से स्कूलों में हिंदी पत्रिकाओं का वितरण किया जाता है, जहाँ अध्यापकों को इसे उपलब्ध कराने के लिए प्रोत्साहन किया जाता है।

न्यूजीलैंड में प्रवासियों के वयोवृद्ध परिजनों के आगमन की वर्तमान प्रवृत्ति अकसर बच्चे और युवा कामकाजी परिवारों की सहायता करना है, तो जाहिर है कि हिंदीभाषी वयोवृद्ध जनों तक हिंदी पुस्तकों की पहुँच जरूरी है, क्योंकि सभी इंटरनेट के प्रयोग में सक्षम नहीं होते हैं।

भारतीय टेलीविजन कार्यक्रम हिंदी भाषा के उन्नयन का साधन होने के साथ-साथ रात-दि : मनोरंजन प्रदान कर रहे हैं।

समुदाय आधारित संगठन विद्यार्थियों के लिए हिंदी व्याख्यान प्रतियोगिता आयोजित करते हैं, लेकिन ये स्थानीय स्तर पर हैं और केवल उन्हें ही आकृष्ट करते हैं जो प्रतियोगिता आयोजित करनेवाले से संबद्ध हैं।

ऐसे अध्यापक जो प्ले स्कूल स्तर पर हिंदी प्रारंभ करना चाहते हैं, उनके लिए पूर्व-स्कूल की भरपूर संभावनाएँ हैं और इस प्रयास के लिए विभिन्न सरकारी अनुदान संसाधित किए जा सकते हैं।

हाल ही में, एक वैश्विक भारतीय स्कूल ने ऑकलैंड में एक शाखा आरंभ की है। जैसे-जैसे ज्ञान की सीमाएँ विस्तृत हुई हैं, न्यूजीलैंड में हिंदी के विकास के कई अवसर बने हैं। भारतीय मूल के नए बसनेवाले लोगों के लिए एक लोकप्रिय स्थान के रूप में यहाँ नई दिशाएँ हैं, जिनका स्कूल व्यवस्था के भीतर हिंदी बोध के अलावा सामुदायिक संगठनों के मध्य नेटवर्क स्थापना के सहायतार्थ अन्वेषण किया जा सकता है।

Dr Satendra Kumar Singh
5, Landsir Palace,
Auckland,
New Zealand
Tel: 0064-9-6265905, 0064-9-6265906

(**गगनांचल**, जुलाई-दिसंबर 2007 से साभार)

23

सिंगापुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के 51 वर्ष

जितेंद्र कुमार मित्तल

विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों के सामने सबसे बड़ी समस्या अपनी संस्कृति तथा भाषा को सुरक्षित बनाए रखने की है। स्कूल, कॉलेज, पड़ोस तथा दैनिक जीवन में उनके बच्चों को सतत एक विदेशी सभ्यता तथा भाषा के संपर्क में रहना पड़ता है। अकसर माता-पिता, दोनों ही नौकरी करते हैं, ऐसे में बच्चों को घर पर भी वे संस्कार नहीं मिल पाते जो उनकी अपनी संस्कृति का अटूट हिस्सा हैं। भाषा संस्कृति का वाहन है, अतः अगर उन्हें अपनी मातृभाषा पढ़ने की सुविधा उपलब्ध हो जाती है, तो वे विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से अपनी संस्कृति से संबंध बनाए रख सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर सिंगापुर की दो संस्थाएँ हिंदी सोसाइटी तथा आर्यसमाज मंदिर द्वारा संचालित डी.ए.वी. हिंदी स्कूल, हिंदी केंद्रों के माध्यम से भावी पीढ़ी को हिंदी की विधिवत् शिक्षा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के वर्तमान प्रधान आचार्य श्री ओमप्रकाश राय के अनुसार सन् 1957 में इस स्कूल ने हिंदी, अंग्रेजी तथा गणित की कक्षाएँ शुरू कीं। उस समय स्कूल में केवल 8 छात्र थे और श्री शंकर शर्मा स्कूल के आचार्य थे। इसके अलावा रेसकोर्स लेन में स्थित नेताजी हिंदी हाईस्कूल भी छात्रों को हिंदी की शिक्षा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा था। इस स्कूल में श्री वशिष्ठ राय हिंदी पढ़ाते थे, जिन्होंने सिंगापुर में हिंदी के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने न केवल इस देश में हिंदी भाषा को जीवित रखा, बल्कि 'प्यार की दुनिया' तथा 'पहली अप्रैल' नामक दो उपन्यास भी लिखे। उस समय के हिंदी के सक्रिय कार्यकर्ताओं में राजेंद्र पांडेय, छेदी शर्मा तथा उमाशंकर दुबे के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के सचिव श्री राजेश राय ने हमें बताया कि सन् 1960 के दशक में राजकपूर, शम्मी कपूर, देव आनंद, मधुबाला, नर्गिस तथा सुरैया की सफल हिंदी फिल्मों ने लोगों को हिंदी सीखने की ओर आकर्षित किया। तब अनेक मलय तथा चीनी लोग भी डी.ए.वी. हिंदी स्कूल द्वारा चलाई जानेवाली कक्षाओं में हिंदी पढ़ने आने लगे। इस स्कूल में उस समय हिंदी की शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी, और तब सरकार ने हिंदी को आधिकारिक मातृभाषा के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की थी। जहाँ तक छात्रों का सवाल था, वे सीनियर कैंब्रिज में तीसरी भाषा के रूप में हिंदी ले सकते थे। लेकिन, सरकारी मान्यता के अभाव में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य केवल कुछ उत्साही कार्यकर्ताओं तक ही सीमित रहा। तब एक युवा समूह ने कुछ समय तक 'संदेश' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया।

उस समय तक सिंगापुर में द्वितीय भाषा के रूप में केवल मलय, तमिल तथा चीनी भाषाएँ ही पढ़ाई जाती थीं। अन्य किसी भाषा को सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं थी, अतः हिंदीभाषी बच्चों को मजबूरन इनमें से ही कोई एक भाषा पढ़नी पड़ती थी। इस कमी को पूरा करने के लिए जनवरी, 1989 में सिंगापुर उत्तर भारतीय हिंदू एसोसिएशन ने आर्य समाज तथा श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर के प्रबंधकों और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण लोगों को एक कार्यवाहक समिति का निर्माण करने के लिए आमंत्रित किया। शिवकांत तिवारी को इस समिति का अध्यक्ष चुना गया। बाद में सिंगापुर गुजराती सोसाइटी, सिंगापुर सिंधी मर्चेंट एसोसिएशन तथा सिंगापुर बंगाली एसोसिएशन के सदस्य भी इस हिंदी समिति में शामिल हो गए। 4 फरवरी, 1989 को इस कार्यवाहक हिंदी समिति की पहली बैठक हुई, जिसमें हिंदी शिक्षण से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे हिंदी पढ़नेवाले छात्रों की संभावित संख्या, उन्हें हिंदी का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करने के उपाय, सिंगापुर में रहनेवाले हिंदीभाषियों की संख्या, हिंदी की शिक्षा

प्रारंभ करने के लिए आवश्यक साधन, धन तथा सुविधाओं आदि का आकलन किया गया। इनके अलावा इस बात पर भी विचार किया गया कि सिंगापुर के शिक्षा मंत्रालय के समक्ष अपना पक्ष किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए! इन सभी बातों पर विचार-विमर्श करने तथा संबंधित जानकारी एकत्र करने के लिए इस बैठक में उपसमितियाँ भी गठित की गईं।

श्री तिवारी 4 अक्तूबर, 1989 को तत्कालीन शिक्षामंत्री डॉ. टोनी तान से मिले और उन्होंने उनके समक्ष सिंगापुर में हिंदीभाषियों के बच्चों की समस्याएँ प्रस्तुत करते हुए उनके लिए हिंदी का शिक्षण शुरू करने तथा उसे द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस मुलाकात के दो दिन बाद ही डॉ. तान ने तिवारी जी की माँग को स्वीकार करते हुए सिंगापुर की संसद् में यह वक्तव्य दिया कि सभी माध्यमिक स्कूलों में 10वीं कक्षा तक बंगाली, गुजराती, पंजाबी तथा उर्दू सहित हिंदी का शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में शुरू किया जा सकता है, लेकिन मंत्रालय केवल कक्षाएँ चलाने के लिए पर्याप्त स्थान ही उपलब्ध कराएगा और शिक्षकों आदि की व्यवस्था छात्रों को स्वयं करनी होगी। इस अनुमति के बाद 21 जनवरी, 1980 को कार्यवाहक हिंदी समिति ने हिंदी की पहली कक्षाएँ सिंगापुर के बेंग वान प्राइमरी स्कूल में प्रारंभ कीं और इस प्रकार इस देश में हिंदी शिक्षण का विधिवत् श्रीगणेश हुआ। यह इस देश में रहनेवाले हिंदीभाषियों के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी।

4 अगस्त, 1990 को हिंदी सोसाइटी, सिंगापुर का पंजीकरण करवाया गया और इसके अगले दिन से ही इस संस्था ने अपनी हिंदी की कक्षाएँ भी शुरू कर दीं, जो केवल 7वीं कक्षा से 10वीं कक्षा के छात्रों के लिए ही थीं। बाद में 25 मार्च, 1991 को सरकार ने 12वीं कक्षा के छात्रों के लिए तथा 23 जुलाई, 1993 को पहली से छठी कक्षा तक के छात्रों के लिए हिंदी कक्षाएँ चलाने की अनुमति दे दी।

डॉ. तान ने तिवारी जी की माँग को स्वीकार करते हुए सिंगापुर की संसद् में यह वक्तव्य दिया कि सभी माध्यमिक स्कूलों में 10वीं कक्षा तक बंगाली, गुजराती, पंजाबी तथा उर्दू सहित हिंदी का शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में शुरू किया जा सकता है, लेकिन मंत्रालय केवल कक्षाएँ चलाने के लिए पर्याप्त स्थान ही उपलब्ध कराएगा और शिक्षकों आदि की व्यवस्था छात्रों को स्वयं करनी होगी।

प्रारंभ में 'हिंदी सोसाइटी' केवल रविवार को छुट्टी के दिन ही हिंदी की कक्षाएँ चलाती थी। रविवार को अन्य स्कूलों की छुट्टी होती थी, अतः सरकार ने उस दिन हिंदी की कक्षाएँ चलाने के लिए हिंदी सोसाइटी को तीन स्कूलों के भवनों को इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी थी। इससे बच्चों को बहुत असुविधा होती थी। उनका स्कूल का छुट्टीवाला दिन भी हिंदी पढ़ने में व्यतीत हो जाता था और उन्हें अपने माता-पिता के साथ घूमने-फिरने का अवसर नहीं मिल पाता था। मलय, चीनी तथा तमिल भाषाओं की कक्षाएँ चूँकि स्कूल के दौरान ही चलती थीं, अतः इन बच्चों के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं थी। इस समस्या के समाधान के लिए सोसायटी ने शिक्षा मंत्रालय के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि सभी स्कूलों में द्वितीय भाषा के घंटे में ही हिंदीभाषी छात्रों को हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था भी की जाए, ताकि छात्रों को रविवार अथवा शनिवार की छुट्टीवाले दिन हिंदी पढ़ने की असुविधा से बचाया जा सके। कालांतर में सरकार ने इस माँग को भी मान लिया और आज 47 स्कूलों में हिंदी सोसाइटी स्कूल के सामान्य समय में द्वितीय भाषा के घंटे के दौरान ही हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था हो चुकी है। पहले छात्र हिंदी की परीक्षा में जो अंक प्राप्त करते थे, उन्हें उनके अन्य विषयों के अंकों में जोड़ने की अनुमति भी दे दी। स्कूलों में ही हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था के साथ-साथ छुट्टी के दिन चलनेवाली हिंदी की कक्षाएँ भी बंद नहीं की गई हैं। इसका कारण यह है कि जिन स्कूलों में हिंदी पढ़नेवाले छात्रों की संख्या बहुत कम है, वहाँ हिंदी की कक्षाओं की व्यवस्था नहीं की गई है और इन छात्रों को अभी भी छुट्टीवाले दिन चलने वाली कक्षाओं में जाना पड़ता है।

सोसाइटी को हिंदी पढ़ाने के लिए सरकार से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती। छुट्टी के दिन हिंदी की कक्षा चलाने के लिए शिक्षा मंत्रालय ने सरकारी स्कूलों की इमारतें जरूर उपलब्ध कराई हैं। सोसाइटी को हिंदी शिक्षकों की कमी कभी महसूस नहीं हुई। इसका कारण

यह है कि अनेक इंजीनियर, डॉक्टर तथा अन्य क्षेत्रों में काम करनेवाले लोग सिंगापुर में आकर बस गए हैं। उनकी शिक्षित पत्नियों के सामने अपना खाली समय बिताने की समस्या थी। उन्हीं में से कुछ को इन कक्षाओं को चलाने के लिए योग्य शिक्षिकाओं के रूप में चुना गया है। हिंदी पढ़ाने से उनकी आमदनी तो होती ही है, साथ ही उन्हें अपनी घरेलू जिंदगी से थोड़े समय के लिए अलग हटकर समाज के लिए कुछ उपयोगी कार्य करने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है।

'हिंदी सोसाइटी' के अध्यक्ष श्री शिवकांत तिवारी हमें बताते हैं कि द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़नेवाले छात्र किसी भी मायने में अपने चीनी, मलय अथवा तमिल सहपाठियों से पीछे नहीं हैं। इनमें से अनेक छात्र अपनी-अपनी परीक्षाओं में विशेष योग्यता प्राप्त करने में सफल रहे हैं। सन् 2008 से एक नया प्राइमरी हिंदी पाठ्यक्रम लागू किया गया है, जिसके अंतर्गत प्राइमरी स्कूलों में हिंदी पढ़ाने के लिए नई पाठ्य सामग्री तैयार करने की चुनौती थी। हिंदी सेंटर के शिक्षकों तथा शिक्षिकाओं ने अपनी इस नई चुनौती को बखूबी निभाया है। पिछले दो साल से सोसाइटी प्री-प्राइमरी हिंदी कोर्स को भी चला रही है, जिसका हिंदीभाषी लोगों ने पूरे उत्साह से स्वागत किया है। इसके अतिरिक्त वयस्कों को हिंदी पढ़ाने के लिए अलग से कक्षाएँ चलाई जाती हैं। हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अनेक चीनी तथा मलय इन कक्षाओं में हिंदी पढ़ने आते हैं। अनेक भारतीय मूल के इंजीनियर, डॉक्टर आदि भी, जो यहाँ पैदा हुए हैं और जिन्हें हिंदी नहीं आती, यहाँ हिंदी सीखते हैं।

'हिंदी सोसाइटी' एक वार्षिक पत्रिका 'साधना' का प्रकाशन भी करती है, जिसमें हिंदी पढ़नेवाले छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त शिक्षकों की रचनाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इस प्रकार यह पत्रिका अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों को हिंदी में सृजन करने के लिए भी प्रोत्साहित करती है। अकसर हिंदी वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन भी होता रहता है। संस्था की अपनी एक वेबसाइट (हिंदी सोसाइटी.कॉम) भी है। हिंदी के शिक्षण के अतिरिक्त होली, रक्षाबंधन और दीपावली आदि त्योहार भी सोसाइटी सामूहिक रूप से मनाती है और इन अवसरों पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है। संस्था का अपना एक नाट्य समूह भी है, जिसमें पूर्व तथा वर्तमान छात्रों के साथ-साथ सिंगापुर के अन्य हिंदीभाषी भी भाग लेते हैं। सिंगापुर में हर साल एक नाटक मेले का आयोजन किया जाता है, जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं के साथ मलय तथा चीनी भाषाओं के नाटकों का मंचन भी किया जाता है।

हिंदी को सरकारी मान्यता प्राप्त हो जाने के बाद आर्य समाज द्वारा संचालित 'डी.ए.वी. हिंदी स्कूल' भी इस काम में पीछे नहीं रहा। इसके अंतर्गत आज हिंदी की 70 से अधिक कक्षाएँ चलाई जाती हैं, जिनमें 60 के लगभग शिक्षक-शिक्षिकाएँ अध्यापन कार्य कर रही हैं। आज इसकी विभिन्न कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या 300 से बढ़कर 1800 तक पहुँच गई है। 'हिंदी सोसाइटी' की ही तरह यह संस्था भी अनेक वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन तो करती ही है, साथ ही यह त्योहारों का सामूहिक आयोजन तथा विशेष अवसरों पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी करती है। इसकी वार्षिक पत्रिका का नाम है 'दृष्टि' तथा इसकी अपनी वेबसाइट (डीएवीहिंदीस्कूल.एड्यू.एसजी) भी है।

उक्त दोनों संस्थाओं के अतिरिक्त सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में डॉ. पीटर जेराल्ड फ्रीडलैंडर के नेतृत्व में हिंदी की कुछ विशेष कक्षाएँ चलाई जाती हैं। सन् 1977 में डॉ. फ्रीडलैंडर पहली बार भारत गए और उस समय उन्हें लगा कि भारतीय सभ्यता को अच्छी तरह से समझने के लिए किसी भारतीय भाषा को सीखना बहुत जरूरी है। उन्होंने हिंदी को चुना। हिंदी ही उन्होंने क्यों चुनी, इस विषय में वे बताते हैं कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है और वह सबसे ज्यादा भारतीय राज्यों में बोली जाती है। इस बात को तीस साल बीत गए और अब जब लोग मुझसे पूछते हैं कि हिंदी क्यों अपनानी चाहिए, तो मैं उनसे यही कहता हूँ कि अगर आप भारत को गहराई से समझना चाहते हैं, तो सिर्फ अंग्रेजी भाषा जानने से यह नहीं हो सकता। हिंदी सीखकर आप भारतीय संस्कृति के मर्म तक पहुँच सकते हैं।

डॉ. फ्रीडलैंडर का जन्म इंग्लैंड में हुआ और सन् 1977 से सन् 1982 के दौरान उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों का भ्रमण किया। अपने इस प्रवास के दौरान उन्होंने न सिर्फ हिंदी का, वरन् भारतीय संस्कृति तथा समाज का भी गहन अध्ययन किया। सन् 1983 से सन् 1991 तक उन्होंने लंदन के 'द स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्ट्डीज' में विधिवत् हिंदी भाषा तथा साहित्य और दक्षिण एशिया की धार्मिक परंपराओं का अध्ययन

किया। इसके बाद उन्होंने सन् 1991 से सन् 1996 तक 'वैलकम इंस्टीट्यूट फॉर द हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन' में काम किया। यहाँ अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास तथा हिंदी चिकित्सा साहित्य पर कुछ शोध कार्य भी किया। उन्होंने सन् 1990 के दशक के दौरान बौद्धगया में एंटिओच बौद्ध अध्ययन कार्यक्रम के अंतर्गत भी कार्य किया और तभी दक्षिण एशिया में धर्म तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशों के पारस्परिक संबंध पर शोध कार्य करने में उनकी रुचि पैदा हुई। सन् 1997 से सन् 2008 तक उन्होंने मेलबर्न (ऑस्ट्रेलिया) के 'ला त्रोब' विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा तथा बौद्ध अध्ययन कार्यक्रम का न सिर्फ विकास किया, वरन् उसका अध्यापन कार्य भी किया। संप्रति वे सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। उनके अनेक शोधग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

सिंगापुर में हिंदी के कोई अन्य विशेष लेखक तो हमें नहीं मिले, लेकिन इस खोजबीन के दौरान संयोगवश हमारी मुलाकात श्रीमती शार्दूला नोगजा (झा) से हुई, जो हिंदी में कविताएँ लिखती हैं। उनका जन्म मधुबनी, बिहार में हुआ। स्वयं उन्हीं के शब्दों में वे 'पेशे से इंजीनियर, लेकिन मन से कवयित्री' हैं।

सिंगापुर में हिंदी के कोई अन्य विशेष लेखक तो हमें नहीं मिले, लेकिन इस खोजबीन के दौरान संयोगवश हमारी मुलाकात श्रीमती शार्दूला नोगजा (झा) से हुई, जो हिंदी में कविताएँ लिखती हैं। उनका जन्म मधुबनी, बिहार में हुआ। स्वयं उन्हीं के शब्दों में वे 'पेशे से इंजीनियर, लेकिन मन से कवयित्री' हैं। उनका अधिकांश जीवन कोटा (राजस्थान) में बीता, जहाँ से उन्होंने अपनी इंजीनियरिंग (विद्युतीय) की डिग्री हासिल की। इंजीनियर के रूप में उन्होंने अपनी पहली नौकरी भी वहीं की। उन्होंने अपनी पहली कविता उस समय लिखी थी, जब वे पाँचवीं कक्षा की छात्रा थीं। कविता लिखने की प्रेरणा उन्हें अपनी माँ, बहनों, अपने हिंदी के अध्यापक श्रिंगी सर से मिली। स्कूल-कॉलेज में उन्होंने खूब लिखा। वहाँ की पत्रिकाओं का संपादन किया और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं तथा स्थानीय कवि-सम्मेलनों में भी भाग लिया। इधर शादी (1955) के बाद काफी समय तक कुछ खास नहीं लिखा। उन्होंने सन् 1999 में फिर से लिखना शुरू किया, उनमें से कुछ कविताएँ 'अनुभूति' नामक ई-पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं।

सन् 2000 से सन् 2004 तक शार्दूला जी जर्मनी में रहीं, जहाँ से उन्होंने कंप्यूटेशनल अभियांत्रिकी में एम.एस. किया। वे पिछले कुछ सालों से सिंगापुर में कार्यरत हैं। वे ई-कविता याहू समूह की एक सक्रिय सदस्य हैं। इस समूह के देश-विदेश के हिंदी कवियों से उन्हें अच्छा सहयोग तथा प्रोत्साहन मिल रहा है। वे हिंदी गीतों के कुशल-शिल्पी, वाशिंगटन निवासी कवि राकेश खंडेलवाल के लेखन से बेहद प्रभावित हैं।

हिंदी फिल्मों ने भी सिंगापुर में हिंदी के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया है। मैडिलिन चिओंग एक अकाउंटेंट हैं और हिंदी फिल्में देखना उनका प्रिय शौक है। बरसों से वे हिंदी फिल्में देखती आ रही हैं और हर बार सिनेमाघर जाते समय वे सोचा करती थीं कि अगर वे हिंदी भाषा समझ पातीं तो कितना अच्छा होता! तब उन्हें फिल्म को समझने के लिए अंग्रेजी सबटाइटिल्स का सहारा नहीं लेना पड़ता और वे उसका आनंद और अच्छी तरह से ले सकती थीं। और बस इसी भावना से प्रेरित होकर एक दिन चिओंग ने सिंगापुर की हिंदी सोसाइटी द्वारा चलाई जानेवाली वयस्कों की कक्षा में प्रवेश ले लिया।

33 वर्षीया चिओंग बताती हैं कि अब हिंदी की विधिवत् पढ़ाई करने के बाद न केवल हिंदी फिल्में ही उनकी समझ में पूरी तरह से आने लगी हैं, वरन् अब वे फिल्म के हिंदी गानों का भी मजा लेने लगी हैं।

अब वे ऑफिस से लौटने के बाद हर दिन वी.सी.डी. किराए पर लाकर घर पर ही हिंदी फिल्म देखती हैं और अब मनोरंजन के उनके इस प्रिय साधन का आनंद उनका पूरा परिवार उठाने लगा है।

वे सिंगापुर के उन अनेक चीनी तथा मलय लोगों में से एक हैं, जो हिंदी सोसाइटी, सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अथवा डी.ए.वी. हिंदी स्कूल द्वारा चलाई जानेवाली विशेष हिंदी कक्षाओं

में हिंदी भाषा सीख रहे हैं। वयस्कों की हर कक्षा में लगभग 10 छात्र होते हैं। हिंदी सोसाइटी इन लोगों के लिए तीन प्रकार की कक्षाएँ चलाती है प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्चस्तरीय। प्रारंभिक कक्षा में उन्हें हिंदी बोलना, समझना तथा लिखना सिखाया जाता है। हिंदी सोसाइटी की सेवा-भाव से चलाई जानेवाली इन कक्षाओं के अतिरिक्त यहाँ एक 'पुन्निया भाषा केंद्र' नामक संस्थान भी है, जो व्यापारिक रूप से चलाया जाता है और जहाँ आप एक मोटी फीस देकर हिंदी की पढ़ाई कर सकते हैं।

सिंगापुर में तमिल फिल्मों के अतिरिक्त लगभग सभी नई हिंदी फिल्में सिनेमाघरों में दिखाई जाती हैं, जो यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं। इसके अलावा टी.वी. चैनलों पर भी अकसर भारतीय फिल्में दिखाई जाती हैं। इन फिल्मों ने चीनियों तथा मलयभाषियों में भी हिंदी को लोकप्रिय बना दिया है। लेकिन, केवल फिल्मों के कारण ही विदेशी लोग हिंदी भाषा की ओर आकर्षित नहीं हो रहे हैं। जिस प्रकार चीन से व्यापार करने के लिए दुनिया भर के व्यापारी तथा उद्योगपति चीनी भाषा सीख रहे हैं, उसी प्रकार भारत में अपना व्यापार जमाने के लिए भी कुछ लोग हिंदी की ओर आकर्षित हुए हैं। भारत तथा सिंगापुर के बीच हर साल खरबों सिंगापुर डॉलर का व्यापार होता है और भविष्य में इस व्यापार के और बढ़ने की संभावना है। इसी कारण 47 वर्षीय विनसेंट सुब्रमणियम ने, जो सिंगापुर के एक तमिलभाषी नागरिक हैं, हिंदी सीखना शुरू किया।

हिंदी सोसाइटी के अध्यक्ष श्री शिवकांत तिवारी ने हमें बताया कि ''तीन तरह के लोग सिंगापुर में हिंदी पढ़ते हैं एक तो वे हैं जो एक नई भाषा सीखने की भावना से प्रेरित होकर हमारी कक्षाओं में आते हैं दूसरे प्रकार के लोग वे हैं जो बॉलीवुड की फिल्मों का मजा लेने के लिए हिंदी सीख रहे हैं और तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो भारत से अपना व्यापार बढ़ाना चाहते हैं, और इसीलिए हिंदी सीखना जरूरी समझते हैं। वयस्कों के लिए चलाई जानेवाली हमारी कक्षाओं में 20 साल की उम्र से लेकर 70 साल के सेवानिवृत्त लोग तक शामिल हैं।''

ग्वेन सिन ने हिंदी का अध्ययन इसलिए किया है क्योंकि उन्हें हर उस चीज से प्यार है जो भारतीय है। पेशे से फोटोग्राफर ग्वेन पिछले अनेक वर्षों से छायांकन के लिए भारत जाती रही हैं। ग्वेन का कहना है कि ''भारतीय संस्कृति बहुत समृद्ध तथा विविध रंगोंवाली है। भारत की फिल्मों में भी उच्च नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन किया जाता है। एक चीनी होने के नाते मैं इन नैतिक मूल्यों को अपने जीवन से जोड़कर देख सकती हूँ।''

Jitendra Kumar Mittal
3/79, New M.I.G. Colony
Bandra East
Mumbai-400 051 (INDIA)
Email : fabindia@hotmail.com

लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए, क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा जिसमें अच्छे-अच्छे विद्वान् जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा।

–महात्मा गांधी

बेलारूस और भारत की सहयात्रा में नया पहलू

डॉ. मिहईल मिहायलोव

बेलारूस एक नया स्लाव गणतंत्र है, जो सोवियत संघ के पतन के बाद बनाया गया था। बेलारूस यूरोप के केंद्र में स्थित है, पूर्व में यह रूस के साथ संपर्क में आता है, पश्चिम में पोलैंड दक्षिण में यूक्रेन और उत्तर-पश्चिम में लिथुआनिया के साथ। पिछली सदी में लगभग सभी भारत-तत्त्व-संबंधी अध्ययन मास्को और दो-तीन अन्य रूसी शहरों में केंद्रित थे। आज से करीब पच्चीस वर्ष पहले जब मैंने वैदिक और लौकिक संस्कृत, हिंदी आदि भारतीय भाषाओं का अध्ययन करना आरंभ किया तो इसके लिए कोई पुस्तक ढूँढ़ने की कोशिश की। लेकिन उस समय मिन्स्क में भारतीय भाषाओं में ऐसी कोई किताब उपलब्ध नहीं थी। इसके लिए मैंने न केवल मास्को राष्ट्रीय पुस्तकालय, बल्कि मास्को के लगभग सभी पुस्तक विक्रेताओं व प्रकाशकों से भी बात की। पता लगा कि मास्को में 'संस्कृत-रूसी शब्दकोश' शीर्षक एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, लेकिन तब वह पुस्तक अनुपलब्ध हो चुकी थी।

अब स्थिति रूस में थोड़ी-बहुत बदल चुकी है। आज, इस नई सदी में रूस और अन्य पार्श्ववर्ती देशों में पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक हिंदी का अध्ययन और अध्यापन हो रहा है। किंतु बेलारूसी विभिन्न विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं का पाठ्यक्रम नहीं शामिल है।

सोवियत संघ में भारत देश के प्राचीन ग्रंथों और आधुनिक साहित्य का, जैसे वेद, महाभारत, रामायण, बृहतकथा, पंचतंत्र, रवींद्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, निराला की कृतियों का बड़ी संख्या में रूसी भाषा में अनुवाद किया गया था। रूसी और बेलारूसी पाठक भी इस समय हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा के वाहक लेखकों यशपाल, अमृतलाल नागर, भीष्म साहनी, कवि निराला, पंत, दिनकर, मुक्तिबोध, सुमन आदि के नामों से भली-भाँति परिचित हैं।

भारत और सब स्लाव देशों के लोगों की प्राचीन काल से लेकर अब तक एक-दूसरे के देश की संस्कृति, सभ्यता व भाषाओं में गहरी रुचि रही है। इसका एक गहरा कारण है।

एक हजार वर्ष पहले पुरानी स्लाव भाषा संस्कृत भाषा के सदृश थी। हजारों स्लाव शब्द और व्याकरण के रूप अभी तक संस्कृत के तत्सम या तद्भव रूप को रखते हैं। उदाहरणार्थ, 'स्लाव' शब्द संस्कृत 'श्रावः' (श्रवण) और 'श्रवणः' (कीर्ति, ख्याति, धन, संपत्ति, वेद, श्रवण, शब्द) से उद्गम लेता है। रूसी शब्द 'स्लाव्यनिन्' या 'स्लोवक' ('स्लाव' यानी 'विख्यात', 'शब्द-चातुर', 'भला') संस्कृत शब्द 'श्रावकः' (श्रोता, विद्यार्थी, बौद्ध संत) से निकला है । सैकड़ों स्लाव नदियों के नाम भारतीय नदियों या तीर्थों के नाम के बहुत समान हैं। आप रूसी मैदान पर आसानी से ऐसे महाभारत में उल्लिखित नाम पा सकते हैं, जैसे असिता (यमुना), यमुना, कावेरी, अगस्त्य, अक्ष, आपगा, आर्चिक, अहल्या, मोक्ष, काम, वाडव, वामन, वंश, वाराहा, वरदान, केदार, कुमारः (सिंधु), कुशिक, मानुष, परिप्लव, प्लाक्ष, रामा, सीता, सोमा, सुतीर्था, तूष्णी, उर्वशी, उशनस्, हुब्जा, शंखिनी, शोण, शिवा, यक्षिणी, इंद्र, रस, प्रौण, दनुः, द्रुता आदि।

कुछ संस्कृत शब्दों में रूसी व्याकरण के नियमों के तहत परिवर्तन आया है। भारत की तरह एक हजार वर्ष पहले मुसलिम आक्रमणकारी रूस में आए। जब भारत में अंग्रेज आए, लगभग उसी समय रूस में जर्मन आए। उन्होंने रूस को अपना उपनिवेश बना लिया और हर तरह से उसे प्रभावित किया। इस पूरी प्रक्रिया में यानी टकराहट, दबाव और संघर्ष से गुजरते हुए रूस ने दूसरे समाजों और संस्कृतियों से बहुत-कुछ ग्रहण किया। दूसरी ओर इस प्रक्रिया में भारतीय समाज की भाँति रूस की संस्कृति और

रूस की भाषाएँ भी बुरी तरह से प्रभावित हुईं।

मैं एक छोटे शहर गोर्की में रहता हूँ । गोर्की संस्कृत में गिरिः है। मेरा शहर ओर्ष शहर के नजदीक है जो आर्षित्सा नदी के किनारे पर स्थित है। एक 'ऋष' (संस्कृत में 'ऋषि') नाम के महापुरुष ने ओर्ष की नींव रख दी थी। आधुनिक रूसी भाषा में ये नाम दुर्बोध हैं, किंतु संस्कृत में ये सब नाम स्पष्ट हैं। 'आर्ष' शब्द का अर्थ संस्कृत में 'ऋषिकृत', 'ऋषिप्रयुक्त', 'ऋषियों या बड़े विद्वानों द्वारा किया गया' है।

मेरी दृढ़ धारणा है कि भारतीय प्रवासी कई हजार वर्ष पहले सिंधु के शहरों को छोड़कर रूसी मैदान पर जाकर बसने लगे थे। बाद में यह प्रवासन पूरे यूरोप में फैल गया। जैसे हिंदी को अरबी-फारसी परंपराओं के अतिरिक्त अंग्रेजी ने भी बेहद प्रभावित किया, वैसे ही रूसी में तुर्की-फारसी परंपराओं के अतिरिक्त जर्मन-फ्रांसीसी ने भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिया। इस प्रकार, हमारी आधुनिक भाषाएँ यानी रूसी और हिंदी संस्कृत से बहुत प्रभावित थीं, लेकिन समय के साथ काफी अंतर आ गया।

यह भी कहना उचित होगा कि प्राचीन भारतीय आप्रवासी रूस और यूरोप में अपने ज्ञान और विज्ञान, कौशल और कला, वेद-विद्याएँ, साहित्य और भाषाओं को लाए थे। हमारा बीसवर्षीय वेदों का अनुसंधान एक परिष्कृत कंप्यूटर प्रौद्योगिकी में उपलब्ध है, जो मेरी पुस्तक 'वेदों की कुंजी' (M.I. Mikhailov, N.S. Mikhailov, Key to the Vedas, Minsk, 2005) में वर्णित है। हमने इस पुस्तक में सिंधु की लिपि के गूढ़ाक्षरों को स्पष्ट किया है, जिसका संबंध वैदिक गणित और खगोल विज्ञान, वैदिक संवत कैलेंडर के साथ पाया गया। पुराने चावलों में मजा होता है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि स्लाव की पुरानी पंचाँग की लिपि, जो यूरोप में सबसे प्राचीनतम है, सिंधु की लिपि के गूढ़ाक्षरों पर आधारित थी। स्लाव का पुराना धर्म और प्राचीन गाथाएँ वैदिक कही जाती है, क्योंकि स्लाव देवता वैदिक थे। उदाहरण के लिए, वोल्गा के तट पर हाल ही में भगवान् चंद्र की प्राचीन भारतीय प्रतिमा पाई गई। कहने की जरूरत नहीं है कि वेदों में चंद्र एक छोटा देवता नहीं, बल्कि सबसे महत्त्वपूर्ण और महान् देवता है जिसके नाम अग्निः, इंद्र, शिव आदि थे। इंद्र का नाम सौ से अधिक बार साइबेरिया और रूस में मिलता है। 'अग्निः' रूसी भाषा में 'अगोन' है।

मेरी दृढ़ धारणा है कि भारतीय प्रवासी कई हजार वर्ष पहले सिंधु के शहरों को छोड़कर रूसी मैदान पर जाकर बसने लगे थे। बाद में यह प्रवासन पूरे यूरोप में फैल गया। जैसे हिंदी को अरबी-फारसी परंपराओं के अतिरिक्त अंग्रेजी ने भी बेहद प्रभावित किया, वैसे ही रूसी में तुर्की-फारसी परंपराओं के अतिरिक्त जर्मन-फ्रांसीसी ने भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिया।

लेकिन काल परिवर्तनशील है। ये सब अतीत की बातें पूरी तरह भुला दी गई हैं।

दूसरी ओर आज बेलारूस और भारत के बीच सीधा पारस्परिक संबंध सुदृढ़ होता जा रहा है और जीवन के सभी क्षेत्रों में आपसी सहयोग बढ़ता जा रहा है। जनतांत्रिक आदर्शों और परस्पर सहयोग के बल पर भारतीय-बेलारूसी मानवीय संस्कृति को नई दिशा देने के लिए हमें भारतीय समाज और हिंदी सहित बहुत सी भारतीय भाषाओं का गहरा अध्ययन करना है। यह विदित है कि भारतीय संघ की राजभाषा घोषित हो जाने के बाद हिंदी शनैः शनैः अखिल भारतीय रूप ग्रहण कर रही है। विश्व में संख्या की दृष्टि से हिंदी भाषा-भाषियों का स्थान तीसरा माना जाता है।

यह अफसोस की बात है कि बेलारूसी सरकार हिंदी में अभी तक गहरी रुचि नहीं ले रही है। आज बेलारूस में रूस, पोलैंद, लिथुआनिया या यूक्रैन की तरह प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का अध्ययन और अध्यापन नहीं हो रहा है। हालाँकि, यहाँ कुछ सकारात्मक बातें हैं।

मुझे सन् 1997 और 2001 में, बंगलौर और दिल्ली में आयोजित विश्व संस्कृत सम्मेलनों में भाग लेने का मौका मिला। बंगलौर के सम्मेलन के बाद मैंने मुंबई भारतीय विद्या भवन के पुस्तकालय में दो सप्ताह के दौरान रामायण का अध्ययन किया था। प्रो. स.आ. उपाध्याय ने मुझे यह सुझाव दिया कि हिंदी का बेलारूस में अध्यापन किया जाना चाहिए।

आज का युग संचार क्रांति और कंप्यूटर का युग है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपना कार्य हिंदी में कंप्यूटर पर करें। दो-तीन वर्ष पहले भारतीय दूतावास की मदद से और पूर्व उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत जी के सुझाव से मैंने गोर्की में बेलारूसी ऑनलाइन हिंदी वेब सर्वर आयोजित किया था। इस सर्वर पर अब करीब पचास विविध सामग्री के वेबसाइट हैं। इस वेब सर्वर के माध्यम से हर साल हजारों रूसीभाषी छात्रा-छात्राएँ हिंदी और भारतीय इतिहास और संस्कृति की कोई-न-कोई जानकारी प्राप्त कर रहे हैं और सौ से अधिक ऑनलाइन विद्यार्थी प्राथमिक स्तर से लेकर हिंदी का अध्ययन करते हैं।

हम अपने यहाँ हिंदी, संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन देने की पूरी कोशिश कर रहे हैं, जो हमारे दोनों देशों के बीच प्रभावपूर्ण परस्पर सहयोग के लिए आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा हिंदी वेब सर्वर न केवल बेलारूस में, बल्कि रूस और उसके पड़ोसी देशों में भी हिंदी भाषा और साहित्य के कंप्यूटर के माध्यम से अध्ययन और उसके प्रचार-प्रसार को और व्यापक बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इस वेब सर्वर के माध्यम से आम बेलारूसी या रूसी नागरिक ही नहीं, बल्कि मिन्स्क, मास्को, कीएव आदि बड़े शहरों के विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे छात्र-छात्राएँ भी हिंदी सीखने आते हैं! हिंदी-प्रेमियों को दृष्टि में रखकर गोर्की ऑनलाइन हिंदी स्कूल में मैंने सन् 2007 में हिंदी व्याकरण का अनुवाद और ऑनलाइन प्रकाशन किया था, जिसे सन् 2009 में मुद्रित किया जाएगा।

हमारे बेलारूसी ऑनलाइन हिंदी विद्यालय की दो छात्राएँ येलेना ग्लूसकिना और येलेना अस्किर्का भारत के आगरा स्थित हिंदी अंतरराष्ट्रीय विद्यालय में पढ़ चुकी हैं। एक छात्रा जिसका नाम है आन्न स्तेपनोवा और जो केमोरोवो में रूसी साइबेरिया में रहती है, मेरे साथ प्रेमचंद की कहानी 'अमृत' का तथा हिंदी काव्यों और व्याकरण के अध्यायों का रूसी भाषा में अनुवाद कर रही हैं। हिंदी व्याकरण के अनुवाद में आन्न स्तेपनोवा के अतिरिक्त येलेना अस्किर्का और नस्त्या मोज्गोवा भाग लेती हैं! येलेना अस्किर्का और येलेना सीपच योग की शिक्षा भी देती हैं।

अब मेरी इच्छा यह है कि एक सार्वजनिक ऑनलाइन भारत-तत्त्व-संबंधी पुस्तकालय का निर्माण किया जाए। एक छात्रा, जिसका नाम आन्न मनको है, जो मिन्स्क में एक पुस्तकालय में काम करती है, इस ऑनलाइन पुस्तकालय को बनाने में मदद देने के लिए तैयार है।

बेलारूस, यूक्रेन और रूस में दो वर्ष के दौरान हिंदी के प्रचार-प्रसार में हमारा ऑनलाइन हिंदी वेब सर्वर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मुझे विश्वास है कि यह वेब सर्वर बेलारूस, रूस, यूक्रेन और भारत के नागरिकों के बीच मैत्री व आत्मीयता को और अधिक बढ़ाने में सफल होगा और मेरी इच्छा है कि यह ऑनलाइन वेब सर्वर हमारे दो देशों के बीच चल रही संयुक्त ऐतिहासिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक परियोजनाओं को सुगम बनाने में अपना सहयोग दे।

यदि भारतीय हिंदी प्रचारक संस्थाएँ भविष्य में कोई-न-कोई मदद देने की कृपा करेंगी तो यह हिंदी वेब सर्वर सबसे उपयोगी और सफल होगा और एक रोज बेलारूसी भारत-तत्त्व-संबंधी संस्था बन जाएगा।

बेलारूस में अब तक हिंदी, संस्कृत या आदि भारतीय भाषाओं का अध्ययन (जैसे बंगाली, गुजरात, उड़िया, पंजाबी, मराठी, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम) सिर्फ उत्साही लोगों के प्रयासों से चल रहा है। मिन्स्क में भारत के दूतावास में एक हिंदी प्रशिक्षण केंद्र उन छात्राओं के लिए मौजूद है जो भारतीय नृत्य का अध्ययन करती हैं। इन कलाकारों की टुकड़ी का नाम 'सपना' है और इसकी निर्देशिका ऐलेना सीपच हैं, जिन्होंने भारत में तीन वर्ष के दौरान कत्थक नृत्य, योग और हिंदी का अध्ययन किया।

एक वर्ष के दौरान भारत के पूर्व राजदूत श्री तरसेम सिंह जी की पत्नी मिन्स्क के स्टेट विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाती थीं। हालाँकि, विश्वविद्यालय के निदेशक ने एक अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी लागू करने से इनकार कर दिया। इसलिए अभी तक हिंदी का अध्ययन केवल निजी क्षेत्र में प्रयोग के लिए किया जा सकता है।

भारतीय विद्या की ओर बेलारूसी जनता का ध्यान आकर्षित कराने के लिए मैंने एक छोटे से साक्षात्कार में टेलीविजन पर बात की। इसके अलावा बीस वर्षों से भारतीय इतिहास और साहित्य पर मिन्स्क में कई विश्वविद्यालयों में भाषण देता हूँ।

हमारे स्कूल का एक महत्त्वपूर्ण कार्य अनुवाद और प्रकाशन गतिविधियाँ हैं। हमारे छात्र-छात्राएँ इस काम में शामिल होने में

रुचि रखते हैं। कई वर्ष पहले मैंने श्रीमती मधु माधुरी कृत एक हिंदी सामाजिक उपन्यास का रूसी में अनुवाद किया, जो 'विश्व साहित्य' जर्नल में प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष एक बेलारूसी पत्रिका में मैंने एक अन्य हिंदी कहानी का अनुवाद प्रकाशित किया है।

इस वर्ष चाहे कितनी भी कठिनाई क्यों न हो, मैं कोई दस पुस्तकें भारतीय संस्कृति के बारे में प्रकाशित करने की तैयारी कर रहा हूँ। उनमें से एक हिंदी व्याकरण पर है, एक किताब जो छंद-शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार वैदिक मंत्रों और वैदिक पांडुलिपि का गूढ़ रहस्य बताती है, एक किताब भारत से प्राचीनतम भारतीय स्लाव के पलायन, रूस और यूरोप में उनका पुनर्वास बताती है, क्षेमेंद्र का काव्य और वाल्मीकि-रामायण के रूसी अनुवाद तथा कई पुस्तकें प्राचीन भारत के गणित, खगोल, दर्शन, योग के इतिहास के बारे में हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि यह काम भी सरकारी सहायता के बिना अपने बलबूते पर किया जाता है। सच-सच कहूँ तो भारतीय विद्वानों और लेखकों से मैं भी, मेरे रूसी सहकर्मी की भाँति ईर्ष्या करने लगता हूँ क्योंकि उनके यहाँ सत्ता में बैठे राजनेता उनकी बात को समझते हैं, उनका समर्थन करते हैं और उनकी रचनाओं का ऊँचा मूल्यांकन करते हैं। यह खेद है कि हमारे यहाँ प्रायः ऐसा नहीं होता कि हमारे राजनेताओं की नजर हम तक पहुँच जाए।

इसलिए मैं सब भारतीय मित्रों को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने हमें इस वेब सर्वर पर हमारा ऑनलाइन स्कूल यानी एक ऐसी जगह जहाँ रूसी जगत् में हिंदी से संबंधित सभी जानकारी मौजूद हो, बनाने में हमारी मदद की। अब यह कितना सफल रहता है, यह तो आप हिंदीभाषियों पर निर्भर करता है, क्योंकि यदि आप सामग्री में योगदान नहीं देंगे तो यह स्कूल कैसे आगे बढ़ेगा।

याद रखें बूँद-बूँद से सागर भरता है, लेख-लेख से ज्ञानकोश!

Dr M. I. Milkhilov
Lecturer, Belarus University
Belarus
Email : mihail@mogilev.by
Tel: 375-2233-58480

सरल और शीघ्र सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिंदी सर्वोपरि है।

-लोकमान्य तिलक

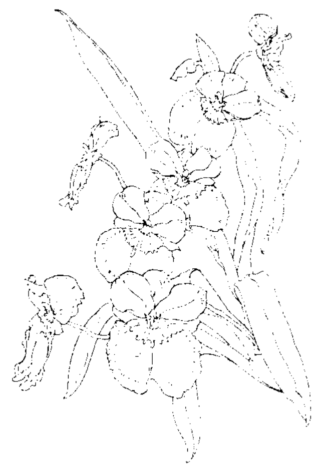

25

बल्गारिया, हिंदी और भारतीय संस्कृति

डॉ. सत्यकाम

बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय के पूर्व भाषा और संस्कृति केंद्र में भारतविद्या विभाग में हिंदी पढ़ाई जाती है। मैंने इस विभाग में दो वर्षों तक प्रोफेसर के रूप में अध्यापन किया और मेरे ये दो वर्ष सुखद अनुभूति के वर्ष रहे।

जब मैं सोफिया विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा और संस्कृति केंद्र में पहुँचा और अपने विद्यार्थियों से मिला तो उनके उत्साह को देखकर मेरी तमाम गाँठें खुल गईं। विद्यार्थियों ने जिस तरह मेरा स्वागत किया, जो प्यार और स्नेह दिया, उससे मैं अभिभूत हो गया। उन्होंने मुझे केवल प्यार इसलिए नहीं किया कि मैं एक अध्यापक हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं हिंदी का अध्यापक हूँ और भारत से आया हूँ। मेरे विद्यार्थी हिंदी और भारत में कोई अंतर नहीं करते थे। वे हिंदी पढ़ते थे, भारत को जानने और समझने के लिए। ऐसा नहीं कि वे भारत के यथार्थ से परिचित नहीं थे। वे यह समझते थे कि हिंदी भारत की आत्मा है और अन्य भारतीय भाषाएँ इसकी सगी बहनें।

बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय के भारत विद्या विभाग में भारत विद्या स्नातक और स्नातकोत्तर कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इसके अलावा, इस विभाग के द्वारा हिंदी में पी-एच.डी. भी कराई जाती है। स्नातक कार्यक्रम चार वर्षों का होता है। प्रथम वर्ष में विद्यार्थियों को मातृभाषा यानी बल्गारियाई भाषा के माध्यम से हिंदी पढ़ाई जाती है। मैंने देखा कि प्रथम सत्र समाप्त होते-होते विद्यार्थी हिंदी वाक्य लिखना सीख जाते हैं। उनका शब्द-भंडार समृद्ध होने लगता है। बल्गारिया की हिंदी शिक्षिका वाल्या मारिनोवा प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को हिंदी सिखाती हैं। मारिनोवा जी हिंदी की एक प्रतिबद्ध अध्यापिका हैं, जो अनुवाद के माध्यम से विद्यार्थियों को हिंदी सिखाती हैं और भारत विद्या विभाग के 25 वर्षों के इतिहास में 500 से ज्यादा विद्यार्थी हिंदी में स्नातक उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। इसका एहसास मुझे उस दिन हुआ, जब जैनेंद्र की 'सुनीता' और कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' के बल्गारियाई अनुवाद का विमोचन होना था। स्नेहवश उन्होंने मुझसे विमोचन करवाया और दो शब्द बोलने को कहा। पूरा सेमिनार हॉल खचाखच भरा हुआ था। श्रोताओं में अधिकांशतः भारत विद्या विभाग के पूर्व विद्यार्थी शामिल थे।

मारिनोवा जी के नेतृत्व में हिंदी के जिन प्रमुख उपन्यासों का अनुवाद हुआ है, वे हैं प्रेमचंद का गोदान, जैनेंद्र कुमार का सुनीता, अज्ञेय का शेखर : एक जीवनी, कृष्ण चंदर का ददर पुल के बच्चे। कहानी संग्रहों में हैं कमलेश्वर का 'नीली झील और अन्य कहानियाँ', निर्मल वर्मा का 'परिंदे और अन्य कहानियाँ'। कहानीकार, जिनकी कहानियाँ अलग-अलग संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं, वे हैं : अज्ञेय, अमरकांत, अमृता प्रीतम, अनीता देसाई, अश्विनी, बल्लभ दोभाल, भीष्म साहनी, गंगा प्रसाद विमल, गौतम सन्याल, जैनेंद्र कुमार, जयशंकर प्रसाद, कमला दास, कृष्ण चंदर, कृष्ण बलदेव वैद, खुशवंत सिंह, मधु राय, मन्नू भंडारी, महाश्वेता देवी, महीप सिंह, मेहरुन्निसा परवेज, मोहन राकेश, मुशर्रफ आलम जौकी, नरेंद्र नागदेव, प्रेमचंद, पूर्णा शर्मा 'पुराना', पुष्पा सक्सेना, राजेंद्र यादव, स.र. हरनोत, सादत हसन मंटो, उदयन वाजपेयी, हरदर्शन सहगल, हिमांशु जोशी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, यशपाल आदि। बल्गारिया भाषा में हिंदी पढ़ानेवाले शिक्षक मुख्य तौर पर शिक्षण के लिए अनुवाद का सहारा लेते हैं और इन सभी उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद भी उसी प्रयास का नतीजा है। ये सारे अनुवाद विद्यार्थियों और शिक्षकों ने मिलकर किए हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य लगातार बल्गारिया में अनुवाद के माध्यम से फैलता जा रहा है।

जब विद्यार्थी दूसरे वर्ष में आते हैं तो उनका शब्द-भंडार इतना हो जाता है कि वे टो-टोकर हिंदी समझने लगते हैं। हालाँकि यह समय होता है उनमें हिंदी के प्रति दिलचस्पी और आकर्षण पैदा करने का, क्योंकि इसी वर्ष में विद्यार्थी कक्षा छोड़कर और कभी-कभी बीच में पढ़ाई छोड़कर जाने लगते हैं। पहले वर्ष तो उत्कंठा और उत्सुकता उनके मन में होती है, परंतु भाषा शिक्षण की शुष्कता और नीरसता उन्हें कक्षा से दूर रहने के लिए उकसाती है। विद्यार्थियों में हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति दिलचस्पी पैदा करने के लिए मैंने उन्हें हिंदी की फिल्में दिखाना शुरू किया। एक जमाना था जब इस देश में राजकपूर बहुत लोकप्रिय थे। आज भी पुरानी पीढ़ी के लोग राजकपूर के गाने 'मेरा जूता है जापानी...' को याद करते हैं और बल्गारिया की राजधानी सोफिया में कई दुकानों पर मैंने हिंदी फिल्मों की डी.वी.डी. देखी, लेकिन ये हिंदी फिल्में पूरी तरह बल्गारियाई भाषा में रूपांतरित हुआ करती हैं और उनके आवरण पर बल्गारियाई भाषा में ही सबकुछ लिखा होता है। मैं तो केवल अंदाज से नायक-नायिकाओं के चित्र देखकर ही समझ पाता था कि यह कौन सी फिल्म होगी। एक दिन मैं और मेरी पत्नी जब एक ढाबे के पास से गुजर रहे थे, तो शाहरुख खान की आवाज सुनाई दी। हम ठिठके, रुके और झिझकते हुए ढाबे में झाँका। हमने देखा यहाँ तो शाहरुख खान की फिल्म 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे' चल रही है। ढाबेवाले ने हमें देखा, मुसकराया, आँगिक भाषा ने काम किया, नयनों का नयनों से संभाषण हुआ और हमने एक-दूसरे का अभिनंदन किया, क्योंकि अधिकांश बल्गारियाई लोग आज भी अंग्रेजी या हिंदी नहीं समझते। उनका काम अपनी भाषा से चल जाता है। उन्हें अपनी भाषा से प्यार है, वे अपनी भाषा पर गर्व करते हैं। वे हमारी तरह अपनी भाषा को कुंठा का विषय नहीं मानते। हम तो मानते हैं कि हिंदी बेपढ़े-लिखे की भाषा है और अंग्रेजी पढ़े-लिखे और सभ्य लोगों की।

मेरे विद्यार्थियों के बीच भी नई पीढ़ी के नायक-नायिकाएँ लोकप्रिय हैं। शाहरुख खान, आमिर खान, सलमान खान, ऋतिक रोशन जैसे रोमांटिक हीरो उन्हें बहुत पसंद हैं। अपने विद्यार्थियों की रुचि को देखते हुए मैंने उन्हें हिंदी फिल्मों के माध्यम से भाषा शिक्षण कराना आरंभ किया। मैं दूसरे वर्ष के विद्यार्थियों को मुहावरे पढ़ा रहा था। पढ़ाते वक्त उन्हें सामाजिक पृष्ठभूमि भी बताता जा रहा था, और फिर एक दिन जब हम फिल्म देख रहे थे तो मैंने अपने विद्यार्थियों को यह कहा कि फिल्म को देखने के दौरान यह गौर करो और लिखो कि कौन-कौन से मुहावरों का प्रयोग संवादों में हो रहा है और उनका संदर्भ क्या है। इसी तरह से और भी कई प्रयोग हिंदी शिक्षण के लिए मैंने किए, जिसमें सिनेमा बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

तीसरे वर्ष के विद्यार्थी इतने समर्थ हो जाते हैं कि वे हिंदी के प्रमुख कहानीकारों और रचनाकारों को समझ सकें। प्रेमचंद से लेकर चंद्रधर शर्मा गुलेरी, भीष्म साहनी, जैनेंद्र, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी जैसे रचनाकारों की कहानियों और उपन्यासों का अध्यापन मैंने किया। प्रेमचंद को पढ़ाने में खासी कठिनाई आई, क्योंकि भाषा की दृष्टि से प्रेमचंद जितने सरल हमें लगते हैं, वे विदेशी विद्यार्थियों के लिए उतने ही दुरूह और कठिन हैं। जैनेंद्र की भाषा हमें दुरूह लगती है, लेकिन विद्यार्थियों को जैनेंद्र की भाषा के साथ-साथ उनका विजन भी समझने में आसानी होती है। जब मैंने देखा कि मेरे विद्यार्थी प्रेमचंद को समझने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं, तो मैंने उन्हें एक गृह-कार्य दिया कि तुम लोग अपने देश के एक ऐसे लेखक की खोज करो, जो गाँव की कथा लिखता हो। विद्यार्थी एलिन पेलिन लेखक का नाम लेकर आए और अब प्रेमचंद की कहानियों को एलिन पेलिन के बरक्स रखकर पढ़ाना शुरू किया तो बड़ा अचंभा हुआ। दोनों ही लेखक समकालीन हैं। दोनों ही गाँव के बारे में लिखनेवाले कथाकार हैं। दोनों की भाषाएँ लोक चेतना से संपृक्त हैं। अब हमारे

तीसरे वर्ष के विद्यार्थी इतने समर्थ हो जाते हैं कि वे हिंदी के प्रमुख कहानीकारों और रचनाकारों को समझ सकें। प्रेमचंद से लेकर चंद्रधर शर्मा गुलेरी, भीष्म साहनी, जैनेंद्र, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी जैसे रचनाकारों की कहानियों और उपन्यासों का अध्यापन मैंने किया। प्रेमचंद को पढ़ाने में खासी कठिनाई आई, क्योंकि भाषा की दृष्टि से प्रेमचंद जितने सरल हमें लगते हैं, वे विदेशी विद्यार्थियों के लिए उतने ही दुरूह और कठिन हैं।

विद्यार्थी प्रेमचंद को समझने लगे। तब मैंने जाना कि विदेशी विद्यार्थियों के भाषा के शिक्षण के लिए तुलनात्मक अध्ययन कितना महत्त्वपूर्ण है। मैंने तुलनात्मक अध्ययन की इस प्रविधि को पूरे अध्यापनकाल में बार बार दुहराया और अच्छे नतीजे सामने आए।

चौथे वर्ष के विद्यार्थियों को प्रेमचंद का 'गबन' और 'रंगभूमि' तथा मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' पढ़ाया। 'गबन' को भारतीय स्त्री की मुक्ति के एक प्रयास के रूप में जब मैंने विश्लेषित किया तब उन्हें लगा कि यह स्त्री का एक आभूषण-प्रेम नहीं है, क्योंकि जालपा तो आभूषण-प्रेम को त्याग देती है और राष्ट्र-प्रेम ही उसका प्रेम हो जाता है। इसी प्रकार 'रंगभूमि' का अध्यापन भी राष्ट्र की अभिव्यक्ति करानेवाले साहित्य के रूप में किया गया। इससे विद्यार्थियों को गुलाम भारत के दर्द और मुक्त होने की आकांक्षा से रूबरू होने का मौका मिला। परंतु विद्यार्थियों को मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' बहुत पसंद आया, क्योंकि वहाँ के समाज में भी बंटियों की संख्या बहुत अधिक है। माँ और बाप के विच्छेद के बीच बंटी त्रिशंकु बन जाता है और उसकी पीड़ा से एकाकार होकर हमारे विद्यार्थियों ने हिंदी साहित्य से विशेष अपनापन और लगाव महसूस किया।

सोफिया विश्वविद्यालय के भारत विद्या विभाग की स्थापना के 25 वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस दौरान वहाँ की अध्यापिकाओं ने हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। अभी इस विभाग में डॉ. एवितोमोवा, गाल्या सोकोलवा, वान्य गान्चेवा, व्रतोएवा, रोजोवा, एंग्लोवा, कामोवा आदि शिक्षिकाएँ विद्यार्थियों को भारतीय इतिहास, भूगोल, दर्शन, संस्कृति के साथ-साथ हिंदी भाषा और साहित्य से समृद्ध बना रही हैं। मैं हिंदी के एक कर्मठ योद्धा विद्यार्थी और शिक्षक का भी जिक्र करना चाहूँगा, जो बिना किसी स्वार्थ के हिंदी पढ़ता है, सीखता है और पढ़ाता है। इस व्यक्ति का नाम है एलेक्जेंडर। आप इंदिरा गांधी विद्यालय और सोफिया विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं तथा आठवीं से लेकर 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाते हैं। न केवल हिंदी पढ़ाते हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति के कई पक्षों से भी उन्हें जोड़ते हैं। एलेक्जेंडर रंगोली बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं और कई अवसरों पर जैसे दीवाली, होली और हिंदी दिवस पर उन्होंने अपने विद्यार्थियों के साथ मिलकर खूबसूरत रंगोली बनाई।

पिछले तीन वर्षों से विदेश मंत्रालय के सौजन्य से सोफिया में भारतीय राजदूतावास और सोफिया विश्वविद्यालय के भारतशास्त्र विभाग के संयुक्त सहयोग से सोफिया विश्वविद्यालय के आउला (सभागृह) में हिंदी दिवस का आयोजन किया जा रहा है, जिसके पिछले दो आयोजन मेरे नेतृत्व में हुए। खुशी की बात यह है कि इन दोनों अवसरों पर विशाल सभागृह ठसाठस भरा हुआ था और हिंदी के गीत और संगीत का आनंद उठाने के लिए लोग इकट्ठा हुए थे। जाहिर है कि वे हिंदी भाषा नहीं समझते थे, परंतु वे भारत को देखने आए थे और हमारे विद्यार्थियों ने हिंदी फिल्मी गीतों पर जो नृत्य किया, उससे सारा हॉल झूम उठा। इसी प्रकार एक कर्मठ बल्गारियाई महिला हैं श्रीमती कापका कुमार, जो हिंदी फिल्मों पर बेजोड़ नृत्य करती हैं। वे हिंदी बोलती भी हैं और निजी स्तर पर लोगों को हिंदी सिखाती भी हैं। भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उनका योगदान सराहनीय है।

इस प्रकार बल्गारिया में विभिन्न स्तरों पर हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए जो कार्य किया जा रहा है, वह सराहनीय है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विदेश मंत्रालय और भारत सरकार के अन्य उपक्रमों की मदद से इस कार्य में तेजी आ रही है, परंतु अभी इसमें और भी सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है। श्रीमती कापका कुमार जैसी कई प्रतिभाएँ वहाँ हैं, जो निस्स्वार्थ भाव से भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रही हैं और इस प्रकार हिंदी भाषा से भी लोगों का परिचय करा रही हैं। भारत सरकार को चाहिए कि ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करे, ताकि बल्गारिया और भारत की सांस्कृतिक डोर और भी मजबूत हो सके।

Dr. Satyakam
Professor, Hindi Sankay,
Indira Gandhi Rashtryia Mukta Vishvavidyalaya,
New Delhi (INDIA)
E-mail : satyakamji@gmail.com

26

थाईलैंड में हिंदी शिक्षण

डॉ. बमरुंग खामीक

थाईलैंड में हिंदी अध्यापन का कार्यक्रम सबसे पहले थाई-भारत संस्कृति आश्रम में शुरू हुआ, जिसकी स्थापना सन् 1943 में स्वामी सत्यानंदपुरी ने की थी। आचार्य डॉ. करुणा कुशलासाय जी पहले थाई विद्वान् थे, जो हिंदी पढ़ने भारत गए। उन्होंने बताया कि वे सारनाथ में महात्मा गांधी से मिले और बात की। जब वह थाईलैंड लौटे, तब थाई-भारत संस्कृति आश्रम में हिंदी पढ़ाना शुरू किया और बैंकॉक के भारतीय दूतावास में नौकरी शुरू की।

सन् 1989 में शिलपाकोन विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के एम.ए. कोर्स के लिए संस्कृत का पाठ्यक्रम बनाया गया। विद्यार्थी मुख्य विषय में संस्कृत एवं चयनात्मक पाठ्यक्रम में हिंदी के 8 यूनिट पढ़ सकते हैं-

हिंदी व्याकरण	2 यूनिट
हिंदी पढ़ना	2 यूनिट
हिंदी वार्त्तालाप	2 यूनिट
हिंदी लेखन	2 यूनिट

उस समय आचार्य डॉ. चम्लोंग सारफद्नूक हिंदी शिक्षक थे। सन् 1996 में शिलपाकोन विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के संस्कृत अध्ययन केंद्र की भारतीय अतिथि आचार्य डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के द्वारा स्थापना की गई थी।

उस समय मैं वहाँ संस्कृत का विद्यार्थी था। एम.ए. की डिग्री प्राप्त करने के बाद सन् 1991-1993 तथा 1996 में केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने भेजा गया था। सन् 1993 में धमसात विश्वविद्यालय में थाईलैंड के भारतीय व्यापारियों के सहयोग से भारत अध्ययन केंद्र की स्थापना की गई। यहाँ के आम आदमियों के लिए 40 घंटे हिंदी पाठ्यक्रम चलता था। पूज्य आचार्य डॉ. करुणा कुशलासाय, आचार्य डॉ. चिरफद् प्रफनविद्या एवं आचार्य डॉ. चम्लोंग सारफद्नूक तीनों ने हिंदी कक्षा चलाई। सन् 1996 में जब मैं संस्कृत में पी.एच-डी. प्राप्त करने के बाद थाईलैंड वापस आकर धमसात में भारत अध्ययन केंद्र में विशेष हिंदी शिक्षक (1996 से 1999 तक) बन गया और सन् 1998 में मैंने शिलपाकोन विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा हिंदी प्राध्यापक बनकर, चयनात्मक पाठ्यक्रम (Elective Course) बनाया, वह इस प्रकार है :

चयनात्मक पाठ्यक्रम (Elective Course)	**18 यूनिट**
हिंदी लेखन	3 यूनिट
हिंदी सुनना एवं वार्त्तालाप I	3 यूनिट
हिंदी व्याकरण I	3 यूनिट
हिंदी व्याकरण II	3 यूनिट
हिंदी सुनना एवं वार्त्तालाप II	3 यूनिट
हिंदी अनुवाद	3 यूनिट

स्वतंत्र पाठ्यक्रम (12 यूनिट)

पाठावली (Hindi Reading in Socio-Cultural Matters)	3 यूनिट
हिंदी साहित्य का इतिहास (History of Hindi Literature)	3 यूनिट
उत्कृष्ट हिंदी साहित्य (Selected Hindi Literature)	3 यूनिट
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (Critical Reading in Hindi Literature)	3 यूनिट
समकालीन हिंदी साहित्य अध्ययन (Reading in Contemporary Hindi Literature)	3 यूनिट
व्यापारिक हिंदी तथा पर्यटन (Hindi for Business and Tourism)	3 यूनिट

जिन्हें हिंदी पढ़ना है, उन्हें थाईलैंड में भारतीय व्यापारियों से छात्रवृत्ति मिलती है। यहाँ के आम आदमियों के लिए भी पाठ्यक्रम (50 घंटे) बने हैं। थाई तथा भारतीय अध्यापक हिंदी कक्षा पढ़ाने में सहायता करते हैं। कक्षा का समय शाम को साढ़े पाँच बजे से साढ़े सात बजे तक रहता है और एक हफ्ते में दो कक्षाएँ लगती हैं।

आम आदमियों के लिए भी पाठ्यक्रम 50 घंटे का है।

प्राथमिक हिंदी-(बेसिक हिंदी व्याकरण, बेसिक पढ़ना, बेसिक लेखन तथा बेसिक हिंदी वार्त्तालाप)

माध्यमिक हिंदी-(उच्च हिंदी व्याकरण, उच्च हिंदी पढ़ना, उच्च हिंदी लेखन, उच्च हिंदी वार्त्तालाप)

उद्देश्य

जो छात्र यहाँ हिंदी पढ़ने आते हैं उनके उद्देश्य भी अलग-अलग हैं-

1. किसी विषय में पढ़ने के लिए भारत जाना।
2. भारतीय संस्कृति को जानना।
3. व्यापार करना।
4. अपने काम में एवं हिंदू देवी-देवताओं के बारे में जानकारी लेना।
5. किसी भाषा को पढ़ने से प्रसन्नता प्राप्त करना।

थाईलैंड में हिंदी कक्षा की समस्याएँ

थाईलेंड में हिंदी कक्षाओं को लेकर कुछ समस्याएँ भी हैं। हिंदी के छात्रों की कम संख्या होती है, इसके प्रमुख कारण हैं-

शिलपाकोन विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग में केवल चयनात्मक पाठ्यक्रम (Elective Course) ही है।

विश्वविद्यालय में हिंदी पाठ्यक्रम के बारे में छात्रों को कोई सूचना नहीं होती है।

हिंदी के कार्यक्रम कम होते हैं जैसे सेमिनार, हिंदी नाटक, भारतीय सांस्कृतिक नृत्य व हिंदी फीचर फिल्म आदि।

केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने की छात्रवृत्ति भी कम मिलती हैं।

हिंदी सामग्री कम मिलती है।

रोजमर्रा के काम में हिंदी भाषा का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है।

छात्र

आम आदमियों के लिए पाठ्यक्रम में काफी थाई लोग आते हैं। भारतीय लोग जिनका थाईलैंड में जन्म हुआ है, वे कम आते हैं। कभी-कभी मैं उनके घर पर हिंदी पढ़ाने जाता हूँ।

सफलता

कक्षा समाप्त करने के बाद प्रमाण-पत्र प्राप्त करके छात्र बैंकॉक में भारत दूतावास से आगरा में केंद्रीय हिंदी संस्थान में पढ़ने की छात्रवृत्ति पा सकते हैं और यहाँ से हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने देश वापस आकर हिंदी शिक्षक बन सकते हैं। इनमें से कुछ भारतीय लोगों के घर पर हिंदी पढ़ाने जाते हैं। कुछ हिंदी सीरियलों और फीचर फिल्मों के लिए अनुवाद का कार्य करते हैं, जैसे रामायण, महाभारत, गणेश, हनुमान आदि।

हिंदी छात्रवृत्ति

सन् 1991 से जो थाई छात्र शिलपाकोन विश्वविद्यालय से एम.ए. में तथा आम आदमी के लिए पाठ्यक्रम में हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने के बाद आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने गए हैं, अब तक उनकी संख्या करीब 30 हो गई है।

दूसरे विश्वविद्यालयों में हिंदी

आजकल हिंदी की पढ़ाई चयनात्मक पाठ्यक्रम (Elective Course) के रूप में कई विश्वविद्यालयों में की जा रही है। जैसे दो बौद्ध भिक्षु के विश्वविद्यालय महाचुलालोङ्गलोनराजविद्यालय व महामकुटराजविद्यालय, रामखामहैङ्ग विश्वविद्यालय, बैङ्गकाक, छिअङ्गमाई विश्वविद्यालय, छिअङ्गमाई प्रदेश तथा बूरफाविश्वविद्यालय, जोलबुरी प्रदेश।

हिंदी से थाई में शब्द उधार लेना व उच्चारण की समस्या

थाई भाषा बोलने में हिंदी से अलग ढंग की होती है। अधिकांश शब्द एक अक्षर (Syllable) होते हैं और उनके अर्थ भी होते हैं, जैसे-

मैआव	बिल्ली

कुछ शब्द पाली व संस्कृत से थाई भाषा में उधार लेकर और अपने ढंग से बनाकर अनौपचारिक रूप में प्रयोग करते हैं, जैसे–

थाई	हिंदी
प्राईस्नी	डाकघर
महाविद्यालय	विश्वविद्यालय
राछकार	सरकार
आचार	आचार्य, शिक्षक
काम	कर्म
धम	धर्म
भिक्सु	भिक्षु
रोथ	रथ
सनान	स्नान करना
कन	कान
बाध	पाद आदि

उधार लिये हुए कुछ शब्दों का उच्चारण हिंदी से अंतर लिए होता है। जैसे-

थाई	हिंदी
धछमाहाल	ताजमहल
छूरील	सुशील
नरोक	नरक
सवन	सर्वग
धेवदा	देवता
फुद	बुद्ध

वे अक्षर जिनके उच्चारण में थाई लोगों को समस्या होती है जैसे-

कभी हाथ से लिखकर पाठ बनाते थे। लेकिन अब हिंदी की सामग्री मिलती है, जैसे हिंदी-थाई व्याकरण, हिंदी-थाई वार्तालाप एमपी 3 (MP3) के सहित व हिंदी-थाई शब्दकोश आदि।

सहायता

हिंदी भाषा देव भाषा है। व्यापारिक भाषा जैसी अंग्रेजी, जापानी, फ्रेंच, चीनी जैसी तो नहीं है। इसलिए यह काम मैं ईश्वर को मन में लगा करके, हिंदी पढ़कर, भारत की सस्कृति का आम आदमियों को परिचय करा कर करता हूँ। पढ़ाने के समय हमने भारत की संस्कृति में थाई लोगों का मनोरंजन करने की बहुत कोशिश की, जैसे भारतीय संगीत, खान-पान व पोशाक, धर्म, दर्शन तथा दर्शनीय स्थान आदि और उन लोगों को भारतीय लोगों के बारे में ठीक से परिचय भी करा दिया है।

शिलपाकोन विश्वविद्यालय में आम आदमियों का हिंदी पाठ्यक्रम संस्कृत अध्ययन केंद्र तथा थाई-भारत संस्कृति आश्रम के द्वारा आयोजित किया गया है। इसलिए हिंदी पढ़ते समय बहुत कम खर्च करना पड़ता है। शिलपाकोन विश्वविद्यालय के पुरातत्वविज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के हमारे भूतपूर्व अध्यक्ष व संस्कृत अध्ययन केंद्र के निदेशक पूज्य आचार्य डॉ. चिरफत प्रफनविद्या कभी अपने पैसे हिंदी कक्षा चलाने के लिए देते हैं और काम में हमको सलाह भी देते हैं।

हर दो साल के लिए हमारे यहाँ भारत से एक अतिथि आचार्य अपने परिवार सहित संस्कृत पढ़ाने आते हैं। उनकी धर्म पत्नी ने हिंदी पढ़ाने में हमारी मदद की। आजकल उनके परिवार ने आने से मना कर दिया तो आदरणीय श्री सुशील कुमार जी, जो थाईलैंड के एक भारतीय व्यापारी हैं, ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इंदु को बुलाकर के 2 साल हुए हिंदी पढ़ाने में हमारी सहायता की।

Dr. Bamrunga Khameek
Silpaakorn University, 31 na phara lan Road,
Bangkok-10200
Email: bumroong80@hotmail.com

27

खाड़ी के देशों में जन साधारण की भाषा हिंदी

पूर्णिमा वर्मन

खाड़ी के देशों में संयुक्त अरब इमरात, कुवैत, ईराक व सऊदी में हिंदी रोज़ की बोलचाल जैसी भाषा है । दुबई और शारजाह में धनी, यूरोपीय और शासक वर्ग के अरबी लोगों को छोड़ दें तो लगभग हर व्यक्ति हिंदी बोलता और समझता है । यहां बसे भारतीयों की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु से आता है । शेष भारत से आनेवाले भी हैं पर उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है । अपनी संस्कृति से परिचय और जुड़ाव बनाए रखने के लिए इनकी अपनी-अपनी संस्थाएँ हैं जो विभिन्न पर्वों पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करती हैं । पिछले कुछ सालों से होली पर सामूहिक मिलन में होली खेलने की परंपरा और नवरात्र पर डांडिया खेलने की परंपरा का विकास हुआ है। इन सबसे भारतीय संस्कृति के विकास को थोड़ा सा बल ज़रूर मिलता है पर भाषा का विकास कितना होता है, यह सोचने की बात है । ठीक से योजना बनाई जाए और लोगों को समझाया जा सके तो हिंदी के विकास के लिए इन उत्सवों का सहारा लिया जा सकता है ।

दैनिक ज़रूरतों के काम करनेवाले लोग जैसे घरों में काम करनेवाली महिलाएँ, टैक्सी ड्राईवर, घर की सफाई का काम करनेवाले लोग, सब्ज़ी बेचनेवाले, सुपर मार्केट के कर्मचारी और सोने या कपड़े की दूकानवाले सब हिंदी समझते और बोलते हैं । यह सच है कि इनमें से ज्यादातर भारतीय हैं लेकिन जो लोग भारतीय नहीं हैं या जो भारतीय हैं पर जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे भी यहाँ हिंदी का प्रयोग करते हैं । उदाहरण के लिए श्रीलंकन महिलाएँ जो घर की सफाई का काम करती हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत हिंदी बोलती हैं । टैक्सी ड्राइवर भले ही अरबी हो पर वह हिंदी बोलता और समझता है । अपने दस साल के प्रवास में मुझे शायद ही कभी कोई टैक्सी ड्राईवर मिला होगा, जो हिंदी नहीं जानता। यही नहीं पुलिस अस्पताल हवाई अड्डा और डाकखाना जैसे सभी सरकारी कार्यालयों में लगभग सभी अरबी मूल के लोग हिंदी बोलते हैं। हमारे एक परिचित का बेटा जिसकी मातृभाषा तमिल है, उसका कहना है कि मुझे दिल्ली में रहकर हिंदी सीखने की ऐसी ज़रूरत नहीं महसूस हुई जैसी दुबई पहुँचकर। वैसे यहाँ हिंदी सीखना आसान है क्योंकि यहाँ कोई आपकी गलत हिंदी पर हँसता नहीं ।

फिर भी हिंदी का विकास यह एक बोली के रूप में रहा है। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-संस्कृति और कला की समृद्ध भाषा के रूप में जो सम्मान उसको मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला है। वह प्रतिष्ठित लोगों की भाषा नहीं बन सकी है । हिंदी के नाटक, कवि सम्मेलन और फिल्मों को देखने जो आभिजात्य भीड़ उमड़ती है, वह आपस में बातचीत के लिए भारतीयों की तरह अंग्रेज़ियत पर ही उतर आती है ।

ब्रिटेन तथा यूनाइटेड स्टेट्स की तरह खाड़ी के देशों में अरबी-हिंदी के संयुक्त प्रयासों को बढ़ाने की ज़रूरत है । भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में अरबी की स्नातक या स्नातकोत्तर पढ़ाई की व्यवस्था है । लेकिन यू.ए.ई. के किसी भी विश्वविद्यालय में हिंदी स्नातक या परास्नातक कक्षाओं में नहीं पढ़ाई जाती है । अगर यहाँ हिंदी की व्यवस्था हो जाए तो हिंदी और अरबी के समकालीन साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की व्यवस्था हो सकती है ।

अनेक अहिंदी भाषी गृहणियाँ अपने खाली समय में हिंदी लिखना-पढ़ना या बोलना सीखना चाहती हैं । अनेक यूरोपीय व अमरीकी छात्र-छात्राएँ भारत-पर्यटन के लिए सामान्य हिंदी बोलने व लिखने-पढ़ने की इच्छा रखते हैं । कपड़ों के उद्योग तथा अन्य कार्यों में लगी अनेक महिलाएँ (पुरुष भी) हिंदी सीखना चाहती हैं, ताकि वे अपने सहकर्मियों (जो अधिकतर हिंदी में बात करते हैं) के साथ हिंदी बोलने का मज़ा उठा सकें। एअरलाइन्स और होटल के उद्योग में लगे व्यक्ति खाली समय में हिंदी सीखकर अपनी योग्यता

बढ़ाना चाहते हैं। हम इन सबके लिए विभिन्न स्तरों की हिंदी पढ़ाए जाने की व्यवस्था कर सकते हैं। यह व्यवस्था दूतावास की ओर से हो सकती है या हिंदी संस्थाओं की ओर से या फिर शिक्षा संस्थाओं की ओर से । जिस प्रकार फ्रेंच दूतावास फ्रेंच की कक्षाएँ चलाते हैं और उनका धुआँधार विज्ञापन करते हैं, वैसी ही व्यवस्था भारतीय दूतावास से हिंदी के लिए होनी चाहिए ।

विदेशी दूतावासों में अपनी-अपनी भाषा के अति संपन्न पुस्तकालय होते हैं । ब्रिटिश लायब्रेरी तो अंग्रेज़ी की श्रेष्ठतम पुस्तकों के लिए हर जगह प्रसिद्ध है । इसी के समकक्ष भारतीय दूतावास में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का हिंदी पुस्तकालय होना चाहिए, जो अन्य पुस्तकालयों से कंप्यूटर द्वारा जुड़ा हो और अगर कोई पुस्तक पुस्तकालय में उपलब्ध न हो तो उसको एक हफ्ते के अंदर मँगाकर दिया जा सके । इसके अतिरिक्त यहाँ किताबों की दूकान चलानेवाले लोगों को हिंदी पुस्तकें व पत्रिकाएँ बेचने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए ।

इन सुझावों को देने का मतलब यह नहीं है कि यहाँ हिंदी के विकास के लिए कुछ नहीं हो रहा है । प्रवासी भारतीय परदेस जाकर हिंदी तथा भारत का महत्व अधिक गहराई से महसूस करता है । जब तक वह भारत में रहता है तो हिंदी तथा भारतीय संस्कृति उसके लिए ' घर की मुर्गी दाल बराबर ' होती है । विदेश में जाकर वहाँ की चकाचौंध के पीछे छिपी वास्तविकता को देखने के बाद, उसे हिंदी तथा हिंदी में अभिव्यक्त होनेवाली भारतीय संस्कृति की याद आती है । फिर वह हिंदी के विकास और जुड़ाव में लगता है । प्रवासी भारतीयों में ऐसे हज़ारों लोग खाड़ी के देशों में भी हिंदी के विकास में संलग्न हैं ।

यू. ए. ई. में हिंदी कार्यक्रम का आयोजन करनेवाली कई संस्थाएँ हैं। ' प्रतिबिंब ' और ' थियेटरवाला' नामक दो नाटक संस्थाएँ हैं, जो हिंदी नाटकों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम कर रही हैं । 'प्रतिबिंब' 1996 से हर वर्ष एक हिंदी नाटक दुबई में खेलते रहे हैं और थियेटरवाला 2007 से ।

इसके अतिरिक्त हर शुक्रवार 'शुक्रवार चौपाल ' के नाम से मेरे घर पर एक साप्ताहिक गोष्ठी होती है जिसमें दुबई, अजमान और शारजाह नगरों के अनेक हिंदी रंगकर्मी और साहित्यप्रेमी सम्मिलित होते हैं । इस गोष्ठी में नियमित रूप से किसी साहित्यिक रचना या नाटक का पाठ होता है । साहित्य या रंगकर्म से संबंधित कार्यशालाएँ होती हैं और नाटकों के रिहर्सल होते हैं । भारत से आए साहित्य या रंगकर्मियों से मुलाकात भी होती है । सन् 2009 से 'थियेटरवाला' प्रतिमाह एक हिंदी नाटक का मंचन कर रहे हैं । इस परंपरा का आरंभ 9 जनवरी, 2009 को हुआ था ।

खाड़ी के देशों से वेब पर भी कुछ महत्वपूर्ण काम हुए हैं । 8-10 हिंदी वेबलॉगों के अतिरिक्त मेरी अपनी वेबपत्रिकाओं 'अभिव्यक्ति ' व ' अनुभूति ' का साप्ताहिक प्रकाशन प्रति सोमवार किया जाता है । इन अंकों को पुरालेखों में इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि वे आज वेब पर हिंदी का सबसे बड़ा साहित्य कोश बन गए हैं ।

यू. ए. ई. में एफ.एम. के कम-से-कम तीन ऐसे चैनल हैं जिन पर चौबीसों घंटे हिंदी गाने, समाचार और अन्य कार्यक्रम सुने जा सकते हैं। दिन भर इन पर अंतरराष्ट्रीय उत्पादों के विज्ञापन सुने जा सकते हैं। यह इस बात का सबूत है कि यहाँ हिंदी खूब लोकप्रिय है और अंतर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अपना माल बेचने के लिए हिंदी के महत्त्व को गंभीरता से महसूस करती हैं। व्यापार में इस प्रकार हिंदी की अंतरराष्ट्रीय ज़रूरत को हिंदी की ताकत समझा जाना चाहिए ।

यू. ए. ई. में हिंदी लेखन के क्षेत्र में श्री कृष्ण बिहारी ने बहुत महत्वपूर्ण काम किया है । उन्होंने अरबी परिवेश को चित्रित करने वाली सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जो ' हंस 'से लेकर' दैनिक जागरण ' तक लगभग हर पत्र-पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं। हाल ही में उनके संपादन में दुबई से 'निकट' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है।

अनुवाद के क्षेत्र में श्रीमती कांता भाटिया ने डॉ. मोती प्रकाश के संस्मरणों के हिंदी अनुवाद का महत्त्वपूर्ण काम किया है। इसके अतिरिक्त यदा-कदा लिखनेवाले और प्रकाशित होनेवाले लेखक और कवि भी कई हैं जिनकी रचनाएँ समय-समय पर 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' की शोभा बढ़ाती हैं। कुल मिलाकर कहा जाए तो संभावनाएँ बहुत हैं पर जिस शक्ति और श्रम के साथ काम करने की ज़रूरत है वह हम पूरी तरह जुटा नहीं पाए हैं।

Mrs. Purnima Varman
P.O. Box 25450,
Sharjah
U.A.E.
Email : abhi_vyakti@hotmail.com

28

भारतेतर देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास और स्वरूप

डॉ. कमल किशोर गोयनका

भारत से बाहर के देशों में, विशेष रूप से मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड आदि देशों में प्रवासी भारतीयों की विपुल संख्या है तथा इन देशों में राजनीतिक शक्ति भी इन्हीं के हाथों में है। इन देशों में विगत लगभग 150-160 वर्षों से प्रवासी भारतीयों तथा उनके वंशजों ने हिंदी, हिंदू संस्कृति एवं हिंदुस्तानी को जीवित रखा है और उसके लिए किए गए प्रयासों में हिंदी भाषा में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हिंदी भाषा इन भारतवंशियों के लिए अपनी संस्कृति और अस्मिता की रक्षा का प्रश्न रहा है और मॉरीशस, ट्रिनिडाड एवं सूरीनाम में विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन से उन्होंने अपने इस संकल्प को प्रमाणित भी किया है। इसके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी में विश्व के अमेरिका, इंग्लैंड, हॉलैंड, रूमानिया आदि विकसित देशों में जाकर रहनेवाले अनेक भारतीय विद्वानों, प्रोफेसरों एवं हिंदी-प्रेमियों ने भी अपने-अपने देशों में हिंदी भाषा और साहित्य को जीवित रखने तथा भारतीय समाज को एकसूत्र में जोड़े रखने के लिए हिंदी में पत्र-पत्रिकाएँ आरंभ कीं और अपने पाठकों को हिंदी की सर्जनात्मकता के विकास के अवसर देने के साथ अपनी मातृभूमि की हलचलों से भी जोड़े रखा। विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के उद्‌भव और विकास में एक तीसरा वर्ग भी है। यह वर्ग है कुछ देशों में, विशेष रूप से जापान में, उस देश के मूल निवासियों में से कुछ हिंदी प्रेमियों तथा हिंदी शिक्षकों ने भी हिंदी में पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं। यद्यपि ये प्रयास अत्यल्प ही हैं तथा दीर्घजीवी भी नहीं हुए हैं, परंतु इनके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

एशिया के देशों में हिंदी पत्रकारिता

भारत एशिया का प्रमुख देश है। अतः इसके पड़ोसी अन्य एशियाई देशों में हिंदी पत्रकारिता का सबसे पहले अवलोकन करना उचित होगा। एशिया में पाकिस्तान, बँगलादेश, नेपाल, बर्मा, श्रीलंका, जापान और चीन प्रमुख देश हैं।

यह सर्वविदित है कि अंग्रेजों ने भारत को दो टुकड़ों में बाँट दिया और 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान का निर्माण हुआ। पाकिस्तान के निर्माण से पहले लाहौर हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता का केंद्र था। 'प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' पुस्तक का प्रकाशन सन् 1934 में चद्रगुप्त विद्यालंकार ने लाहौर से किया था। पाकिस्तान के निर्माण के साथ ही वहाँ हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की खोज के रास्ते बंद हो गए। संभव है, कोई शोधार्थी, लाहौर, कराची जाकर वहाँ के पुराने पुस्तकालयों को खोजे और कुछ नई जानकारी मिले। इसी प्रकार 17 दिसंबर, 1971 को बँगलादेश का निर्माण हुआ। ढाका हिंदी पत्रकारिता का केंद्र था। यहाँ से 'धर्मनीति तत्त्व' (1880), 'विद्याधर्म दीपिका' (1888), 'द्विज' (1889), 'नागरी हितैषी' (1905), 'तत्त्व दर्शन' (1911), 'मेल-मिलाप' (1939) तथा 'बिहार बंधु' (1871) के प्रकाशन का प्रमाण मिलता है। 'मौजी' तथा 'साहित्य' त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

नेपाल में स्थिति एकदम अनुकूल रही है। अनंत काल से नेपाल और भारत का अटूट संबंध रहा है तथा धर्म, भूगोल, साहित्य, संस्कृति, कला आदि में दोनों देश पूर्णतः एकसूत्र में बँधे रहे हैं। इसी कारण हिंदी भाषा और साहित्य से भी निकटता बनी हुई है। नेपाल में हिंदी पत्रकारिता का आरंभ मोतीराम भट्ट ने किया। वे पत्रकार एवं साहित्यकार दोनों थे। नेपाल नरेश ने भी हिंदी पत्रिकाओं को आर्थिक सहयोग देकर उन्हें विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इन पत्रिकाओं में 'रिमझिम' (1916) उल्लेखनीय है। नेपाल के दैनिक पत्रों में 'समाज' और 'गोरखा

पत्र', पाक्षिक पत्रों में 'प्रतिध्वनि' और 'कंचनजंघा', मासिक पत्रिकाओं में 'बालक', ''महिला बोल्छिन', 'पंचायत', 'मजदूर', 'रूपरेखा', 'विद्वान', द्वैमासिक में 'कल्पना' और 'रत्नश्री' तथा त्रैमासिक पत्रिकाओं में 'मानु' एवं 'नेपाली' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'जनचेतना', 'हिमालय', 'हिमोक्त संस्कृत', 'सही रास्ता', 'नव नेपाल', 'निजामत सेवा पत्रिका', 'शिक्षा', 'हुलाक', 'नेपाल' आदि पत्र-पत्रिकाओं का भी उललेख मिलता है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र ने 'साहित्य लोक' त्रैमासिक पत्रिका निकाली थी और अब उनके देहांत के बाद कृष्णचंद्र मिश्र साहित्य अकादमी 'हिमालिनी' त्रैमासिक पत्रिका निकाल रही है। इस पत्रिका से अब एक नई पीढ़ी सामने आई है। लेकिन इधर चीन समर्थक माओवादी की शक्ति बढ़ने से हिंदी पर भी संकट आ गया है। वहाँ हिंदी में शपथ लेने का भी विरोध हो रहा है।

बर्मा में कई शताब्दियों से भारतीय जाते रहे हैं। इन भारतीयों ने अपने प्रयास से हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता से अपने समाज को जोड़ा और बर्मी भाषा के प्रभुत्व के बावजूद उसे जीवित रखा। लाठिया ने 'बर्मा समाचार' के प्रकाशन से हिंदी पत्रकारिता की नींव रखी। इसके बाद 'प्राची कलश' मासिक पत्र निकला तथा सन् 1934 में हिंदी दैनिक 'प्राची प्रकाश' रंगून से निकला। इसके संपादक थे अनंतराम मिश्र एवं श्यामाचरण मिश्र। इसके कुछ समय बाद 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्र तथा 'नवजीवन' दैनिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया गया, परंतु आर्थिक कठिनाई के कारण दोनों ही बंद हो गए। सन् 1953 में 'ब्रह्म भूमि' मासिक पत्र आरंभ हुआ जो अभी तक निकल रहा है। सन् 1970 में 'आर्य युवक जागृति' मासिक पत्रिका भी निकली, पर कुछ समय बाद बंद हो गई। श्रीलंका में 'सुगृहिणी' (1881) मासिक पत्रिका के निकलने का प्रमाण मिलता है, जिसकी संपादिका श्रीमती हेमंत कुमारी थीं।

नेपाल नरेश ने भी हिंदी पत्रिकाओं को आर्थिक सहयोग देकर उन्हें विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इन पत्रिकाओं में 'रमझम' (1916) उल्लेखनीय है। **नेपाल के दैनिक पत्रों में 'समाज' और 'गोरखा पत्र', पाक्षिक पत्रों में 'प्रतिध्वनि' और 'कंचनजंघा', मासिक पत्रिकाओं में 'बालक', ''महिला बोल्छिन', 'पंचायत', 'मजदूर', 'रूपरेखा', 'विद्वान', द्वैमासिक में 'कल्पना' और 'रत्नश्री' तथा त्रैमासिक पत्रिकाओं में 'मानु' एवं 'नेपाली' उल्लेखनीय हैं।**

जापान, चीन और तिब्बत में भी हिंदी पत्रकारिता का अस्तित्व है। जापान में सन् 1964 में 'अंक' मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई और इसके इक्कीस अंक छप चुके हैं। 'ज्वालामुखी' त्रैमासिक पत्रिका टोकियो से सन् 1980 में निकली, लेकिन इसके दो ही अंक निकल सके। इसके संपादक थे योशिअकि सुजुकी। इस पत्रिका के लेखक प्रायः जापानी हैं, लेकिन महेंद्र साइजिमाकिनो जैसे जापानी भी हैं, जो भारत में रहकर साहित्य साधना कर रहे हैं। जहाँ तक चीन का संबंध है, वहाँ की सरकार 'चीन सचित्र' निकालती है, जो मासिक रूप से प्रकाशित होता है। इसके अभी तक लगभग पाँच सौ अंक निकल चुके हैं। लेकिन अब उसका प्रकाशन बंद है। तिब्बत की स्वतंत्रता को लेकर सन् 1988 में धर्मशाला से 'तिब्बत बुलेटिन' का प्रकाशन हो रहा है। यद्यपि इसका प्रकाशन भारत से हो रहा है, परंतु यह तिब्बत की स्वतंत्रता और अस्मिता के प्रश्नों को उठाने के कारण हिंदी पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण हो गई है। इस पत्रिका के संपादक हैं अर्नेस्ट एल्बर्ट तथा प्रकाशन सोनम तोदग्याल करते हैं।

यूरोप के देशों में हिंदी पत्रकारिता

यूरोप के देशों में रूस, ब्रिटेन, नॉर्वे, जर्मनी, फ्रांस, हॉलैंड आदि महत्त्वपूर्ण देश हैं। रूस का भारत के प्रति मैत्री भाव सदैव ही रहा है। भारत की स्वतंत्रता के बाद पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'हिंदी रूसी भाई-भाई' का नारा दिया और भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में भी दोनों देशों में निकटता बढ़ती गई। मास्को तथा ताशकंद रेडियो से हिंदी में कार्यक्रम अनेक वर्षों से प्रसारित हो रहे हैं और वहाँ की सरकार 'सोवियत संघ' तथा 'सोवियत नारी' मासिक हिंदी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कर रही हैं। ये पत्रिकाएँ काफी लोकप्रिय रही हैं। इनके अतिरिक्त 'सोवियत दर्पण', 'यूनोरत हिंदी', 'युवक दर्पण' आदि हिंदी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं। इन हिंदी पत्रिकाओं ने भारत और रूस के नागरिकों को निकट ही नहीं लाया, बल्कि साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संबंधों को भी स्थायी बनाया। रूस में कम्युनिस्ट सरकार के जाने के बाद वहाँ हिंदी का कार्य भी बहुत कम हो गया है।

यूरोप के देशों में इंग्लैंड (ब्रिटेन) का भारत के संदर्भ में विशेष महत्त्व है। भारत लगभग दो सौ वर्षों तक इंग्लैंड का गुलाम रहा

और भारत पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। भारत से अनेक युवक उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड गए और उनमें से कालाकाँकर नरेश ने 'हिंदोस्थान' नामक पत्र का प्रकाशन सन् 1883 में आरंभ किया। इसके बाद आर्य समाज ने 'वैदिक पब्लिकेशंस' का प्रकाशन किया और फिर जे.एस. कौशल के संपादकत्व में 'अमरदीप' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू हुआ। सन् 1964 में 'हिंदी प्रचार परिषद्' ने 'प्रवासिनी' त्रैमासिक निकाला, जिसके संपादक धर्मेंद्र गौतम थे। इसके उपरांत डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी इंग्लैंड में भारतीय उच्चायुक्त बने तो उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित भारतीयों को संगठित किया और 'हिंदी समिति यू.के.' की स्थापना कराई। पद्मेश गुप्त ने इस समिति का कार्यभार ग्रहण किया और 'पुरवाई' (1997) त्रैमासिक हिंदी पत्रिका का आरंभ किया। यह अभी तक प्रकाशित हो रही है तथा प्रायः इंग्लैंड के हिंदी लेखकों की कविताएँ, कहानियाँ, संस्मरण, लेख आदि इसमें दिए जाते हैं। इंग्लैंड के हिंदी लेखकों में दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, उषा राजे सक्सेना, मोहन राणा, सत्येंद्र श्रीवास्तव, कृष्णा अनुराधा, तेजेंद्र शर्मा, कुमार, उषा वर्मा, सोहन राही, राकेश माथुर, के.जी. खंडेलवाल आदि प्रमुख हैं। भारत के कुछ हिंदी साहित्यकारों की रचनाएँ भी 'पुरवाई' में छपती रही हैं, जिनमें डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, लल्लनप्रसाद व्यास, कमल किशोर गोयनका, शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्यामसिंह 'शशि', रामदरश मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, दाऊजी गुप्त, विश्वनाथ प्रताप सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। 'पुरवाई' के प्रकाशन में इंग्लैंड की 'गीतांजलि समुदाय' तथा 'भारतीय भाषा संगम' संस्थाएँ भी अपना सहयोग दे रही हैं। 'पुरवाई' पत्रिका के संपादक पद्मेश गुप्त तथा उनके साथियों ने 14-18 सितंबर, 1999 को लंदन में 'छठा विश्व हिंदी सम्मेलन' भी आयोजित किया और 20 देशों के लगभग 350 प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। भारत सरकार के प्रतिनिधिमंडल के एक सदस्य के रूप में मैंने भी इसमें भाग लिया। इस प्रकार डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने इंग्लैंड में हिंदी की जो पौध लगाई थी, वह अनेक रूपों में फल-फूल रही है। इधर कुछ वर्षों से 'प्रवासी टुडे' भी प्रकाशित हो रही है। इसके संपादक भी पद्मेश गुप्त हैं।

नॉर्वे में सुरेशचंद्र शुक्ल तथा हिमांशु जोशी के पुत्र अमित जोशी ने हिंदी पत्रिकाओं का आरंभ करके नॉर्वे को भी विश्व हिंदी पत्रिका से जोड़ दिया। सुरेशचंद्र शुक्ल ने सन् 1979 में 'परिचय' निकाला और सन् 1988 में 'स्पाइल' (दर्पण) द्वैमासिक पत्रिका निकाली, जो अब तक निकल रही है। 'स्पाइल' पत्रिका हिंदी, नॉर्वेजियन तथा अंग्रेजी भाषा में निकलती है, परंतु आधे से अधिक सामग्री हिंदी में होती है। सुरेशचंद्र शुक्ल ने इस पत्रिका में भारत के लेखकों तथा नॉर्वे के लेखकों दोनों की रचनाएँ प्रकाशित करके दोनों देशों को एक स्थान पर लाने का स्तुत्य प्रयास किया। 'शांति दूत' (1990) भारतीय संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका है, जो हिंदी, अंग्रेजी एवं नॉर्वेजियन भाषा में छपती है। पत्रिका के अनुसार विश्व के सर्वाधिक देशों में पढ़ी जानेवाली आप्रवासी भारतीयों की यह एकमात्र हिंदी पत्रिका है। इसमें कहानी, कविता, लेख, संस्मरण, अनवुाद, समाचार आदि स्तंभ हैं तथा भारतीय एवं विदेशी दोनों ही प्रकार के लेखकों की रचनाएँ होती हैं। पत्रिका की साज-सज्जा तथा प्रस्तुतीकरण मनोरम है। हॉलैंड में इधर डॉ. पुष्पिता ने एक संस्था बनाई है और वे शीघ्र ही एक हिंदी पत्रिका निकालने जा रही हैं।

अफ्रीका के देशों में हिंदी पत्रकारिता

अफ्रीका के मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हिंदी पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। इनमें मॉरीशस का हिंदी पत्रकारिता का इतिहास सबसे महत्त्वपूर्ण है। मॉरीशस के विद्वानों का मत है कि मॉरीशस में हिंदुत्व की धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना से हिंदी पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास हुआ। राजेंद्र अरुण ने मणिलाल डॉक्टर को इसका श्रेय दिया है, जिन्होंने अंग्रेजी शासकों के अत्याचारों तथा अपने बंधुओं की अशिक्षा, अंधविश्वास तथा अमानवीय प्रथाओं से समान रूप से संघर्ष किया। मणिलाल डॉक्टर गांधीजी की प्रेरणा से 13 अक्तूबर, 1907 को मॉरीशस पहुँचे थे और उन्होंने 15 मार्च, 1909 को 'हिंदुस्तानी' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर इसका मूल उद्देश्य इस प्रकार से अंकित था–''व्यक्ति की स्वतंत्रता! मनुष्य का भाईचारा!! जातियों की स्वतंत्रता!!! स्पष्ट था कि इस पर फ्रांसीसी क्रांति की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का प्रभाव था। आरंभ में इसे अंग्रेजी और गुजराती भाषा में प्रकाशित किया गया, पर बाद में इसे अंग्रेजी के साथ हिंदी दो भाषाओं में छापा जाने लगा। इसके 2 मार्च, 1913 के उपलब्ध अंक में 'गणेशी' नाम के किसी कवि की कविता 'होली' तथा किसी अज्ञात लेखक का लेख 'सत्य होली' प्रकाशित हुआ है। इन्हीं रचनाओं से मॉरीशस में हिंदी लेखन का श्रीगणेश हुआ है।

मॉरीशस के इतिहासकारों के अनुसार–'मॉरीशस आर्य पत्रिका' (1911) तथा 'ओरिएंटल गजट' (1912) भी अंग्रेजी-हिंदी की पत्रिकाएँ थीं, परंतु अब उनके कोई अंक उपलब्ध नहीं हैं। इसके उपरांत 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' (1920-24), 'मॉरीशस

मित्र' (1924-32), 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' (1924-40), 'आर्यवीर' (1929-45), 'सनातन धर्मांक' (15 दिसंबर, 1933-42), 'बसंत' (1935, केवल एक अंक प्रकाशित हुआ), 'दुर्गा' (हस्तलिखित पत्रिका-1935-38), 'जागृति' (1939-50), 'मासिक चिट्ठी' (1942-50), 'आर्यवीर जागृति' (1945-50), 'सैनिक (1946-47), 'जनता' (4 मई, 1948-82), 'जमाना' (18 जून, 1948 से आरंभ), 'आर्योदय' (1950 से आरंभ), 'वर्तमान' (1953-54), 'मजदूर' (1956-59), 'अनुराग' (जुलाई 1961-61), 'नवजीवन' (1960-64), 'समाजवाद' (1960-61), 'कांग्रेस' (1964-67), 'बालसखा' (अगस्त 1965 से अक्तूबर, 65), 'अनुराग' (अक्तूबर, 1969-जुलाई, 77), 'दर्पण' (1971-79), 'आभा' (1972-76), 'हमारा देश' (1971-74), 'निर्माण' (1975 केवल एक अंक प्रकाशित), 'विश्व-दर्पण', 'वसंत' (1978 से निरंतर प्रकाशित), 'भारतीय समाचार' (1972 से भारतीय दूतावास द्वारा प्रकाशित), 'प्रभात' (1976-79), 'प्रकाश' (1974 से अनियमित रूप से प्रकाशित), 'परिवर्तन' (सूचना मंत्रालय द्वारा 1977-79 तक प्रकाशित), 'त्रिवेणी' (1974 से पर अब बंद हो चुकी है), 'स्वदेश' (1987-91), 'इंद्रधनुष' (अक्तूबर, 1988 से निरंतर प्रकाशित), 'आक्रोश' (1990 से निरंतर प्रकाशित), 'मुक्ता' (1990-92), 'भारत दर्शन' (1989-91), 'पंकज' (दिसंबर, 1993 से निरंतर प्रकाशित) एवं 'रिमझिम' (जून-जुलाई, 1994 से निरंतर प्रकाशित) आदि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना के बाद डॉ. विनोद बाला अरुण के प्रधान संपादकत्व में 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन हो रहा है। इसका पहला अंक मार्च, 2008 में निकला और अब इसका आठवाँ अंक प्रकाशित होनेवाला है। यह पत्रिका विश्व में हिंदी के कार्यों, प्रकाशनों तथा गतिविधियों को एक स्थान पर देने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। सरिता बुद्धू ने अनेक वर्षों तक हिंदी साप्ताहिक-पत्र निकालकर अद्‌भुत साहस एवं हिंदी-प्रेम का परिचय दिया। इस प्रकार मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास लगभग 90 वर्ष का है और इस कालखंड में लगभग 42 पत्र-पत्रिकाओं ने जन्म लिया। इनमें से अधिकांश पत्रिकाएँ काल-कवलित हो गईं और अब 'वसंत', 'रिमझिम', 'आक्रोश', 'इंद्रधनुष', 'पंकज', 'आर्यावर्त्त' और 'विश्व हिंदी समाचार' हिंदी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक एवं त्रैमासिक सभी प्रकार की पत्रिकाएँ हैं तथा साहित्यिक पत्रिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके संपादकों में मणिलाल डॉक्टर, पं. रामअवध शर्मा, पं. काशीनाथ किष्टो, नृसिंह दास, सूर्यप्रसाद मंगर भगत, जयनारायण राय, राजेंद्र अरुण, रामसेवक तिवारी, रामसुंदर बाबूलाल, पं. दौलत शर्मा, मोहनलाल मोहित, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, धर्मवीर घूरा, छविलाल विदेशी, महेश रामजियावन, विष्णुदत्त मधु, रामदेव धुरंधर, इंद्रदेव भोला, बलवंत सिंह नौबत सिंह, अजामिल माताबदल, अभिमन्यु अनत, सरिता बुद्धू, सत्यदेव टेंगर, डॉ. बीरसेन जागासिंह, पूजानंद नेमा, हेमराज सुंदर, प्रह्लाद रामशरण आदि उल्लेखनीय हैं। इन संपादकों में श्री राजेंद्र अरुण ने 1974 से 1982 तक 'जनता' साप्ताहिक का संपादन कर हिंदी पत्रकारिता को अधुनातन रूप प्रदान किया। कई पत्रकारों को तैयार किया, जो कालांतर में रेडियो, टी.वी और पत्र-पत्रिकाओं के पत्रकार बने।

इस प्रकार मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास लगभग 90 वर्ष का है और इस कालखंड में लगभग 42 पत्र-पत्रिकाओं ने जन्म लिया। इनमें से अधिकांश पत्रिकाएँ काल-कवलित हो गईं और अब 'वसंत', 'रिमझिम', 'आक्रोश', 'इंद्रधनुष', 'पंकज', 'आर्यावर्त्त' और 'विश्व हिंदी समाचार' हिंदी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

अभिमन्यु अनत भी एक ऐसा नाम है, जिसने 'वसंत' पत्रिका का लगभग 20 वर्षों तक संपादन किया तथा अनेक नए लेखकों का निर्माण किया। 'वसंत' के कुछ विशेषांक महत्त्वपूर्ण माने गए और मॉरीशस के हिंदी साहित्य एवं हिंदी पत्रकारिता के विकास में उसके योगदान को स्वीकार किया गया। 'वसंत' ऐसी हिंदी पत्रिका है, जो भारत में भी चर्चित रही और डॉ. हेमराज सुंदर के संपादकत्व में भी उसकी प्रसिद्धि पूर्ववत् बनी हुई है। अभिमन्यु अनत ने सन् 1994 में बाल पत्रिका 'रिमझिम' को आरंभ करके एक नया योगदान किया। उन्होंने बच्चों को हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित किया और हिंदी लेखकों की नई पीढ़ियाँ बनने और उभरने की आधार-शिला रख दी। अब डॉ. हेमराज सुंदर अभिमन्यु अनत की हिंदी पत्रकारिता की परंपरा के वाहक हैं तथा उसे नए रूप में भी विकसित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय

मॉरीशस में डॉ. हेमराज सुंदर के अतिरिक्त अजामिल माताबदल, सत्यदेव टेंगर, प्रह्लाद रामशरण आदि हिंदी पत्रकारिता को जीवित रखे हुए हैं तथा उसके अस्तित्व तथा विकास के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। हिंदी पत्रकारिता के उद्‌भव और विकास में हिंदी परिषद्, आर्य सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, हिंदी लेखक संघ, महात्मा गांधी इंस्टिट्यूट, हिंदी शिक्षक संघ, हिंदी संगठन आदि संस्थाओं ने सक्रिय रूप से सहयोग दिया और अपने देश की पहचान बनाने में सफलता प्राप्त की।

सूरीनाम में भी भारतीयों के जाने और बसने से वहाँ हिंदी पत्रकारिता का आरंभ हुआ। मॉरीशस की तुलना में यद्यपि हिंदी पत्रकारिता विलंब से शुरू हुई, परंतु कुछ हिंदी प्रेमियों तथा आर्य समाज, सनातन धर्म महासभा, सरस्वती प्रेस आदि संस्थाओं ने उसी कर्मठता और लगन से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को शुरू किया। सूरीनाम में आर्य समाज को इसका श्रेय है कि उसने सन् 1964 में 'आर्य दिवाकर' नाम से एक पत्रिका निकाली। इसका प्रकाशन अभी तक हो रहा है। इसी वर्ष पं. शिवरतन के संपादकत्व में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। यह लघु आकार में साहित्यिक पत्रिका थी। इसके बाद 'भारतोदय',डॉ. ज्ञान हंस 'अधीन' के संपादकत्व में 'धर्मप्रकाश', पं. शिवरतन के संपादकत्व में 'वैदिक संदेश', प्रेमचंद के संपादकत्व में 'प्रेम-संदेश', महातम सिंह के संपादकत्व में 'शांति-दूत' आदि का प्रकाशन हुआ, किंतु ये सभी बंद हो गए। इसके साथ 'प्रकाश' और 'विकास' साप्ताहिक पत्र भी निकले, किंतु चल नहीं पाए। सूरीनाम हिंदी परिषद् ने सन् 1984 में 'सूरीनाम दर्पण' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसका मुख्य उद्‌देश्य 'हिंदी पढ़ो ही नहीं, वरन् लिखो भी' था, जिसके मूल में अपनी अस्मिता, स्वाभिमान एवं गौरवमयी प्रतिष्ठा की रक्षा और उनके विकास का भाव था। सूरीनाम में हिंदी पत्रकारिता के विकास में पं. शिवरत्न शास्त्री, महातम सिंह आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है तथा वहाँ पर हुए 'विश्व हिंदी सम्मेलन' ने हिंदी के विकास में ऐतिहासिक कार्य किया है। मैं स्वयं इस सम्मेलन में गया था और पूरा देश हिंदीमय हो गया था।

अमेरिका में भारतीयों ने हिंदी पत्रकारिता का आरंभ किया। अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों, मंदिरों तथा अन्य भारतीय संस्थाओं में हिंदी का शिक्षण हो रहा है, किंतु अमेरिका में रहनेवाले भारतीयों ने सबसे पहले हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह ने 18 अक्तूबर, 1980 को अमेरिका में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' की स्थापना की और इसी वर्ष से 'विश्वा' त्रैमासिक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। यह एक साहित्यिक पत्रिका है और अपने स्तर को बनाए हुए है। 'विश्वा' के अप्रैल, 1998 के अंक में गुलाब खंडेलवाल ने अपने संपादकीय में लिखा है कि 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' भारतीय संस्कृति की ज्योति को प्रज्वलित करने के लिए सचेष्ट है। जिस प्रकार हिमालय से निकलनेवाली गंगा स्थान-स्थान पर विविध नदियों का प्रवाह ग्रहण करती हुई भी अंत तक गंगा ही रहती है, उसी प्रकार हमारी संस्कृति भी आधुनिक युग के अच्छे-अच्छे विचारों को ग्रहण करती, देश-विदेश के तटों की सोंधी सुवास को समेटती, उनका परिष्कार करती हुई आगे बढ़ती जाएगी, इसका हमें विश्वास है। 'विश्वा' का प्रकाशन अब भी अमेरिका से होता है और इसकी संपादक श्रीमती रेण गुप्ता राजवंशी हैं। रेणुजी वहाँ की एक प्रसिद्ध लेखिका हैं और 'जागरण' में भी उनके लेख छपते रहे हैं।

अमेरिका में रामेश्वर अशांत ने 'विश्व हिंदी समिति' की स्थापना की और 'सौरभ' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। 'सौरभ' का पहला अंक दीपावली, 1992 को निकला और इसके पहले संपादकीय में रामेश्वर अशांत ने लिखा कि वे भारत को 'इंडिया' के जाल से मुक्त करना चाहते हैं। 'सौरभ' इस प्रकार भारत को 'इंडिया' के जाल से मुक्त करके 'भारत' बनाने के संकल्प से शुरू होता है और रामेश्वर अशांत के देहांत तक (सन् 1999) निरंतर प्रकाशित होता रहता है। 'सौरभ' के मेरे पास उपलब्ध बारह अंकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सौरभ' का प्रकाशन एक आश्चर्यजनक घटना है। अमेरिका में एक भारतीय के द्वारा इतनी सुंदर पत्रिका का प्रकाशन आश्चर्य में डालता है। इसमें सभी विधाओं की रचनाएँ दी गई हैं तथा साज-सज्जा एवं मुद्रण स्तरीय है। पत्रिका विदेशों में रहनेवाले भारतीय पाठकों को ध्यान में रखकर प्रकाशित की गई है और इसका लक्ष्य इस भारतीय समुदाय में भारत के प्रति प्रेम, उसकी अस्मिता और संस्कृति की रक्षा का भाव उत्पन्न करना है।

अमेरिका में गणित के भारतीय प्रोफेसर डॉ. भूदेव शर्मा ने भी 'विश्व-विवेक' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन करके इसी प्रकार का चमत्कार किया है। विवेक उनका पुत्र था और उसकी अकाल मृत्यु पर उन्होंने 'विश्व-विवेक' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। 'विश्व-विवेक' के प्रवेशांक में उन्होंने भी अपने संपादकीय में पश्चिमी देशों की विकराल दानवी संस्कृति की चर्चा की और कहा कि भारतीयता अर्थात् भारतीय भाषा, भजन, भोजन

तथा भेष आदि सांस्कृतिक तत्त्वों की रक्षा करके ही यहाँ भारतीय संस्कृति की रक्षा की जा सकती है। डॉ. भूदेव शर्मा ने भाषा की भूमिका को रेखांकित किया और इसीलिए हिंदी में पत्रिका निकालने का निर्णय किया। भारत में भी इस पत्रिका का स्वागत हुआ। डॉ. दशरथ ओझा का पत्र इसके अंक-3 में छपा है, जिसमें उन्होंने इस पत्रिका के 'अभूतपूर्व' कहकर प्रशंसा की है। इसी अंक में गुलाब खंडेलवाल ने लिखा है कि यह निर्विवाद है कि हिंदी के प्रचार द्वारा ही इस देश (अमेरिका) में हम भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा कर सकते हैं और अपनी पहचान बनाए रख सकते हैं। इस पत्रिका के अंकों में कविता, कहानी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, व्यंग्य, लेख, हास-परिहास, समाचार, संपादकीय, पत्रांश आदि अनेक विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इस प्रकार 'विश्व विवेक' एक संपूर्ण त्रैमासिक पत्रिका है। विषय की दृष्टि से पश्चिमी और भारतीय जीवन के विविध पक्षों पर पत्रिका में सामग्री उपलब्ध होती है और बार-बार भारतीय धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य, भाषा, जीवन-शैली की रक्षा का स्वर उभरकर सामने आता है।

'विश्व विवेक' ने अमेरिका में भारतीयों के बीच हिंदी भाषा, हिंदू धर्म, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान तथा मूल्यवान परंपराओं को जीवित रखने तथा भारतीयों को संगठित रखकर भारतीयता से जोड़े रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके लेखकों में प्रोफेसर, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, इंजीनियर, डॉक्टर आदि अनेक वर्गों के लेखक हैं, जो हिंदी में लिखते हैं और भारतीयों में हिंदी तथा हिंदुस्तान के प्रति प्रेम और आस्था को बनाए रखते हैं। डॉ. भूदेव शर्मा ने अमेरिका में 'हिंदू विश्वविद्यालय' की स्थापना में सहायता की है तथा सरस्वती नदी, तुलसीदास, भारतीय मिथक आदि पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन भी किए हैं। अंत में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि अमेरिका में प्रकाशित 'सौरभ', 'विश्वा' तथा 'विश्व विवेक' हिंदी पत्रिकाओं ने जो हिंदी पत्रकारिता में कीर्तिमान बनाया है, वह अभूतपूर्व है। हमारी कामना है कि ये पत्रिकाएँ निकलती रहें जिससे अमेरिका में हिंदी साहित्य विकसित और समृद्ध हो तथा भारत में इस 'अमेरिकन हिंदी साहित्य' का अध्ययन-विश्लेषण शुरू कर सकें। इसके साथ कनाडा से 'हिंदी चेतना' त्रैमासिक निकलती है। इसके संपादक प्रो. श्याम त्रिपाठी तथा डॉ. सुधा ओम ढींगरा हैं। इसके प्रेमचंद, नरेंद्र कोहली, कामिल बुल्के विशेषांक बहुत ही पसंद किए गए। 'हिंदी चेतना' तथा उसकी टीम उस क्षेत्र में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। इस संबंध में प्रो. श्याम त्रिपाठी, सुधा ओम ढींगरा का योगदान उल्लेखनीय हैं। सुधाजी की तो कई हिंदी पुस्तकें छप चुकी हैं। कनाडा से ही श्रीमती स्नेह ठाकुर 'वसुधा' नामक पत्रिका निकालती हैं और अनेक वर्षों से हिंदी साहित्य की सेवा कर रही हैं।

'विश्व विवेक' ने अमेरिका में भारतीयों के बीच हिंदी भाषा, हिंदू धर्म, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान तथा मूल्यवान परंपराओं को जीवित रखने तथा भारतीयों को संगठित रखकर भारतीयता से जोड़े रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके लेखकों में प्रोफेसर, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, इंजीनियर, डॉक्टर आदि अनेक वर्गों के लेखक हैं, जो हिंदी में लिखते हैं और भारतीयों में हिंदी तथा हिंदुस्तान के प्रति प्रेम और आस्था को बनाए रखते हैं।

विश्व के कुछ अन्य देशों में भी, जहाँ भारतीय मजदूर बनकर गए, हिंदी पत्रकारिता के प्रमाण मिलते हैं। इनमें गयाना, ट्रिनीडाड एवं टोबैगो तथा फिजी को सम्मिलित किया जाता है। गयाना (पहले ब्रिटिश गयाना) में हिंदी पत्रकारिता का आरंभ 'आर्गोसी' अंग्रेजी दैनिक पत्र में रविवार को एक पृष्ठ हिंदी को देने से आरंभ हुआ। यहाँ भी आर्य समाज ने आर्य-ज्योति' तथा सनातन धर्म सभा ने 'अमर ज्योति' पत्र प्रकाशित किए एवं योगीराज शर्मा ने 'ज्ञानदा' मासिक पत्र निकाला। ट्रिनीडाड एवं टोबैगो में सबसे पहले 'कोहेनूर अखबार' (दैनिक) निकला, जो अब बंद हो गया है। इसके उपरांत हिंदी-अंग्रेजी की मिली-जुली पत्रिका 'ज्योति' मासिक रूप में सन् 1968 में निकली जो अब 'भारतीय विद्या संस्थान' के मुख्य पत्र के रूप में निकलती हैं। इसके संस्थापक संपादक प्रो. हरिशंकर आदेश हैं। आदेशजी ने भारतीय संस्कृति, धर्म, संगीत, साहित्य आदि के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। हिंदी में उनकी 150 से अधिक पुस्तकें हैं। चार तो महाकाव्य ही हैं। वे स्वयं एक संस्था के रूप में हैं। उन्होंने इस मासिक पत्रिका में नवोदित हिंदी लेखकों को प्रोत्साहित किया तथा साहित्यिक सामग्री भी प्रस्तुत की। इस देश में 'हिंदू' तथा 'आर्य संदेश' पत्रों के निकलने के भी प्रमाण मिलते

हैं। फिजी में स्थिति इन देशों से भिन्न है। सन् 1913 में पं. शिवदत्त शर्मा की देख-रेख तथा डॉ. मणिलाल के संपादकत्व में 'सेटलर' का हिंदी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ। फिजी में इससे हिंदी पत्रकारिता का आरंभ हुआ। इसके बाद 'फिजी समाचार' (1923-37) साप्ताहिक निकला, जो काफी लोकप्रिय हुआ। लगभग इसी समय 'भारत पुत्र', 'बुद्धि' एवं 'बुद्धिवाणी' आदि पत्र निकले जो शीघ्र ही बंद हो गए। सन् 1930-40 के बीच 'वैदिक संदेश' तथा 'सनातन धर्म' दो मासिक पत्र निकले, परंतु इन्होंने भी लघु जीवन पाया। सन् 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक शुरू हुआ। इसके संस्थापक-संपादक थे पं. गुरुदयाल शर्मा। इसकी प्रसार संख्या सबसे अधिक है। सन् 1940 के आस-पास 'किसान' (संपादक : पं. वी.डी. लक्ष्मण), 'दीनबंधु' (फिजी कृषक महासंघ का पत्र), 'ज्ञान' और 'तारा' (संपादक : ज्ञानीदास), पुस्तकालय' (आर्य पुस्तकालय का पत्र), 'प्रवासिनी' (संपादक : काशीराम कुमुद), 'प्रकाश' (संपादक : राम खेलावन) आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, परंतु ये सभी शीघ्र ही बंद हो गईं। इसी प्रकार 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश', 'मजदूर' आदि पत्र भी निकले, लेकिन कुछ अंकों के बाद ही अदृश्य हो गए। इसी समय 'जागृति' भी निकला, जो बाद में साप्ताहिक हो गया, लेकिन चल नहीं सका। 'आवाज' साप्ताहिक (1953) और 'झंकार' साप्ताहिक रूप में निकले। इनका जीवन भी कुछ वर्षों का ही रहा।

पं. कमलाप्रसाद मिश्र ने सन् 1960 में 'जय फिजी' पत्र का प्रकाशन शुरू किया। यह अत्यंत लोकप्रिय पत्र है और पिछले दिनों तक निकलता रहा है। पं. विवेकानंद शर्मा के संपादकत्व में सन् 1974 में 'सनातन संदेश' मासिक पत्र निकला। फिजी सरकार ने भी 'राजपूत' (1918-26), 'फिजी वृत्तांत', 'शंख' आदि पत्र निकाले, पर ये भी बंद हो गए। इसके विपरीत 'दि इंडियन टाइम्स' (संपादक : रामसिंह) काफी लोकप्रिय हुआ। इसका प्रकाशन सन् 1945 से आरंभ हुआ। इसी प्रकार 'शांतिदूत' साप्ताहिक (संपादकः पं. अशोक कुमार द्विवेदी) तथा 'सरताज' साप्ताहिक (संपादक : एस.एस. दास) भी लोकप्रिय रहे। डॉ. विवेकानंद शर्मा के संपादकत्व में सन् 1999 में 'फिजी संस्कृति' मासिक पत्र भी आरंभ हुआ। यह हिंदी महा परिषद् की मासिक पत्रिका है, जिसके विवेकानंद शर्मा ही संस्थापक थे। इसका जनवरी, 2000 (अंक : 7) मेरे सामने है। इसके संपादकीय में वे लिखते हैं–''हमारे लोग आए, निहत्थे आए, खाली हाथ आए लेकिन अपने साथ लाए अपनी भाषा, सभ्यता और संस्कृति तथा धर्म और इन सभी के आधार पर बचा लाए अपनी अस्मिता, अपनी पहचान। हमें जमीनें मिलीं, छिन भी गईं, नौकरी मिली, चली गई, लेकिन हमारी पहचान, कोशिशों के बावजूद भी, कोई कभी छीन न सका। हम भारतीय होकर आए थे, भारतीय होकर रहे और भारतीय होकर रहेंगे। और इस स्थिरता के पीछे इसकी शक्ति का राज है हमारी भाषा।'' इस अंक से स्पष्ट है कि यह एक संपूर्ण पत्रिका है। इसमें फिजी और भारत दोनों ही विद्यमान हैं। इसके साथ ही 'हिंदी लेखक संघ' का 'मासिक समाचार बुलेटिन' के रूप में 'लहर' का प्रकाशन सन् 1999 से आरंभ हुआ। इसके अध्यक्ष-संपादक हैं हरिनंदन सिंह। इसके जनवरी, 2000 (अंक : 6) में संपादक ने लिखा है–''राष्ट्र में हिंदी का गौरव बढ़े, हिंदी का प्रचार-प्रसार हो तथा हमारी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य की रक्षा में पूर्ण सफल हों, यही हमारी मंगल-कामना है। हिंदी की लहर ऐसी चले कि सारा देश हिंदी वातावरण की अनुभूति कर सके। हिंदी ने हमें बहुत कुछ दिया है और आगे भी बहुत कुछ देगी, यदि हमने उसमें अपनी आस्था को बनाए रखा।'' इधर फिजी की राजनीतिक स्थिति ने भारतवंशियों के अधिकारों को कम कर दिया है। हिंदी भाषा की क्या स्थिति है, कुछ कहा नहीं जा सकता। डॉ. विवेकानंद शर्मा के देहांत के बाद तो स्थिति निराशापूर्ण है। इधर वहाँ अवधी सम्मेलन होने की चर्चा थी, परंतु सबकुछ अनिश्चित है।

अंत में, विदेशों में हिंदी पत्रकारिता के इस सर्वेक्षण से जो दृश्य बनता है, वह बहुत उत्साहवर्धक न होकर भी संतोषप्रद अवश्य है। भारत में ही जब हिंदी की श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाएँ बंद होती रही हैं, तब विदेशों में हिंदी पत्रकारिता के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना उचित नहीं है। इस सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रमुखता से सामने आता है कि चाहे लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले गए भारतीय मजदूरों के मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड आदि देशों में उनकी वंशज पीढ़ियाँ हों अथवा अमेरिका एवं इंग्लैंड आदि देशों में विगत तीन-चार दशकों पूर्व गए भारतीय बुद्धिजीवी हों, उनकी मुख्य आवश्यकता अपने हिंदू धर्म, संस्कृति, दर्शन, जीवन-पद्धति और उसके द्वारा अपनी अस्मिता को जीवित रखने की है तथा इसके लिए हिंदी भाषा संवाहक बनती है। ये प्रायः सभी भारतीय हिंदी भाषा के द्वारा अपनी संस्कृति और अस्मिता की रक्षा का संकल्प लेते हैं; और अपने-अपने देशों में अपने साधनों से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को शुरू करते हैं और यथाशक्ति उन्हें जीवित रखने का प्रयत्न करते हैं। विदेशों में अपनी अस्मिता की रक्षा का संकट होना स्वाभाविक है।

विश्व के इन देशों में हिंदी पत्रकारिता के उद्भव और विकास से हिंदी भाषा और साहित्य का जो विकास हुआ है, उसका अध्ययन करना आवश्यक है। मेरा दृढ़ मत है कि मॉरीशस, फिजी, अमेरिका तथा इंग्लैंड में इन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा जो हिंदी साहित्य सामने आया है, उसे संकलनों के रूप में प्रकाशित किया जाना चाहिए। ऐसा एक संकलन मैंने 'मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ' शीर्षक से तैयार किया, जो साहित्य अकादेमी से छप गया है। ऐसे ही संकलन कविता, कहानी, लेख, संस्मरण आदि विधाओं के आधार पर निकलने चाहिए, जो भारत के छात्रों के अध्ययन के लिए उपलब्ध हो सकें। वास्तव में तब हम अमेरिका का हिंदी साहित्य, मॉरीशस का हिंदी साहित्य, इंग्लैंड का हिंदी साहित्य जैसे विषय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में रख सकेंगे और हिंदी भाषा एवं साहित्य से भी इन देशों के साथ भारत के संबंधों को और भी स्थायी बना सकेंगे। विदेशों में हिंदी पत्रकारिता को यदि इस दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो उसकी सार्थकता और अनिवार्यता हमारे लिए और भी मूल्यवान हो जाएगी। भारत के साथ भारतेतर देशों की पत्र-पत्रिकाओं का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो कुछ रोचक निष्कर्ष भी सामने आ सकते हैं।

Dr. Kamal Kishore Goyanka
A-98, Ashok Vihar, Phase-I,
Delhi
Email : kkgoyanka@gmail.com
(INDIA)

हिंदी को आप हिंदी कहें या हिंदुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें।

—महात्मा गांधी

यूक्रेन में हिंदी

डॉ. ओलेना मायरोनिवा

यूक्रेन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ सन् 1991 में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही हुआ था।

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में ख़ार्किव, ओदेसा, ल्वीव और कीव में स्थित यूक्रेन के प्रमुख विश्वविद्यालयों में भारत अध्ययन तथा संस्कृत शिक्षण शुरू हो गया। पर राजनैतिक दमन तथा अन्य कारणों के फलस्वरूप 20वीं शती के मध्य तक यूक्रेन में संस्कृत अध्ययन का ह्रास हुआ और अभी तक विधिवत् स्तर पर पुनर्जीवित नहीं हुआ है। भारत विद्या का विकास अनेक कठिनाइयों का सामना करते बड़ी विषम परिस्थितियों में हो रहा था। पर सदा ही भारत से यूक्रेनी लोगों का विशेष आत्मिक लगाव रहा।

अतः नवोत्पन्न राष्ट्र में भारत विद्या सहित समस्त प्राच्यविद्या को पुनर्जीवन प्रदान करने का सवाल उठा। सर्वप्रथम सन् 1992 में प्राच्य भाषाओं की पाठशाला संख्या 1 में हिंदी की पढ़ाई-लिखाई शुरू हो गई। कुछ वर्षों बाद भूतपूर्व उपलब्धियों एवं परंपराओं को याद रखते हुए अपना स्वतंत्र वैज्ञानिक और शैक्षिक स्कूल चलाने के उद्देश्य से सन् 1995 में यूक्रेन के सर्वप्रमुख एवं सर्वप्रतिष्ठित 'कीव राष्ट्रीय तारास शेव्चेंको नामक विश्वविद्यालय' में प्राच्यविद्या विभाग की स्थापना हुई थी।

उच्च शिक्षा के स्तर पर हिंदी अध्ययन-अध्यापन के श्रीगणेश करने का श्रेय यूक्रेनी प्रसिद्ध भारतविद्, लेखक, अनुवादक और शोधकर्ता आचार्य नालिवायको जी को जाता है जो भारतीय संस्कृति के प्रति अभिरुचि बढ़ाने हेतु हिंदी भाषा शुरू में वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाने लगे और कुछ ही समय बाद 'कीव राष्ट्रीय तारास शेव्चेंको विश्वविद्यालय' में पंचवर्षीय पूर्णकालिक औपचारिक पाठ्यक्रम के प्रवर्तक बन गए। धीरे-धीरे यूक्रेन में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ने लगी, जिसके परिणामस्वरूप यूक्रेन की राजधानी कीव में और दो गैर-सरकारी उच्च विद्यालयों (कीव अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय तथा कीव विश्वविद्यालय 'पूर्वी दुनिया') में हिंदी शिक्षण आरंभ हुआ। सन् 2007 से कीव राष्ट्रीय भाषाविज्ञान विश्वविद्यालय में हिंदी पठन-पाठन होने लगा। इस प्रकार आजकल कीव अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में हिंदी गौण विषय के रूप में पढ़ाई जाती है तथा उपर्युक्त अन्य तीन उच्च विद्यालयों में हिंदी के बी.ए (4+1 वर्षों के कोर्स) के पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

यूक्रेन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के डेढ़ दशक के अनुभव पर दृष्टिपात करके यह विदित हो जाता है कि हमारे देश में हिंदी शिक्षण प्रारंभिक निर्माण अवस्था में है जिसके लिए कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ बिलकुल स्वाभाविक होती हैं। एक ओर श्रम मंडी में हिंदी को स्थान न मिलने की तथा आवश्यक भौतिक सुविधा, शैक्षणिक उपकरण व सामग्री आदि के अभाव की स्थिति हिंदी की उचित उन्नति के प्रतिकूल है। पर दूसरी ओर पंद्रह वर्षों में प्राप्त उपलब्धियाँ और हिंदी अध्येताओं की बढ़ती हुई संख्या दरशाती है कि अनेक बाधा-व्यवधान के बावजूद यूक्रेन में हिंदी शिक्षण विकासमान और गतिमान होता जा रहा है। हिंदी विशेषज्ञों की तैयारी में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की छात्रवृत्तियों का बहुत बड़ा योगदान है। आई.सी.सी.आर. प्रोग्राम के अंतर्गत यूक्रेनी छात्रों को भारत जाकर हिंदी सीखने तथा शोध कार्य करने का सुअवसर मिलता है, जो बहुतों के भावी व्यवसाय के लिए निर्णायक और प्रेरणात्मक सिद्ध होता है। भारत में प्रेरित होकर छात्र बड़े उत्साह से हिंदी के प्रचार में जुट जाते हैं।

विगत कुछ वर्षों में हिंदी-प्रेमियों के प्रयत्न तथा यूक्रेन में भारत राजदूतावास की सक्रिय प्रोत्साहनकारी गतिविधियों एवं समर्थन की बदौलत यूक्रेन में हिंदी अध्ययन की दिशा में सकारात्मक परिवर्तन होने लगे। पहली बार हिंदी निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई जिसमें कीव के तीन विश्वविद्यालयों के छात्रों ने भाग लिया। पहली बार द्वितीय अखिल यूक्रेनी भारतविद्या सम्मेलन के अंतर्गत स्वतंत्र रूप से हिंदी शिक्षकों की बैठक हुई जिसमें हिंदी भाषाविज्ञान, साहित्यविज्ञान, शिक्षाविधिविज्ञान संबंधी विषयों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किए गए। अंततः सन् 2007 के मई में हमारी मुख्य आकांक्षा की पूर्ति हो गई--कीव राष्ट्रीय तारास शेव्चेंको विश्वविद्यालय में 'हिंदी भाषा एवं भारतीय साहित्य केंद्र' का उद्घाटन हुआ, जिसके उद्देश्य हैं--यूक्रेन में हिंदी भाषा और भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन को बढ़ावा देना, हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण प्रणाली को सुधारना, हिंदी भाषा के विकास द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार करना आदि। हिंदी विद्यापीठ न होने की अवस्था में ऐसे केंद्र की स्थापना यूक्रेनी भारत विद्या के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ है जिसके बाद हिंदी शिक्षण की उन्नति निःसंदेह गति पकड़ सकेगी।

Dr. Olena Myronicheva
National Taras Schevchenko,
University of Kyiv, Room 26 Kyiv, Ukraine
Email : sitara@i.com.ua
Tel: 0038-044-4144487

30

डेनमार्क में हिंदी: एक चिंतन

अर्चना पैन्यूली

विश्व भर में हिंदुस्तान एक ऐसा देश है जहाँ से काफी बड़ी तादाद में हर वर्ग के लोग दूसरे देशों में प्रवास करते हैं। आज भूमंडल के हर देश में भारतवासी बसे हैं। हिंदुस्तानियों ने जिन भी देशों में प्रवास किया, वहाँ अपनी भारतीय संस्कृति व धार्मिक प्रथाओं को कायम रखने की भरसक कोशिश की। विश्व के अगर एक छोटे से क्षेत्र, स्कैंडिनेवियन देशों की बात करें तो आँकड़े बताते हैं कि सभी स्कैंडिनेवियन देशों में हिंदी समितियाँ व हिंदी सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं जो समय-समय पर भारतीय त्योहारों, राष्ट्रीय दिवसों व अन्य अवसरों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करती रहती हैं। इन कार्यक्रमों में सिर्फ हिंदी भाषा का उपयोग होता है। मेरे चंद अविस्मरणीय अनुभव कुछ ऐसे हैं

कोपनहेगन में दीवाली व अन्य भारतीय उत्सवों में प्रवासी भारतीयों के बच्चों को रंगमंच पर रामचरितमानस की उपकथाओं, प्रेमचंद की कहानियों व श्रीकृष्ण रासलीला पर अभिनय करते देखा है। पिछले वर्ष पंद्रह अगस्त के उपलक्ष्य पर जब एक समिति भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर एक नाट्य प्रस्तुत करवा रही थी तो गोरे बच्चों को डायर, लार्ड माउंटबेटन व अंग्रेज सिपाहियों की भूमिका निभाते देख व उन्हें मंच पर हिंदी बोलते देख सुखद आश्चर्य हुआ। राष्ट्रीय संगीत के रागों पर जब अफगानी, पोलिश व ब्रिटिश गोरी नर्तकियाँ मंचों पर थिरकती हैं तो दर्शक रीझ जाते हैं। कोपनहेगन में एक ब्रिटिश महिला लूसी बैनेन ओडीसी व हिंदी सिनेमा गीतों पर नृत्य पाठशाला चला रही हैं। एक डेनिश महिला ऐनेमेटे कार्पन, प्रेसिडेंट ऑफ इंडियन म्यूजिक सोसाइटी भारतीय संगीत पर पाठशाला चला रही हैं। श्री मनबीर सिंह के नेतृत्व में चलने वाले एशियन म्यूजिक सोसाइटी स्कूल में काफी देशी-विदेशी, हिंदी-अहिंदी भाषी भारतीय वाद्य व संगीत सीखने आते हैं।

बॉलीवुड गाने व नृत्य बाहर विदेशों में मशहूर हैं। इधर-उधर आयोजित होनेवाले कार्यक्रमों में जब हिंदी गानों पर गोरे कलाकार भी अपनी कलाबाजी दिखाते हैं तो दर्शक ताली व सीटी बजाना नहीं छोड़ते। बॉम्बय रोकर्स में गोरे डेनिश नवयुवकों को हिंदी गीत गाते देख लोग अपनी जगह से उठकर नाचने लग जाते हैं। यहाँ तक कि कई अमेरिकन व डेनिश सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाएँ जब-तब अपने कार्यक्रमों में भारतीय स्थानीय कलाकारों को आमंत्रित करती हैं, भारतीय लोकगीत व फिल्मी गानों पर नृत्य प्रस्तुत करने के लिए। हिंदी गाने व नृत्य दर्शकों द्वारा अति सराहे भी जाते हैं।

मंदिरों में धार्मिक क्रियाकलाप निरंतर चलते रहते हैं। मंदिरों से वितरित होनेवाले सभी पत्र विशुद्ध हिंदी भाषा में ही निकलते हैं। उदाहरण के तौर पर डेनमार्क के भारतीय मंदिर में हरेक वर्ष रामायण, महाभारत, दुर्गा अष्टमी पर हिंदी में प्रवचन आयोजित होते रहते हैं। भारतीय समाज की पुरानी व नई पीढ़ी भारी संख्या में सुनने आती है।

इनके अलावा विदेशों में भारतीय प्रभाव की कई आध्यात्मिक संस्थाएँ चलती हैं। आंतरिक शक्ति व शांति की कामना ने भारतीय अध्यात्म को पश्चिम में बड़ी लोकप्रियता दिलवाई है। वर्ड योगा फाउंडेशन के हिसाब से यू.एस.ए. में योग इंडस्ट्री चालीस बिलियन यू.एस.ए. डॉलर पहुँच गई है। अन्य देशों में भी योग व मेडीटेशन का महत्त्व दिन-पर-दिन बढ़ रहा है। हिंदी का प्रभाव इन केंद्रों में स्वतः ही देखने को मिल जाता है।

विदेशों में हिंदी का प्रचार करने का श्रेय फिल्मों को काफी हद तक जाता है। बॉलीवुड फिल्में, जो कि हिंदी सिनेमा के नाम से भी जानी जाती हैं, का विदेशों में काफी मार्केट है। अफगानिस्तान, बँगलादेश, खाड़ी देश, इजराइल, पाकिस्तान, रूस

व लेटिन अमेरिकन देशों में हिंदी फिल्में पहले से ही लोकप्रिय रही हैं। दक्षिण एशियाई व पश्चिमी देशों में भी इनकी लोकप्रियता दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। यू.के., कनाडा व ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में हिंदी फिल्मों के दर्शक संख्या में बढ़ते जा रहे हैं।

वैश्वीकरण के इस युग में जब दूरियाँ घट रही हैं, विभिन्न समुदायों के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श बढ़ रहा है। कई मुल्क एक साथ मिलकर व्यापार करने लगे हैं तो हिंदी को थोड़ी अहमियत मिलनी शुरू हुई है। कम-से-कम विदेशी लोग हिंदी भाषा के अस्तित्व को जानने तो लगे हैं। डेनमार्क स्थित 'स्टुडियो स्कोले' नामक एक प्रतिष्ठित लेंगुएज स्कूल के हिंदी डिपार्टमेंट में अपेक्षाकृत अब काफी विद्यार्थी हैं। वहाँ विदेशियों को हिंदी पढ़ानेवाली श्रीमती रजनी बहल कहती हैं कि पहले सीटें भरनी बड़ी मुश्किल होती थीं। लोग सिर्फ चाईनीज व जापानीज सीखने आते थे। मगर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार बढ़ जाने की वजह से तथा इंडिया की इकोनॉमी सुदृढ़ हो जाने की वजह से लोग हिंदी सीखने लगे हैं। पहले विदेशी भारत को एक गरीब मुल्क समझते थे। वे सोचते थे एक गरीब मुल्क की भाषा जानकर वे क्या करेंगे! मगर भारत की आर्थिक स्थिति बेहतर बनते देख विदेशियों में भारतीय राष्ट्रभाषा के प्रति रुझान बढ़ रहा है।

वहाँ विदेशियों को हिंदी पढ़ानेवाली श्रीमती रजनी बहल कहती हैं कि पहले सीटें भरनी बड़ी मुश्किल होती थीं। लोग सिर्फ चाईनीज व जापानीज सीखने आते थे। मगर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार बढ़ जाने की वजह से तथा इंडिया की इकोनॉमी सुदृढ़ हो जाने की वजह से लोग हिंदी सीखने लगे हैं। पहले विदेशी भारत को एक गरीब मुल्क समझते थे।

तीन प्रकार के विद्यार्थी श्रीमती बहल के पास हिंदी सीखने आते हैं। एक, जो इंडियन कंपनियों के साथ मिलकर व्यापार कर रहे हैं, दूसरे, जो इंडियन कुकिंग सीख रहे हैं और इस सिलसिले में उनका भारत जाना भी होता है। इन दो श्रेणी के लोगों को बस बोलचाल के लिए हिंदी जानने में रुचि है। तीसरा, युवा समुदाय, जिसे भारतीय संस्कृति व दर्शन में जिज्ञासा है, ढंग से हिंदी पढ़ना व लिखना जानना चाहता है। श्रीमती रजनी बहल कहती हैं कि विदेशियों को हिंदी सिखाने में एक दिक्कत जो होती है वह यह कि सरल भाषा में हिंदी उपन्यास वयस्क लोगों के लिए उपलब्ध नहीं हैं, जैसे डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में हैं। किशोरों के लिए जिस हिसाब से अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषा में रोचक उपन्यास लिखे जाते हैं, हिंदी में संख्या न के बराबर है।

श्रीमती कुमुद माथुर पिछले बीस सालों से प्रवासी भारतीयों के बच्चों (पाँच से पंद्रह आयुवर्ग) को हिंदी सिखाने में संलग्न हैं। बच्चों को हिंदी सीखने की यह सुविधाक्लास रूम, किताबें व अध्यापिका का वेतनडेनिश सरकार की तरफ से उपलब्ध हैं। श्रीमती माथुर का कहना है कि बच्चों का हिंदी स्कूल तो किसी तरह घिसट रहा है। मगर उनके पास कुछ डेनिश युवक-युवतियाँ हिंदी सीखने के लिए अलग से आते हैं।

डेनमार्क स्थित भारतीय दूतावास के कर्मचारी श्री राजेश दुग्गल, कल्चर इनफॉरमेशन एवं एडमीनिस्ट्रेशन डेस्क इंचार्ज कहते हैं कि अब काफी गोरे युवक हिंदी सीखने के लिए दूतावास से संपर्क करते हैं। दूतावास विदेशियों को हिंदी सीखने के लिए अपनी तरफ से प्रबंध करने की सोच रहा है।

ये सामाजिक क्रियाकलाप व गतिविधियाँ निःसंदेह हिंदी विकास में सहायक का काम करती हैं। अगर अनौपचारिक स्तर से हटकर औपचारिक स्तर पर विदेशों में हिंदी का विश्लेषण करे और विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी की स्थिति आँके तो स्कैंडिनेवियन देशों में कुछ आँकड़े इस प्रकार मिलते हैं

विभिन्न स्कैंडिनेवियन देशों के लगभग सभी विश्वविद्यालयों व शिक्षा अकादमियों में 'एशियन स्टडीज' एवं 'साउथ एशियन रिलेटड रिसर्च व एडुकेशन' शिक्षण विभाग मौजूद हैं। डेनमार्क की कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में 'डिपार्टमेंट ऑफ एशियन स्टडीज' के अंतर्गत इंडोलॉजी विषय गत पचास वर्षो से विद्यमान है। इसके तहत भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय समाज, भारतीय बौद्धधर्म व भारतीय भाषा और इतिहास विषयों पर पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। कोर्स संस्कृत व पाली में पढ़ाए जाते हैं मगर संस्कृत इनमें प्रमुख भाषा है। विभाग के वर्तमान अध्यक्ष

प्रोफेसर कैनथ जी जूस्क, जो संस्कृत भाषा के विद्वान् हैं, कहते हैं कि वर्तमान में उनके पास संस्कृत के छह विद्यार्थी हैं । मगर आगामी सत्र में विभाग में मॉर्डन इंडिया स्टडीज संलग्न होनेवाली है जिसके तहत हिंदी भाषा भी पढ़ाई जाएगी।

कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के इंग्लिश डिपार्टमेंट में कैथरीन हेनसन हिंदी साहित्य व हिंदी सिनेमा के कोर्स के शिक्षण कार्य में सक्रिय हैं। डेनमार्क के आरहूस यूनिवर्सिटी में समकालीन हिंदी समाज, संस्कृति व इतिहास पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

स्वीडन व नार्वे के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण विभिन्न स्तरों पर होता है। जून 2006 को स्वीडन में SASNET (South Asian Studies Network) का शुभारंभ हुआ। यह एक राष्ट्रीय नेटवर्क है जिसकी जड़ स्वीडन की लुंड यूनिवर्सिटी में जमी है। SASNET का लक्ष्य यूरोपीय देशों में दक्षिण एशियाई देशों से संबंधित शोध, शिक्षा और भाषाओं को प्रेरित करना व बढ़ावा देना है। कई शिक्षण केंद्र SASNET से संयुक्त होकर अंतर्विषयक पाठ्यक्रम चलाते हैं। उपासला विश्वविद्यालय, स्वीडन तो जोर-शोर से गतिशील है ही, इसके अतिरिक्त स्वीडन की लुंड यूनिवर्सिटी व डेनमार्क की ओरसुंड एकेडेमी भी SASNET से संयुक्त होकर अंतर्विषयक पाठ्यक्रम चलाते हैं।

स्कैंडिनेवियन देशों के हिंदी जगत में वैसे तो कई हस्तियाँ सक्रिय हैं मगर डॉ. मिरजा जुनटुनन बहुत चर्चित हैं। डॉ. जुनटुनन स्टॉकहोम यूनिवर्सिटी के पूर्वदेशी भाषा विभाग इंडोलॉजी से संबंधित हैं। आप उपासला यूनिवर्सिटी, स्वीडन द्वारा आरंभ किए दस क्रेडिट इंटरनेट कोर्सों की इंचार्ज भी हैं। 'हिंदी पॉ इंटरनेट' (इंटरनेट पर हिंदी) इनमें सबसे अधिक प्रचलित है।

सितंबर 2006 में डॉ. जुनटुनन ने एन.सी.आई.*, में सबस्टीट्यूट डायरेक्टर व चेयरमेन का पद सँभाला है। एन.सी.आई. नॉर्डिक देशों डेनमार्क, फिनलैंड, नार्वे व स्वीडन के अग्रणी विश्वविद्यालयों का एक संयुक्त संकाय है। यह संकाय सन् 2001 में स्थापित हुआ तथा इसका लक्ष्य नॉर्डिक देशों व भारत के बीच शोध कार्य व उच्च शिक्षा के सहयोग को सुकर करना है। शैक्षिक विनिमय द्वारा एन.सी.आई. इंडो-नॉर्डिक संबंधों को दृढ़ करना चाहता है। एन.सी.आई. नेटवर्क का मुख्य काम नॉर्डिक विद्यार्थियों के लिए भारत व अन्य देशों में समकालीन भारत पर लेक्चर्स, सेमिनार व समर कोर्स इत्यादि आयोजित करना है। विद्यार्थियों को हिंदी विषय-वस्तुओं पर काम करने के लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान होती रहती हैं।

एक हस्ती डॉ. लार्स मार्टिन फोसे भी हैं, जो ओसलो विश्वविद्यालय से जुड़े हैं। डॉ. लार्स मार्टिन को हिंदी साहित्य, हिंदुत्व, वैदिक अध्ययन व आधुनिक भारत में काफी रुचि है। उन्होंने संस्कृत में पी-एच.डी. की उपाधि हासिल की है।

डॉ. लार्स मार्टिन ने 'भगवद्गीता' का अंग्रेजी रूपांतरण भी किया है।

स्वीडन के एक छोटे से खूबसूरत शहर कार्लस्टड में स्थित कार्लस्टड यूनिवर्सिटी में भी हिंदी में दस क्रेडिट कोर्स चलाए जाते हैं। विद्यार्थी हिंदी के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, धर्म व इतिहास का भी अध्ययन करते हैं।

ओसलो यूनिवर्सिटी के भाषा-विषयक व दर्शन विभाग द्वारा आधुनिक हिंदी साहित्य विषय पर कोर्स चलाए जाते हैं। हेलसिंकी विश्वविद्यालय, फिनलैंड में भी इंडोलॉजी विभाग मौजूद है। किस संख्या में इन हिंदी विभागों में विद्यार्थी कोर्स करने आते हैं, वे विभाग कितने सुप्त हैं, कितने सक्रिय यह एक विवादास्पद प्रश्न है। मगर आँकड़े बताते हैं कि कुल मिलाकर पाश्चात्य देशों में लोगों का हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है।

आज विदेशों में कई हिंदी लेखक बसे हैं। विभिन्न पत्रिकाएँ व प्रकाशन प्रवासी हिंदी लेखकों के सर्जन को प्रकाशित करके उनके कार्य को रेखांकित तो कर ही रहे हैं, साथ ही हिंदी साहित्य जगत् को एक विविधता भी प्रदान कर रहे हैं। जिन मुल्कों में हिंदुस्तानी संख्या में काफी हैं, जैसेब्रिटेन, अमेरिका, फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम आदि वहाँ आए दिन हिंदी गोष्ठियाँ, सम्मेलन व हिंदी साहित्यिक विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। साहित्य के रचनात्मक अभियान के तहत आप्रवासियों ने हिंदी की कई वेबसाइट्स व वेब मैगजीन जैसे अभिव्यक्ति/अनुभूति, श्रद्धांजलि, अन्यथा आदि विकसित की हैं। लंदन से 'पुरवाई', ओसलो से 'शांतिदूत व 'स्पेल दर्पण' पत्रिकाओं का संपादन व प्रकाशन हो रहा है।

उपरोक्त सभी तथ्यों ने हिंदी का उपयोग बढ़ाया है। हिंदी भाषा को प्रचारित किया है। मगर अभी प्रयास बहुत करने हैं। हिंदी को राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वह सम्मान दिलाना है जिसकी

*NCI: The Nordic Centre in India (NCI) Consortium, University of Uppsala, Sweden

वह सही अर्थों में अधिकारिणी है। हिंदी एक सुगठित व्याकरण सम्मत और समृद्ध भाषा की सभी अनिवार्यताओं से परिपूर्ण है। हिंदी के पास एक विस्तृत शब्दभंडार ही नहीं, कई उपभाषाओं व शैलियों में वह बोली व लिखी जाती है। इसकी एक निजी आकर्षक व विशिष्ट लिपि है। (अधिकतर देश तो रोमन लिपि में ही अपनी भाषाओं को लिपिबद्ध करके काम चला रहे हैं।) दुनिया में हिंदी बोलनेवालों की संख्या तीसरे नंबर पर है। प्राचीन काल से ही हिंदी का एक समृद्ध व यशस्वी साहित्य लिखा जा चुका है। कैसे हम विश्व की एक प्राचीन व उत्कृष्ट भाषा की अवहेलना कर सकते हैं। मेरी समझ से केवल हिंदुस्तानियों को ही नहीं, विश्व के समस्त बुद्धिजीवियों को हिंदी भाषा एवं साहित्य का सम्मान करना चाहिए। मगर इसके लिए निम्नांकित बिंदुओं पर थोड़ा गौर करना आवश्यक है

हिंदी को व्यावहारिक तौर पर उपयोगी बनाना, ताकि इसे अपनाकर लोग रोजी कमा सकें, स्वयं को सम्मानित व गौरवान्वित महसूस कर सकें।

युग इलेक्ट्रॉनिक हो चला है तो हिंदी को हाईटेक भाषा बनाना ताकि अंग्रेजी कीबोर्ड व वर्णमाला पर से निर्भरता छूटे।

आगामी पीढ़ी के मन में स्कूली स्तर से हिंदी के प्रति रुझान उत्पन्न करना। इसके लिए शिक्षण प्रणाली में सुधारकर हिंदी भाषा को बच्चों के लिए दिलचस्प व रोचक बनाना ताकि उन्हें हिंदी एक ऊबाऊ व नीरस भाषा न लगे और वे हिंदी पढ़ने से कतराएँ नहीं। पाठ्यक्रम में हिंदी लघु व दीर्घ रोचक उपन्यास समावेश करने व बच्चों को उनका बुक रिव्यू करवाने से बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित हो सकती है।

Mrs. Archana Painuli
Bryggergade 6, 4, 2
2100 Copenhagen
Denmark
Email : archana@webspeed.dk

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी।
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।।

—मैथिलीशरण गुप्त

नॉर्वे में हिंदी के विविध आयाम

अमित जोशी

अर्द्धरात्रि के सूर्य' के देश नॉर्वे में हिंदी की स्थिति गत पंद्रह-बीस वर्षों में पर्याप्त सुदृढ़ हुई है। छियालीस लाख की कुल आबादीवाले इस देश में आप्रवासी भारतीयों की संख्या लगभग आठ हजार है। अधिकतर लोग पंजाबी भाषा का प्रयोग करते हैं, परंतु हिंदी सब समझ लेते हैं। नॉर्वे में भारतीय अपने बच्चों को प्राथमिक शालाओं से लेकर उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी पढ़ा सकते हैं। सरकार द्वारा भाषा शिक्षकों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था है।

ओस्लो विश्वविद्यालय में 'इंडो-ईरानियन इंस्टीट्यूट'एक संपूर्ण विभाग है, जहाँ भारतीय तथा ईरानी भाषा परिवार की प्रायः अनेक भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। पहले प्रो. कनूत क्रिस्तियान्सन इस विभाग के अध्यक्ष थे तथा फिन थीसन प्राध्यापक।

प्रो. कनूत क्रिस्तियान्सन ने कुछ वर्ष वाराणसी में रहकर संस्कृत का गहन अध्ययन किया था। वह हिंदी व संस्कृत ही नहीं, बांगला, पंजाबी, नेपाली, मलयालम, मराठी आदि के साथ-साथ उर्दू, फारसी, सिंधी, बलूच, पश्तो आदि भाषाओं पर अपना समान अधिकार रखते थे।

संभवतः वे विश्व में अकेले व्यक्ति थे, जो इतनी सारी भारतीय तथा ईरानी परिवार की भाषाएँ एक साथ जानते थे।

दुर्भाग्य से लगभग कुछ वर्ष पूर्व किसी अज्ञात व्यक्ति ने प्रो. कनतू की हत्या कर दी, जिससे उनके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य अधूरे रह गए।

प्रो. फिन थीसन नॉर्वे के दूसरे हिंदी प्राध्यापक हैं। उन्होंने तो अपना उपनाम ही 'प्रेमचंद' रखा है। वे हिंदी के अलावा उर्दू और पंजाबी भी भली-भाँति बोल और लिख लेते हैं।

प्रो. इनेस फोरनेल ओस्लो विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की अध्यक्षा हैं।

प्रो. जेंस ब्रोरविग यद्यपि इतिहास विभाग के प्रोफेसर हैं। परंतु भारत में रहकर उन्होंने विधिवत् संस्कृत सीखी। उन्होंने 'भगवद्गीता' का मूल संस्कृत से नॉर्वेजियन में अनुवाद किया, जिसे नॉवेजियन पाठकों ने मुक्त-कंठ से सराहा। कहते हैं, दो वर्ष में उसके दो संस्करण बिक गए हैं।

डॉ. मीना ग्रोवर और श्रीमती उषा जैन प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से हिंदी के शिक्षण का कार्य करती हैं। इससे पूर्व स्वर्गीय श्रीमती पूर्णिमा चावला ने लगभग पंद्रह वर्षों तक नॉर्वे में हिंदी पढ़ाने का कार्य किया था। हिंदी के विकास में उनका विशेष योगदान रहा है।

आरंभ के वर्षों में आप्रवासी भारतीय अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाने के प्रति बहुत गंभीर नहीं थे, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में इस धारणा में विशेष परिवर्तन आया है। हिंदी के प्रति लोगों की रुचि बढ़ रही है। विश्व हिंदू परिषद् व सनातन मंदिर सभा की ओर से मिलकर ओस्लो में हिंदी की कक्षा भी चलाई जाती हैं, ताकि आप्रवासी बच्चों को हिंदी के साथ-साथ संस्कार भी मिलें।

यद्यपि नॉर्वे में आप्रवासी भारतीयों ने लगभग तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व से ही रहना आरंभ किया है, किंतु इस अल्प अवधि में ही उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बना ली है। इस बीच उन्होंने अपने ही प्रयत्नों से हिंदी में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया 'परिचय', 'पहचान', 'स्पाइल', 'त्रिवेणी', 'अल्फा-ओमेगा' आदि; पर कुछ समय पश्चात् ये बंद हो गईं। 'स्पाइल' पत्रिका अभी तक चल रही है।

सन् 1990 के जनवरी मास से नॉर्वे से ही एक और पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ, जिसका नाम है 'शांतिदूत'। इसका क्षेत्र मात्र नॉर्वे तक सीमित न रहकर किसी हद तक अंतरराष्ट्रीय है।

विश्व के लगभग एक सौ तीस देशों में करीब एक करोड़ पचास लाख आप्रवासी भारतीय तथा भारतीय मूल के लोग बिखरे हुए हैं। उनके पास एक सशक्त मंच नहीं है। 'शांतिदूत' के प्रकाशन के पीछे यह भी एक उद्देश्य रहा कि उन सबको एक सूत्र में बाँधा जाए तथा अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया जाए। भारत के एक गरिमामय चित्र से उनका साक्षात्कार हो। भारत में जो अच्छा हो रहा है, उससे भी उनका परिचय हो। यह पत्रिका आज विश्व के एक सौ पचास से अधिक देशों तथा एक सौ तीस विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ी जा रही है, जहाँ-जहाँ भारत-विद्या तथा हिंदी पढ़ाई जाती है।

'शांतिदूत' के प्रकाशन के पीछे यह भी एक उद्देश्य रहा कि उन सबको एक सूत्र में बाँधा जाए तथा अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया जाए। भारत के एक गरिमामय चित्र से उनका साक्षात्कार हो। भारत में जो अच्छा हो रहा है, उससे भी उनका परिचय हो। यह पत्रिका आज विश्व के एक सौ पचास से अधिक देशों तथा एक सौ तीस विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ी जा रही है।

नॉर्वे के साथ-साथ स्कैंडेनेवियन देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़े, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर सन् 1995 के आरंभ से 'आप्रवासी टाइम्स' समाचार पत्र का प्रकाशन ओस्लो (नॉर्वे) से आरंभ हुआ।

नॉर्वे में आप्रवासी भारतीयों का कोई अपना रेडियो नहीं है, लेकिन हिंदी-प्रेमी बी.बी.सी. रेडियो, रेडियो डच वैले, ब्रिटिश रेडियो, सनराइज की हिंदी-सेवाओं का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं।

नॉर्वेजियन टेलीविजन में वर्ष दो-तीन बार हिंदी और भारतीय भाषाओं की फिल्में भी देखने को मिल जाती हैं'सब टाइटिल्स' के साथ। सन् 1994 में नॉर्वे तथा स्कैंडेनेवियन देशों में टेलीविजन के हिंदी चैनलों की भरमार शुरू हुई है। इससे हिंदी की लोकप्रियता में भारी अभिवृद्धि हुई! भारतीय दूरदर्शन के प्रसारण का क्षेत्र भी व्यापक हुआ है। संस्था 'स्कैंडेनेविया-भारत साहित्य एवं संस्कृति मंच' के प्रयासों से दूरदर्शन स्कैंडेनेवियन देशों में शुरू किया गया है। पिछले वर्ष से दूरदर्शन स्कैंडेनेवियाई देशों के साथ-साथ विश्व के एक सौ छियालीस देशों में अपना प्रसारण कर रहा है। संस्था का प्रयास है कि केवल नेटवर्क के जरिए दूरदर्शन यूरोप में रहनेवाले आप्रवासियों के घरों तक पहुँचे।

'जी.टी.वी.' तथा 'सोनी टी.वी.' तथा अन्य भारतीय चैनलों के द्वारा भी नॉर्वे में हिंदी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे हैं। टेलीविजन के कार्यक्रमों से हिंदी को अपार लोकप्रियता मिल रही है। भारतीय आप्रवासी ही नहीं, पाकिस्तानी, ईरानी, श्रीलंकाई, अफ्रीकी भी इन्हें बड़ी रुचि के साथ देखते हैं।

नॉर्वे में हिंदी फिल्मों के वीडियो कैसेट खूब बिकते हैं। भारतीय, पाकिस्तानी सभी में इनकी माँग बनी रहती है। नॉर्वे में हिंदी फिल्मों के प्रति आकर्षण पिछले वर्षों काफी बढ़ा है।

बॉलीवुड की जिस भी नई फिल्म का अंतरराष्ट्रीय प्रीमियर यूरोप में होता है तो ओस्लो के 'सूरिया मूरिया' तथा अन्य स्थानीय थिएटरों में भी उसी दिन प्रीमियर होता है। भारतीय, नॉर्वेजियन, पाकिस्तानी, श्रीलंकाई दर्शक हिंदी फिल्में बहुत पसंद करते हैं। इससे उनका हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है।

हिंदी में प्रकाशित फिल्मी पत्रिकाएँ तथा हिंदी की कुछ स्तरीय पत्र-पत्रिकाएँ भी देखने को मिल जाती हैं। ओस्लो के दायकमास्क पुस्तकालय में हिंदी के प्रमुख दैनिक पत्रों के साथ प्रेमचंद, प्रसाद ही नहीं, नए-से-नए हिंदी लेखकों की पुस्तकें भी पढ़ने को मिलती हैं। नॉर्वे में रहनेवाले आप्रवासी जहाँ भी हों, अपनी नगरपालिका के पुस्तकालयों में अपनी भाषा की पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें मँगवा सकते हैं। इसका पूरा-पूरा लाभ भारतीय समुदाय उठाता है।

आप्रवासी भारतीयों की एक अग्रणी संस्था है 'स्कैंडेनेविया-भारत साहित्य एवं संस्कृति मंच'। नॉर्वे के सुविख्यात अभिनेता लार्स अंद्रियास लार्ससन इसके संस्थापक हैं। इस संस्था ने हिंदी को प्रोत्साहित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। सन् 1993 में 'हिंदी : अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में' विषय पर तीन दिवसीय सेमिनार आयोजित किया गया था। भारत से जिसमें (स्व.) डॉ. श्रीकंत जिचकर, (स्व.) श्री शंकरदयाल सिंह, श्रीमती वीणा वर्मा (सांसद) के साथ-साथ सुप्रसिद्ध लेखक श्री हिमांशु

जोशी तथा डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय भी आमंत्रित किए गए थे। यह नॉर्वे के आप्रवासी इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी।

ओस्लो में 'भारत-नॉर्वे मैत्री भवन' के तत्त्वावधान में सन् 1992 में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए एक हिंदी पुस्तकालय की स्थापना की गई थी। पुस्तकालय हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी विशेष भूमिका निभा रहा है।

नॉर्वे में हिंदी के प्रचार-प्रसार में भारतीय दूतावास की भूमिका भी कम उल्लेखनीय नहीं। स्वयं दूतावास में हिंदी का पुस्तकालय एवं वाचनालय है। वहाँ हिंदी के अनेक दैनिक पत्र तथा पत्रिकाएँ पढ़ने को मिल जाती हैं।

भारतीय साहित्य, विशेषकर हिंदी साहित्य, के नॉर्वेजियन में अनुवाद का कार्य भी आगे बढ़ रहा है। लगभग तीस साल पहले नॉर्वेजियन के अग्रणी कवि स्व. पॉल ब्राखे ने हिंदी कविताओं का अंग्रेजी माध्यम से नॉर्वेजियन अनुवाद पुस्तक रूप में प्रकाशित किया था, जिसमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, गिरजा कुमार माथुर आदि की प्रतिनिधि कविताएँ थीं।

अब शीघ्र ही 'रामायण' का नॉर्वेजियन में अनुवाद छप रहा है। हिंदी लेखक श्री हिमांशु जोशी के बहुचर्चित उपन्यास 'कगार की आग' का नॉर्वेजियन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। तीन वर्ष पूर्व विख्यात लेखिका कुर्रतुल ऐन हैदर का उर्दू कहानियों का अनुवाद भी पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ था। इस क्रम में भी अनेक कृतियाँ हैं।

आगामी कुछ वर्षों में हिंदी की बहुत सी प्रमुख पुस्तकें नॉर्वेजियन पाठकों को उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध कराने की योजना बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही है।

सन् 2010 में नॉर्वे में साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था 'सिल्क' एक हिंदी/नॉर्वेजियन सेमिनार का आयोजन कर रही है, जिसका शीर्षक है 'विश्व में महिलाओं की स्थिति और लेखकों का दायित्व'। इस अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में भारतीय व विदेशी साहित्यकार भाग लेंगे। हिंदी के इस अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि नॉर्वे में हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़े।

नॉर्वे व विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए नॉर्वे के विश्व प्रसिद्ध नाटककार हेनरिक इब्सन के सभी नाटकों का अनुवाद नॉर्वेजियन से हिंदी में 'शांतिदूत' चौदह पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर रहा है। ये अनुवाद विश्व के सभी हिंदी नाट्यप्रेमियों को भारत से उपलब्ध कराए जाएँगे। नाटक 'गुड़ियाघर' 'जन शत्रु' बाजार में आ गए हैं।

स्कैंडेनेविया के देशों में फिनलैंड में हेलसिंकी विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। भारत सरकार वहाँ के हिंदी विभाग के लिए एक विजिटिंग प्रोफेसर भेजती है। इसी तरह डेनमार्क व स्वीडन के विश्वविद्यालयों में भी हिंदी के विभाग हैं। अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाने के लिए आप्रवासी भारतीय प्रयास कर रहे हैं।

नॉर्वे में हिंदी का भविष्य हर दृष्टि से उज्ज्वल है। इसका श्रेय प्रबुद्ध आप्रवासी भारतीयों के साथ-साथ नॉर्वे में भारतीय दूतावास, विदेश मंत्रालय (भारत सरकार) को भी जाता है।

Shri Amit Joshi
Martin Lings Vai 33,
0692-Oslo,
Norway
Email: am-joshi@online.no
Tel:0047-22281425

मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है वह स्वदेशभक्त कहलाने लायक नहीं।

महात्मा गांधी

पोलैंड में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : अतीत और वर्तमान

डॉ. दानूता स्ताशिक

पोलैंड में भारत-विद्या का समारंभ गत दो-तीन सौ वर्ष पहले हुआ था, पर ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों से सर्वप्रथम भारत-विद्या विभागों की स्थापना प्रथम महायुद्ध के बाद ही संभव हुई।

'वारसा में सन् 1932 में प्रसिद्ध पोलिश विद्वान् प्रो. स्तानिस्लव शायेर (1899-1941) के प्रयासों से प्राच्य-विद्या संस्थान खुला, जिसके विभागों में भारत-विद्या विभाग भी था।

इसी विभाग में पोलैंड में हिंदी के अध्यापन-कार्य का समारंभ सन् 1938 में हुआ। किंतु एक वर्ष के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के कारण विश्वविद्यालय के सभी संस्थान बंद हो गए।

महायुद्ध के बाद सन् 1953 में वारसा विश्वविद्यालय के प्राच्य-विद्या संस्थान में भारत-विद्या विभाग पुनः आरंभ हुआ। इसके प्रथम अध्यक्ष प्रो. एउगेनियुष स्लुष्केविच बने। शुरू में अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख क्षेत्र संस्कृत भाषा, प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन था, पर शीघ्र ही सन् 1955 में इस केंद्र में हिंदी भाषा और बाद में हिंदी साहित्य का भी अध्ययन-अध्यापन शुरू हो गया।

हिंदी पाठ्यक्रम का शुभारंभ स्वर्गीया श्रीमती तात्याना रूत्कोव्स्का (1926-2002) ने किया। श्रीमती रूत्कोव्स्का ने लेनिनग्राद विश्वविद्यालय से सन 1949 में एम.ए. हिंदी की उपाधि प्राप्त की थी। वे प्रसिद्ध रूसी विद्वान् प्रो. ए.पी. बारान्निकोव की छात्रा रह चुकी थीं। श्रीमती रूत्कोव्स्का के काम का आरंभिक दौर बहुत कठिन था। आमतौर पर किताबों को विदेशी पुस्तकालयों से मँगवाना पड़ता था और फोटोस्टेट मशीनों के न होने के कारण बहुत बार पुस्तकों के लंबे अंशों की प्रतिलिपियाँ हाथ से तैयार करनी पड़ती थीं। सौभाग्यवश इस तरह की कठिनाइयों ने, जो वर्ष प्रतिवर्ष कम होती जा रही थीं, पाठ्यक्रम में बाधा नहीं डाली।

सन् 1961 में विभाग में श्रीमती आलित्स्या कार्लिकोव्स्का आई तथा 1965 में श्रीमती आग्न्येष्का कोवाल्स्का-सोनी, जिन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में आधुनिक हिंदी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। इसके एक साल बाद 1966 में डॉ. मारिया क्रिस्तोफ बृस्की विभाग में आए। वे भारत में छह साल रह चुके थे तथा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके थे। उपर्युक्त इन सभी व्यक्तियों के अलावा बाद में तीन अन्य अध्यापक हिंदी पढ़ाने लगे-श्री अर्तुर कार्प, श्रीमती आन्ना शक्सुत्स्का और श्रीमती दानूता स्ताशिक।

सन् 1983 में 'इंडो-पोलिश सांस्कृतिक सहयोग' के अंतर्गत भारत से आए निम्नलिखित अध्यापकों का हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में उल्लेखनीय योगदान रहा है–कालीकट विश्वविद्यालय के डॉ. गोपीनाथन (1983-84), डॉ. सुरेंद्र भुटाणी (1984-87), केंद्रीय हिंदी संस्थान की स्वर्गीया डॉ. मंजू गुप्ता (1987-1990), दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. हरिमोहन शर्मा (1990-93), हिंदी के मशहूर लेखक डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह (1993-95), हैदराबाद विश्वविद्यालय की प्रोफेसर डॉ. शशि मुदिराज (1996-1998),

जामिया मिलिया विश्वविद्यालय के डॉ. महेंद्रपाल शर्मा (1998-2001) और (2001-2005) दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. हरजेंद्र सिंह चौधरी विभाग में हिंदी के प्रोफेसर थे।

वारसा के भारत-विद्या विभाग में पाठ्यक्रम की अवधि पाँच साल की है, जिसके बाद छात्रों को एम.ए. की उपाधि दी जाती है। एम.ए. शोध-प्रबंधों के विषय आधुनिक या मध्यकालीन हिंदी साहित्य या हिंदी भाषा क्षेत्र के अन्य प्रश्नों से संबंधित हैं, जैसे- 'ढोला मारु रा दूहा' में मध्यकालीन राजस्थानी समाज का वर्णन', 'तुलसीकृत रामचरितमानस में महिलाओं का जगत्', 'मीराबाई की पदावली', 'जयशंकर प्रसाद की कामायनी में बुद्धिवाद और हृदयवाद', 'हिंदी फिल्मों की समालोचना', 'हिंदी समाचार-पत्रों की भाषा में अंग्रेजी शब्दावली', 'दिल्ली के प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम' इत्यादि। आज तक पचास से अधिक विद्यार्थियों को हिंदी में एम.ए. की उपाधि मिल चुकी है।

उल्लेखनीय है कि सन् 1978 से पोलिश विद्यार्थियों को भारत सरकार की ओर से उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति मिलती है, जिसके अंतर्गत वे केंद्रीय हिंदी संस्थान (शुरू में दिल्ली, बाद में आगरा केंद्र) में जाकर हिंदी पढ़ने का बहुत अच्छा अवसर पाते हैं। भारत में रहकर वे हिंदी के महत्त्व एवं गौरव को समझने लगते हैं तथा बहुतों के लिए भारत उनकी दूसरी प्रिय मातृभूमि बन जाती है। हिंदी के माध्यम से उन्हें समग्र भारतीय संस्कृति के मूल तक पहुँचना और भारत की आत्मा को समझना आसान हो जाता है।

उल्लेखनीय है कि सन् 1978 से पोलिश विद्यार्थियों को भारत सरकार की ओर से उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति मिलती है, जिसके अंतर्गत वे केंद्रीय हिंदी संस्थान (शुरू में दिल्ली, बाद में आगरा केंद्र) में जाकर हिंदी पढ़ने का बहुत अच्छा अवसर पाते हैं। भारत में रहकर वे हिंदी के महत्त्व एवं गौरव को समझने लगते हैं तथा बहुतों के लिए भारत उनकी दूसरी प्रिय मातृभूमि बन जाती है।

इस समय विभाग में 18 छात्र हिंदी पढ़ रहे हैं। उनमें से कइयों के लिए हिंदी प्रमुख विषय है, बाकी हिंदी दूसरी या तीसरी भारतीय भाषा के रूप में पढ़ रहे हैं।

अध्यापन के साथ-साथ ही वारसा में हिंदी भाषा तथा साहित्य का शोध भी चल रहा है। अभी तक तीन व्यक्तियों को हिंदी भाषा में पी-एच.डी. की उपाधि दी गई है।

सन् 1968 में श्रीमती रूत्कोव्स्का को 'हिंदी मध्यकालीन साहित्य की मूल विशेषताएँ' थीसिस के आधार पर पी-एच.डी. की उपाधि मिली, 1974 में श्रीमती आग्नेयेष्का कोवाल्स्का-सोनी को सन् 1960-1970 के मध्य लिखित 'हिंदी के नए साहित्य में बुद्धिजीवी-वर्ग का नायक (सांस्कृतिक व्यक्तित्व का सवाल)' थीसिस के आधार पर पी.एच.डी. और 1990 में श्रीमती दानूता स्ताशिक को 'आधुनिक हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक टकराव का वर्णन'-'इंग्लैंड, कनाडा तथा अमेरिका में भारतीय प्रवासी' थीसिस के आधार पर पी.एच.डी. मिली। यह शोध प्रबंध 1994 में भारत से अंग्रेजी में 'आउट ऑफ इंडिया' शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

पोलिश भाषा में लिखी हिंदी साहित्य और भाषा की पुस्तकें विभाग में हो रहे गहरे अध्ययन का परिणाम हैं। ये हैं–डॉ. रूत्कोव्स्का तथा डॉ. स्ताशिक की 'हिंदी साहित्य की रूपरेखा' (1992), डॉ. स्ताशिक की 'हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक दो भाग' (1994/1997 और 1997), 'हिंदी भाषा (1998) और धर्मचारी राजा की कथा' -हिंदी साहित्य में रामायण की परंपरा, (2000)। अनेकानेक विषयों से संबंधित लेख भी पोलिश तथा अंग्रजी में लिखे गए। उदाहरण के लिए-डॉ. रूत्कोव्स्का के लेख : 'भारतीय मध्यकालीन काव्य रासो पर कुछ विचार' (1976), 'सिद्धांत और साहित्यिक रचनाओं के गुण' (1979), 'रीति काव्य में ऐतिहासिक तत्व' (1976), 'प्रेमचंद-हिंदी साहित्य के पिता' (1993) आदि; डॉ. कोवोल्स्का सोनी के लेख : 'आधुनिक हिंदी कविता और स्वदेशी साहित्यिक परंपरा' (1968),

'सन् 1947 के बाद हिंदी कविता के नए मार्ग' (1968) आदि; प्रो. बृस्की के लिखे लेख : 'भारतीय लोक नाटक' (1971), 'बंबइया फिल्म-संस्कृत नाटकों का कलियुगी अवतार' (1980) तथा डॉ. स्ताशिक के लिखे लेख : 'सांस्कृतिक टकराव में भाग लेनेवाले भारतीय आप्रवासी' (1985), 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता' (1989), 'राम-कथा का आधुनिक हिंदी पुनः कथन, भगवान सिंह का ''अपने-अपने राम'' (1998), 'मैथिलीशरण गुप्त' की 'राम-कथा साकेत' (2000), 'रामायण-परंपरा का आधुनीकरण' (2002) इत्यादि।

अध्ययन-अध्यापन के अलावा वारसा के भारत-विद्या विभाग के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी साहित्य के अनुवादकों में सर्वप्रथम स्थान स्वर्गीय पार्नोव्स्की (1934-2000) का है। वे सन् 1980 से 1993 तक विभाग के पुस्तकालय में कार्यरत रहे। उन्होंने हिंदी के कई उपन्यासों, कहानियों तथा कविताओं का अनुवाद किया। फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' इनमें प्रमुख है। पार्नोव्स्कीजी ने अपने अनुवाद में 'रेणु' द्वारा सजीव भाषा से निर्मित मेरीगंज के यथार्थ को पोलिश पाठकों के लिए पुनर्जीवित कर दिया।

सन् 1971 में मुंशी प्रेमचंद की 14 कहानियों का संग्रह 'ठाकुर का कुआँ' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों के अनुवादक श्री पार्नोव्स्की रहे हैं तथा अन्य अनुवादकों में श्री आंजेय युगोव्स्की, श्रीमती कार्लिकोव्स्का, प्रो. बृस्की और डॉ. रूत्कोव्स्का हैं। संग्रह की भूमिका में डॉ. रूत्कोव्स्का ने प्रेमचंद के जीवन और उनकी प्रमुख कृतियों का परिचय दिया।

सन् 1976 में पार्नोव्स्की जी द्वारा अनूदित आधुनिक कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में बारह कहानीकारों की 14 कहानियाँ संकलित हैं, जैसे-धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', कमलेश्वर की 'युद्ध', ज्ञानरंजन की 'घंटा', शेखर जोशी की 'बदबू' आदि। संग्रह की भूमिका डा. कोवाल्स्का-सोनी ने लिखी थी।

श्री पार्नोव्स्की के अनुवाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। कमलेश्वर की 'कस्बे का आदमी' और जार्ज पंचम की नाक', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है', रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा की कुछ कहानियाँ तथा तुलसीकृत 'मानस' और कबीर के 'बीजक' के अंश इनमें प्रमुख हैं।

आधुनिक हिंदी कहानियों के पोलिश अनुवाद एक और संग्रह में उपलब्ध हैं, जिसमें अनेक हिंदी और बँगला कहानीकारों की कहानियाँ संकलित की गई। हिंदी कहानियों का अनुवाद डॉ. रूत्कोव्स्का और श्रीमती कार्लिकोव्स्का ने किया। उक्त संग्रह में प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी', जयशंकर प्रसाद की 'मधुआ', मन्नू भंडारी की 'खोटे सिक्के', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' आदि कहानियाँ संगृहीत हैं।

पोलैंड में भारतीय नाट्य-कला का प्रचार-प्रसार करने का श्रेय प्रो. बृस्की को जाता है। उल्लिखित 'भारतीय लोक-नाटक' लेख के अतिरिक्त उन्होंने डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'नाटक तोता-मैना' पोलिश भाषा में अनूदित किया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' का अनुवाद भी उन्होंने किया, जिसको सन् 1983 में वारसा विश्वविद्यालय के द्वारा आयोजित प्राच्य-नाट्यकला-संबंधी सेमिनार में वारसा के एक थियेटर के अभिनेताओं ने प्रस्तुत किया।

संप्रति विभाग में तीन मुख्य परियोजनाओं पर काम चल रहा है-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (हिंदी साहित्य की चयनिका सहित);
2. हिंदी साहित्य में राम-कथा की परंपरा (जो अंग्रेजी भाषा में लिखी जा रही है);
3. बोलचाल की हिंदी का स्वरूप (जो हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक की अगली कड़ी के रूप में लिखी जा रही है)।

Dr Danuta Stasik
Krakowskie Przedmiescie 26/28
00-927 Warszawa,
Poland
Email: d.stasik@uw.edu.pl
Tel: (+48) 22 55 20 459

33

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा का शिक्षण : चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. हरजेंद्र चौधरी

मैं अपनी बात इस बिंदु से प्रारंभ कर रहा हूँ कि विदेशियों को भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाना तथा उन्हें विदेशों में हिंदी पढ़ाना दो अलग-अलग शिक्षण-स्थितियाँ हैं। हम सब जानते हैं कि भाषा-शिक्षण केवल लिपि, ध्वनि-उच्चारण, व्याकरण या भाषायी संरचना तक सीमित प्रक्रिया नहीं है, बल्कि उसकी व्याप्ति सांस्कृतिक संदर्भों व स्रोतों तक है । विदेशी छात्र-छात्राओं का भारत में रहकर हिंदी सीखना अपेक्षाकृत सहज-सरल है, क्योंकि भारत में वे भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा में अंतर्निहित उसकी अंतर्धारा तक सरलता से अपनी 'पहुँच' बना सकते हैं। यह निर्विवाद तथ्य है कि वास्तविक जीवन-स्थितियों के बीच रहकर तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं और दबावों से घिरा व्यक्ति किसी भी (विदेशी) भाषा को जल्दी और बेहतर ढंग से सीखता है। परंतु हिंदी सीखने के इच्छुक सब विदेशी विद्यार्थियों को तो भारत में रहकर हिंदी सीखने का अवसर नहीं मिलता।

विदेशी विद्यार्थियों को विदेशों में (यानी उनके अपने देशों में) हिंदी पढ़ाने-सिखाने की स्थितियाँ भी वैविध्यपूर्ण हैं। 'विदेशों में हिंदी-शिक्षण' की इन स्थितियों का विश्लेषण-वर्गीकरण करने पर अनेक 'उपवर्ग' हमारे सामने आते है। एक ओर यूरोप व अमेरिका के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाना, दूसरी ओर जापान, चीन, कोरिया आदि एशियाई देशों में हिंदी पढ़ाना तथा तीसरी ओर फीजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद व टोबैगो, सूरीनाम, पाकिस्तान, नेपाल, बँगलादेश और श्रीलंका आदि देशों में हिंदी पढ़ाना अलग-अलग प्रकार के शिक्षण-अनुभवों का आधार बनता है। स्पष्ट है कि एकदम भिन्न संस्कृतिवाले देशों मे (जैसे अमेरिका या पश्चिमी यूरोप के देशों में) हिंदी-शिक्षण के लिए और भारत के साथ सांस्कृतिक संपर्क या समानता रखनेवाले देशों में हिंदी-शिक्षण के लिए अलग-अलग प्रविधि व दृष्टि (एप्रोच) अपनाने की जरूरत पड़ती है। स्पष्ट है कि अलग-अलग देशों में हिंदी-शिक्षण के मार्ग में आनेवाली चुनौतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती/होती हैं।

मोटे तौर पर, हिंदी सीखनेवाले विदेशी विद्यार्थियों तथा उनके देशी-विदेशी शिक्षकों के समक्ष आनेवाली भाषा-शिक्षण संबंधी चुनौतियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे चुनौतियाँ आती हैं जिनका संबंध हिंदी की भाषायी संरचना, लिपि, ध्वनि-उच्चारण, व्याकरणिक व्यवस्था, शब्द-भंडार आदि से है। दूसरे स्थान पर आनेवाली चुनौतियाँ हिंदी भाषा में अंतर्निहित-अनुस्यूत सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ी चुनौतियाँ हैं। तीसरी श्रेणी में भाषा-शिक्षण हेतु उपलब्ध या अनुपलब्ध संसाधनों और मूलभूत ढाँचे से जुड़ी चुनौतियाँ आती हैं।

मैं उपर्युक्त तीनों प्रकार की चुनौतियों पर, अपने अनुभवों की रोशनी में, और विस्तार से बात करना चाहता हूँ। मुझे जापान (1994-1996) तथा पोलैंड (2001-2005) में हिंदी सिखाने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। अपने तथा अपने विद्यार्थियों के समक्ष

आनेवाली कुछ कठिनाइयों-समस्याओं-चुनौतियों के उदाहरण देकर मैं अपनी बात ठीक से स्पष्ट कर सकूँगा।

विदेशी विद्यार्थियों की अपनी मातृ या स्थानीय भाषा की ध्वनियाँ, व्याकरण-व्यवस्था, संरचना जैसे भाषायी तत्त्वों की भिन्नता या समानता उनके हिंदी-शिक्षण पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव डालती है। उदाहरण के तौर पर जापानी विद्यार्थियों के लिए देवनागरी लिपि, मात्राओं (बारहखड़ी) की दृष्टि से, आसान है, पर र, ल, ड, ड़ जैसी ध्वनियों का अलग-अलग उच्चारण कर पाना उनके लिए बहुत कठिन है। व्याकरणिक व्यवस्था की दृष्टि से हिंदी और जापानी में एक महत्त्वपूर्ण समानता (क्रिया का वाक्य के अंत में आना) प्रारंभिक हिंदी-वाक्य-निर्माण में जापानी विद्यार्थियों के लिए सहायक साबित होती है। 'मैं चौधरी हूँ।... मैं सुजुकि हूँ'। ('वाताकुशिवा चौधरी (चौदुरी) देसु'। 'वाताकुशिवा सुजुकि देसु'।) अंग्रेजी भाषा लोगों/विद्यार्थियों को इस संदर्भ में प्रारंभिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उनकी भाषा में क्रिया-पद वाक्य के बीच में आते हैं।...

इसी प्रकार का एक उदाहरण मैं 'पोलैंड में हिंदी-शिक्षण' के अपने अनुभव से दे रहा हूँ। हिंदी की प्रारंभिक गणना सीखने में पोलिश विद्यार्थियों को इसलिए कम कठिनाई हुई कि दोनों भाषाओं के प्रारंभिक अंकों के उच्चारण में समानता है : दो (द्वा), तीन (त्रै), चार (च्चैरे), पाँच (पिएँच), छह (षेष्च), सात (शेदेम), आठ (ओशिएम) आदि। परंतु पुल्लिंग-स्त्रीलिंग शब्दों को अलग करते समय पोलिश विद्यार्थी प्रायः उलझ जाते थे। हिंदी में अधिकतर आकारांत शब्द पुल्लिंग और अधिकतर ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होने के कारण उन्हें कठिनाई होती थी। पोलिश में तो नामों और पारिवारिक नामों तक के 'आकारांत' शब्द स्त्रीलिंग और ईकारांत शब्द पुल्लिंग होते हैं। 'विलानोवस्का' स्त्रीलिंग उपनाम है, जबकि 'विलानोवस्की' पुल्लिंग उपनाम है। उन्हें और अधिक कठिनाई तब होती थी, जब हिंदी के अनेक आकारांत शब्द स्त्रीलिंग के रूप में तथा अनेक ईकारांत शब्द पुल्लिंग के रूप में भी सामने आते थे। 'दही' और 'टिकट' जैसे संज्ञा शब्दों का लिंग हिंदीभाषी लोगों द्वारा बार-बार, मनमरजी से परिवर्तित किए जाने जैसी घटनाएँ विदेशी हिंदी-प्रेमियों के लिए सचमुच संकट का सबब बन जाती हैं। देवनागरी लिपि भी कहीं-कहीं परेशान कर डालती है। 'र' के तीन रूप (र, ्र, ्र) या संयुक्ताक्षरों के साथ 'छोटी इ' की मात्रा (ि) की 'सुदूर स्थिति' जैसी स्थितियाँ भी हिंदी के विदेशी 'नौसिखियों' को कभी-कभी काफी सता देती हैं। इन या ऐसी ही समस्याओं का सामना होने पर विदेशी विद्यार्थी नेटिव-स्पीकर प्राध्यापक की शरण में आते हैं। 'आपका दर्शन करने के लिए आया' के उत्तर में नेटिव स्पीकर प्राध्यापक समझाता है कि 'आपका दर्शन' नहीं, 'आपके दर्शन'। इस संदर्भ में दर्शन हमेशा 'बहुवचन' के रूप में प्रयुक्त होता है। विद्यार्थी गद्‌गद व कृतज्ञ होकर कहता है, 'आपके बहुत-बहुत/अनेक 'धन्यवाद''। नेटिव स्पीकर प्राध्यापक द्वारा स्पष्ट किया जाता है कि धन्यवाद शब्द हमेशा 'एकवचन' रूप में ही प्रयुक्त होता है।... भटकाव, उलझन और अवसाद की संभावनाएँ बनने लगती हैं। इन नकारात्मक संभावनाओं को कुचल-मसल डालने का एक ही उपाय सुझाया जा सकता है और वह है निरंतर अभ्यास! संज्ञा-शब्दों के लिंग-वचन निरंतर अभ्यास द्वारा 'स्मृति' का हिस्सा बन जाते हैं तथा क्रियाओं पर पड़नेवाले (लिंग-वचन के) प्रभावों को 'पैटर्न प्रैक्टिस' द्वारा 'भाषा-बोध' का हिस्सा बनाया जा सकता है।

परंतु पुल्लिंग-स्त्रीलिंग शब्दों को अलग करते समय पोलिश विद्यार्थी प्रायः उलझ जाते थे। हिंदी में अधिकतर आकारांत शब्द पुल्लिंग और अधिकतर ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होने के कारण उन्हें कठिनाई होती थी। पोलिश में तो नामों और पारिवारिक नामों तक के 'आकारांत' शब्द स्त्रीलिंग और ईकारांत शब्द पुल्लिंग होते हैं। 'विलानोवस्का' स्त्रीलिंग उपनाम है, जबकि 'विलानोवस्की' पुल्लिंग उपनाम है।

स्थानीय विदेशी प्राध्यापक अपनी भाषा के माध्यम से हिंदी भाषा के सैद्धांतिक पक्ष (व्याकरण, संरचना आदि) का ज्ञान अपने विद्यार्थियों को देते हैं तो उसके व्यावहारिक पक्ष (उच्चारण, लहजा, बलाघात आदि) का 'बोध' देशज भाषा-भाषी (नेटिव स्पीकर) प्राध्यापक द्वारा करवाया जाता है। यह एक आदर्श स्थिति है। किसी भाषा के व्याकरण के नियमों को याद करके हम उस भाषा के वाक्य बनाने लगेंगे तो काफी समय लगाकर वाक्य ही

बनाते रह जाएँगे, संप्रेषण व संवाद की स्थितियाँ इस बीच हाथ से निकल जाएँगी। इसलिए भाषा के सैद्धांतिक ज्ञान के मुकाबले 'भाषा-बोध' होना अधिक श्रेयस्कर स्थिति है।

भाषा-प्रयोगशालाओं का समुचित उपयोग, हिंदी-फिल्मों का प्रदर्शन, हिंदी गानों का श्रवण, हिंदी नाट्य-मंचन, विदेशी विद्यार्थियों का भारत-भ्रमण तथा भारत-प्रवास जैसी अनेक गतिविधियाँ विदेशी हिंदी-विद्यार्थियों को हिंदी में पारंगत बनाने में कारगर भूमिका निभा सकती हैं। भाषा की आंतरिक प्रकृति से जुड़ी किसी भी समस्या का समाधान निरंतर अभ्यास द्वारा संभव है। पर चुनौतियों का अंत फिर भी नहीं होता।... भाषा में निहित 'संस्कृति' को जानने-समझने की आवश्यकता भी चुनौतियों का एक नया, अटूट सिलसिला शुरू कर देती है।

अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण के उच्चतर पाठ्यक्रम पढ़ाए जाने की व्यवस्था है। मध्य यूरोप के देशों में तो पंचवर्षीय एम.ए. पाठ्यक्रम लागू हैं। अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी में पी-एच.डी. तक की पढ़ाई की व्यवस्था है। अधिकतर विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को पहले दो वर्ष हिंदी भाषा सिखाई जाती है और तीसरे वर्ष से हिंदी-साहित्य उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा बनता है।... तब एक नई कठिनाई सामने आने लगी है, वह है'अभिव्यक्ति की अनेकरूपता'। अर्थात् एक ही बात को प्रकट करने के लिए अलग-अलग अभिव्यक्ति रूपों का उपयोग। कहीं शब्दों का हेरफेर तो कहीं वाक्य-संरचना की भिन्नता। कहीं मुहावरे आने लगते हैं तो कहीं लोकोक्तियाँ 'हस्तक्षेप' करने लगती हैं।... साहित्यिक रचनाओं (उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, खंडकाव्य आदि) में आनेवाले पात्रों के 'व्यवहार' को लेकर भी विदेशी विद्यार्थियों के मन में शंकाएँ और प्रश्न उठने लगते हैं। 'टिपिकल भारतीय मानसिकता' को समझने-स्वीकारने में कभी-कभी उनकी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रोड़े अटकाने लगती है। विदेशी विद्यार्थी और हिंदी-भाषी (नेटिव स्पीकर) प्राध्यापक एक-दूसरे को 'सांस्कृतिक झटके' देते हुए परस्पर एक बेहतर समझ का मार्ग प्रशस्त करते चलते हैं। यह मार्ग सुगम-सरल नहीं है. इस पर पैने काँटे और अनगढ़ पत्थर पड़े होते हैं।

भारतीय संस्कृति, समाज-व्यवस्था, निर्धनता, विषमता आदि के अनेक प्रसंग अनेक विदेशी विद्यार्थियों के लिए नए, अपरिचित और अटपटे हो सकते हैं।... एक पात्र 'क' अपने नौकर को 'आप' कहकर संबोधित करता है तो दूसरा पात्र 'ख' उस नौकर को 'तू' कहकर 'पुकारता' है। नौकर की आर्थिक स्थिति उन दोनों से निम्नतर है लेकिन आयु में नौकर उन दोनों से बड़ा है। इस कथात्मक स्थिति की व्याख्या करना तब और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है, जब कोई विद्यार्थी 'संबोधन-शब्दों' पर सवाल खड़े करता है। पात्र 'क' 'आयु' को सम्मान का आधार मानता है, जबकि 'ख' के लिए किसी की आर्थिक हैसियत अधिक महत्त्व रखती है और आर्थिक हैसियत को देखकर ही वह इस बात का निर्धारण करता है कि किसको कितना सम्मान दिया जाए। आयु और अनुभव को सम्मान देना एक भारतीय संस्कार है, परंतु आर्थिक हैसियत के मुताबिक, उसके आधार पर किसी को तौलना एक शाश्वत तथ्य है। भिन्न-भिन्न 'सोच' रखनेवाले पात्रों का व्यवहार भिन्न-भिन्न होगा ही। 'तू', 'तुम', 'आप' जैसे तीन मध्यम पुरुष सर्वनामों के प्रयोग के पीछे कुछ नियम हैं, जिनका संबंध भाषा में निहित सांस्कृतिक-सामाजिक संदर्भों से है, पात्रों के दृष्टिकोण व 'सोच' से है, उनके संस्कारों, रीति-रिवाजों, पोषण-पद्धतियों और उनकी समूची पृष्ठभूमि से है।

जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है कि किसी विदेशी विद्यार्थी द्वारा भारत में रहकर हिंदी सीखना अधिक सहज-सरल है। कम-से-कम भौतिक पदार्थों संबंधी पदों व (पद-अर्थों) 'पदार्थों' को समझने की दृष्टि से तो भारत में रहकर हिंदी सीखना सरलतर होगा ही। 'लड्डू', 'जलेबी' जैसे जिन पदों व पदार्थों को, उनके 'साक्षात् दर्शन' या 'साक्षात् ग्रहण' द्वारा विदेशी विद्यार्थियों के नेत्रों और जिह्वा को संतुष्ट करके, स्पष्ट किया जा सकता है, वहीं विदेशों में ऐसा करना प्रायः संभव नहीं हो पाता। केवल 'एक प्रकार की मिठाई' कहने से काम नहीं चलता, 'मैदा', 'बेसन', 'चाशनी', 'घी', कड़ाही, हलवाई, भट्ठी, पलटा, 'झरना', 'बूँदी', 'आँच', 'आग' जैसे नए-नए शब्द अवतरित होते जाते हैं और इनका अर्थ समझाते-बताते कक्षा के लिए निर्धारित डेढ़ घंटे की अवधि बीत जाती है। यूँ 'कथा' अटकी रहती है, कहानी या उपन्यास एकाध पृष्ठ ही आगे बढ़ पाते हैं।... हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन भौतिक पदार्थों के पद-अर्थ समझाने-दिखाने का एक मनोरंजक उपाय है।

पर 'अवधारणात्मक' शब्दों या मुहावरों आदि के अर्थ समझाने-बताने के लिए उन शब्दों/मुहावरों में निहित सांस्कृतिक संदर्भों को स्पष्ट करना जरूरी हो जाता है। हाथ माँगना, हाथ पीले करना, श्रीगणेश करना, तिलांजलि देना, सिंदूर पुँछना, चूड़ियाँ फूटना, भीष्म प्रतिज्ञा करना जैसे मुहावरों के अर्थ शब्दों में नहीं,

सांस्कृतिक-सामाजिक-धार्मिक-पौराणिक संदर्भों में निहित हैं। सामाजिक संस्थाओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों, लोक-परंपराओं, पौराणिक-निजंधरी (legendary) कथा-सूत्रों तथा लोक-विश्वासों का स्पष्टीकरण किए बिना बात बनेगी नहीं। इसलिए प्रभावपूर्ण व सार्थक भाषा-शिक्षण के लिए व्यापकतर अध्ययन व गहरी समझ का होना अनिवार्य है। स्पष्ट है कि भाषा-शिक्षण केवल लिपि, ध्वनि-उच्चारण-व्यवस्था, शब्द-भंडार, व्याकरण और भाषायी संरचना की जानकारी तक सीमित प्रक्रिया नहीं है, इसकी परिव्याप्ति व्यापकतर सांस्कृतिक परिवेश व परंपराओं-संस्कारों को अपने दायरे में समेटे हुए है। मैं यहाँ कोई नई 'सैद्धांतिकी' निर्मित करने का प्रयास नहीं कर रहा हूँ, बल्कि इस तथ्य पर बल दे रहा हूँ कि सांस्कृतिक संदर्भों-स्रोतों के ज्ञान के बिना भाषा-ज्ञान अधूरा रहेगा, इसलिए विदेशों में विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाने का दायित्व प्रकारांतर से भारतीय संस्कृति व परंपरा की विफलता के शिक्षण का दायित्व भी है।

भाषण-शिक्षा के समांतर संस्कृति-शिक्षण को सुचारू व प्रभावपूर्ण ढंग से चलाने के लिए तथा इससे संबंधित चुनौतियों के निराकरण के लिए कुछ गतिविधियों/ उपायों का सुविधानुसार उपयोग किया जा सकता है : हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन, हिंदी नाट्य-मंचन, विदेशी विद्यार्थियों की, अवकाश के दौरान, भारत-यात्रा... यदि ऐसा संभव न हो तो 'विदेश' में बसे स्थानीय भारतीय समुदाय में हिंदी-विद्यार्थियों का संपर्क... और अंततः भारत में रहकर हिंदी की पढ़ाई करना। जापान के संदर्भ में तोक्यो गाइदाइ के हिंदी-विद्यार्थी तोक्यो के स्थानीय भारतीय समुदाय के तथा ओसाका गाइदाइ यानी वर्तमान ओसाका विश्वविद्यालय के विश्वभाषाओं के विभाग में अध्ययनरत हिंदी-भाषा के विद्यार्थी कोबे व ओसाका के भारतीय समुदाय के निरंतर संपर्क में रहकर अपने भाषा-शिक्षण व संस्कृति-शिक्षण की प्रक्रिया को बेहतर दिशा-गति दे सकते हैं। यदि व्यस्तता के कारण साप्ताहिक-पाक्षिक-मासिक संपर्क संभव न हो तो कम-से-कम भारतीय पर्वों-त्योहारों के अवसरों का लाभ तो अवश्य ही उठाया जाना चाहिए। हिंदी नाट्य-मंच की परंपरा तो जापान में है ही। बल्कि अब तो हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के नाटक ओसाका व तोक्यो गाइदाइ के विद्यार्थियों द्वारा, संयुक्त रूप से या समांतर रूप से, मंचित करने का परंपरा भी चल पड़ी है। जो विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत संसाधनों या किन्हीं सरकारी या गैर-सरकारी संसाधनों के बल पर एक या एक से अधिक वर्षों के लिए भारत में रहकर हिंदी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं, उनकी हिंदी-शिक्षण-संबंधी अनेक चुनौतियों का निराकरण सहज-सुगम ढंग से हो जाता है। परंतु ऐसे सौभाग्यपूर्ण अवसर की प्राप्ति के रास्ते में अनेक ऐसी कठिनाइयाँ आती हैं, जिन्हें दूर करना कई बार हम लोगों (प्राध्यापकों व विद्यार्थियों) के वश में नहीं होता। ये कठिनाइयाँ 'चुनौतियों की तीसरी श्रेणी' से संबद्ध हैं।

यदि व्यस्तता के कारण साप्ताहिक-पाक्षिक-मासिक संपर्क संभव न हो तो कम-से-कम भारतीय पर्वों-त्योहारों के अवसरों का लाभ तो अवश्य ही उठाया जाना चाहिए। हिंदी नाट्य-मंच की परंपरा तो जापान में है ही। बल्कि अब तो हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के नाटक ओसाका व तोक्यो गाइदाइ के विद्यार्थियों द्वारा, संयुक्त रूप से या समांतर रूप से, मंचित करने का परंपरा भी चल पड़ी है।

इस तीसरे 'चुनौती-रूप' का संबंध एक ओर तो उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक नीतियों से होता है, जिसके विश्वविद्यालयों/ संस्थानों में विदेशी भाषाओं के अधिगम-शिक्षण का प्रावधान है तो दूसरी ओर उन देशों की अर्थव्यवस्था व आर्थिक नीतियों से इनका जुड़ाव है, जिन देशों की भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन उपर्युक्त विश्वविद्यालयों/संस्थानों में हो रहा है।... अब तो लगभग प्रत्येक बड़ा, विकसित या विकासशील, देश इन दोनों वर्गों में शामिल है अर्थात् इसके विश्वविद्यालयों/संस्थानों में विदेशी भाषाओं के विभाग हैं तथा उसकी भाषा/भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था अन्य देशों में उपलब्ध है। मसलन, जापान के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी तथा भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में जापानी भाषा का शिक्षण विधिवत रूप से चल रहा है। किन्हीं दो राष्ट्रों के बीच के राजनयिक संबंध स्वभाविक रूप से उनके बीच विविध प्रकार के सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा एक-दूसरे की भाषा-संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन का आधार बनते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के देशों द्वारा प्रदत्त संसाधनों की उपलब्धता (या उनकी अनुपलब्धता) तथा मूलभूत ढाँचे से जुड़ी चुनौतियाँ भाषा-शिक्षण से परोक्ष रूप से संबंधित होने के बावजूद उसकी प्रक्रिया और परिणामों को गहरे तक प्रभावित करती हैं। उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। मुझे याद है कि लगभग 26-27 वर्ष पहले दिल्ली विश्वविद्यालय के जापानी-चीनी-विभाग की भाषा-प्रयोगशाला के आधुनिकीकरण-नवीकरण के लिए जापान सरकार की ओर से जरूरी तकनीकी सामग्री जुटाकर तथा भारतीय तकनीशियनों के (जापान में) प्रशिक्षण के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता जुटाई गई थी। संभवतः आज तक यह सहयोग जारी है। जापानी भाषा के भारतीय विद्यार्थियों के लिए भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया को अधिक सुगम, रुचिकर व गतिशील बनाने में ऐसे सहयोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।'' मुझे मालूम है कि अनेक देशों में स्थित भारतीय दूतावास उन देशों के अनेक विश्वविद्यालयों/संस्थानों के दक्षिण एशियाई विभागों/भारतविद्या विभागों को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की आपूर्ति करते रहते हैं। 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्' भारतीय भाषाओं व भारतीय संस्कृति का अध्ययन करनेवाले विदेशी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करती है तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों के तहत भारत में भाषा व संस्कृति के प्राध्यापकों को विदेशी विश्वविद्यालयों/संस्थानों में पढ़ाने के लिए प्रतिनियुक्ति पर भेजती है। भारत से संगीतकारों व नर्तकों के दल अनेक देशों में अपनी कला-प्रस्तुतियाँ आयोजित करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा भेजे जाते हैं। भाषा व संस्कृति संबंधी सम्मेलनों के अंतरराष्ट्रीय आयोजनों में भी भारत सरकार अनेक देशों में स्थित अपने दूतावासों के माध्यम से सहयोग करती रहती है। ऐसे सहयोग से संसाधन सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं और प्रायः शैक्षिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ सुचारू रूप से चलती रहती हैं।'' परंतु संसाधनों की अनुपलब्धता अनेक प्रकार की कठिनाइयों को जन्म देती है। मूलभूत ढाँचे की दुर्बलता या उसके अभाव के कारण तो शैक्षिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ ठप्प पड़ने लगती हैं। 'बजट' की समस्या के कारण भाषा-विभागों के बंद होने की कुछ हाल ही की घटनाओं से आप लोग परिचित होंगे।

संसाधनों की कमी या मूलभूत ढाँचे की दुर्बलता की चुनौती से निपटने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों तथा भाषा-संस्कृति-प्रेमी व्यवसायी-वर्ग का सक्रिय होना व निरंतर सक्रिय रहना जरूरी है। सरकारें परस्पर एक-दूसरे देश के विद्यार्थियों को अपने यहाँ आकर अपनी भाषा पढ़ने के अवसर जुटाने के लिए उदार छात्रवृत्तियाँ और निःशुल्क विद्यार्थी-वीजा प्रदान करने जैसी सुविधाएँ जुटा सकती हैं।

अनेक, उथल-पुथल भरे, त्वरित-अप्रत्याशित परिवर्तनों से गुजरती हमारी इस दुनिया को बेहतर बनाने और बनाए रखने के लिए दुनिया भर की सरकारों को संभवतः अपनी आर्थिक-सांस्कृतिक नीतियों का पुनर्निर्धारण करने तथा अफसरशाहों को अधिक सकारात्मक व स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। दुनिया भर के देशों की भाषाओं का शिक्षण जिस अनुपात में बढ़ेगा, उसी अनुपात में विभिन्न देशों-संस्कृतियों के बीच संप्रेषण और पारस्परिक समझ की ठोस पृष्ठभूमि तैयार होगी। मैं समझता हूँ कि विदेशी भाषाओं के शिक्षण का चरम लक्ष्य तो विश्व के विभिन्न देशों के बीच संपर्क, संबंध व पारस्परिक समझ को बढ़ावा देना तथा विश्वशांति को सुनिश्चित करके पृथ्वी नामक हमारे इस ग्रह को सुंदरतर और सुखीतर बनाना है। विदेशी भाषाओं का अध्ययन करनेवाले अनेक विद्यार्थियों को मैं इस दुनिया के ऐसे भावी शांति-दूतों के रूप में देखता हूँ, जो मनुष्यता के लिए एक युद्धहीन, तनावशून्य और शांतिपूर्ण-सहयोगपूर्ण भविष्य की आधारशिला रखने जा रहे हैं। इन युवा-शांतिदूतों को अधिक सक्षम और अधिक संभावनाशील बनाने का महादायित्व अंततः हम प्राध्यापकों पर है। हमें अपनी इस महत्त्वपूर्ण-रचनात्मक भूमिका को एक उदार, स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाकर तथा 'मिशन'-भावना के साथ निभाना होगा। हम प्राध्यापक लोग ऐसा करेंगे तो भाषा-शिक्षण के मार्ग में आनेवाली तमाम चुनौतियाँ धरी-की-धरी रह जाएँगी और समस्याओं के समाधानों को सुगम और स्थायी बनाने का मार्ग अवश्य प्रशस्त होगा।

Dr Harjendra Chawdhary
I-1/32, Sector-7, Rohini,
New Delhi-110085 (INDIA)
Tel: 011-27051548, 011-65726375
Email: visproharwar@yahoo.com

34

नीदरलैंड्स में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति

प्रो. मोहन कांत गौतम

नीदरलैंड्स में जब-जब हिंदी दिवस आता है, तब-तब प्रवासी भारतीय, कुछ अनिवासी भारतीय और डच हिंदी सेवक सभी उस दिन सभा में उमड़ पड़ते हैं। हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति रंगीन झलकियों में प्रकट होकर प्रवासी भारतीयों को स्मृति में आजा-आजी की जन्मभूमि के निकट ले आती है। विद्वान् हिंदी से संबंधित सामाजिक विषयों पर वक्तव्यों के द्वारा अपने विचारों को नई पीढ़ी को पहुँचाते हैं। सभा के अंत में राष्ट्रीय गीत की भाँति सभी मिलकर हिंदी की वंदना करते हैं। शब्द गूँजते हैं।

हिंदी हिंदी हिंदी हैं, हम हिंदी की संतान हैं
हिंदी बोली घर घर बोलें, यही हमारी शान है
आओ मिलकर करें प्रतिज्ञा, हम सब हिंदी बोलेंगे
हिंदी का साहित्य पढ़ेंगे, घर घर में पहुँचाएँगे
हिंदी की गौरव गाथा हम विश्व सकल में गाएँगे
ना भूलो हिंदी को प्यारो, हिंदी की संतान हैं

फिर अनौपचारिक रूप में लोग आगामी वर्ष के लिए हिंदी के सृजन, विकास, प्रचार और प्रसार के लिए योजनाएँ बनाते हैं। गत वर्षों की भाँति हिंदी का अध्ययन और अध्यापन, वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार संस्था के पाठ्यक्रम के साथ स्कूलों में, मंदिरों में और संस्थाओं में गतिशील हो जाता है फिर नए हिंदी दिवस की प्रतीक्षा में प्रतिज्ञा भरे सपने सृजन होते हैं और वर्ष की कार्यविधियाँ भावनाओं के कुहासे में लुप्त हो जाती हैं। इस तरह की प्रक्रिया से कैसे हम हिंदी के विकास को समझें? हिंदी ने पिछले तीन दशकों की यात्रा में क्या पाया है और क्या खोया है? हिंदी को उचित स्थान देने और दिलवाने में नीदरलैंड्स में किन संस्थाओं का योग रहा है? युवा समुदाय पश्चिमीकरण के चोगे में फँसकर भी हिंदी को किस दृष्टि से देखता है? नीदरलैंड्स में हिंदी की स्थिति क्या है और इसका भविष्य कैसे अच्छा बन सकता है? इस तरह के प्रश्न अकसर सभी हिंदी-प्रेमियों के कानों में गूँज उठते हैं।

नीदरलैंड्स पश्चिमी योरोप का एक समृद्धशाली छोटा सा देश है। यहाँ की जनसंख्या कोई 16 मिलियन है जिसमें कोई 1 मिलियन से अधिक अल्पसंख्यक समाज है, जिसमें मुसलिम धर्म के अनुयाई सबसे अधिक हैं। फिर भी यह देश इतिहास में अपनी बहु-संस्कृति, बहु-धार्मिक और बहु-भाषी समाज के लिए विख्यात है। आज यहाँ कोई सवा दो लाख भारतवंशी हैं, जिसमें कोई दो लाख प्रवासी भारतीय, 15000 अनिवासी भारतीय और बाकी अन्य देशों के आए हुए भारतवंशी हैं। प्रवासी भारतीय अपने को सूरीनामी हिंदुस्तानी या हिंदुस्तानी भी कहते हैं। इनके आजा-आजी उत्तर भारत (मुख्य रूप में उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों से) से 5 वर्ष के शर्तबंदी ठेके पर बागानों (प्लानटेशन) में सूरीनाम भेजे गए थे। सन् 1873 से 1916 के प्रवास की अवधि में 64 जहाजों के द्वारा 34000 भारतीय सूरीनाम पहुँचे जिनमें से 11700 भारतीय शर्तबंदी ठेके के बाद भारत लौट गए। भारत से 10000 किलोमीटर दूर रहकर भी इन प्रवासी भारतीयों ने अपनी भाषा को जीवित रखा और सूरीनाम में एक 'लघु भारत' बना लिया। हालाँकि इनकी हिंदी, 'हिंदुस्तानी', 'सूरीनामी हिंदी', 'सरनामी', भोजपुरी, अवधी, मगही आदि भाषाओं की मिश्रित भाषा है पर इसी भाषा के द्वारा इन्होंने भारतीय अस्मिता को जीवित रखा है। हिंदी सच में, प्रवासी भारतीयों की संस्कृति, धर्म और भारत से संबंध बनाए रखने की संपर्क भाषा है।

हिंदी की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए नीदरलैंड्स में

इसकी ऐतिहासिक भूमिका देखनी होगी। डच सरकार और भारतीय दूतावास की हिंदी के प्रति क्या नीति रही है?

डच सरकारी नीति

डच संविधान के आर्टिकल 23 में शिक्षा की स्वतंत्रता पर विशेष महत्त्व दिया गया है। डच राष्ट्र के सभी लोगों को शिक्षा में अपनी भाषा और संस्कृति सीखने की, अध्ययन और अध्यापन की पूरी स्वतंत्रता है। विश्वविद्यालयों में हिंदी सबसे पहले कर्न इंस्टीट्यूट (लायडन विश्वविद्यालय) में इंडोलोजी (भारतीय विद्या) के अंतर्गत प्रो. फोगल ने आरंभ की थी। 20वीं सदी के 8वें दशक में जब सरकार की विषयों को न पढ़ाने की कटौती पर कैंची चली तब नीदरलैंडस के 4 विश्वविद्यालयों में से केवल लायडन विश्वविद्यालय बच सका। यूटरेक्ट विश्वविद्यालय का भारतीय विद्या का उप-संकाय लायडन विश्वविद्यालय में मिला दिया गया। सन् 2008 तक हिंदी अध्यापन चलता रहा। सन् 2009 से हिंदी का अध्यापन सांकेतिक ही नहीं रहकर एक तरह से बंद हो रहा है। भारतीय विद्या के हिंदी, तमिल, इतिहास, संस्कृत और संस्कृति के अध्यापकों को छुट्टी दे दी गई है। हाँ, दिखावे के लिए कभी-कभी हिंदी भाषा पर बातचीत अवश्य होती रहती है। इसका कारण संभवतः भारत की आर्थिक उन्नति है जिसमें भाग लेने के लिए डच व्यापारी लालायित रहते हैं। विडंबना तो यह है कि हिंदी का सर्वप्रथम व्याकरण डच ईस्ट इंडिया कंपनी के राजदूत, जो बाद में आगरा में थे, श्री योहान योसुआ केटलार ने सन् 1698 में लखनऊ में रचा था। हिंदी व्याकरण परंपरा पर डॉ. गौतम काम कर रहे हैं। पहले डॉ. स्खोक्कर भी इसमें रत थे पर उनके अकस्मात् निधन से अब इस योजना को डॉ. गौतम शीघ्र ही पूरा करेंगे।

डच सरकार ने सदैव से अल्पसंख्यक बहुसमाज को भाषा और धर्म-संस्कृति को सीखने की स्वतंत्रता दी थी। धर्म की स्वतंत्रता डच सरकार ने 1798 से ही दे दी थी। यह प्रथा जिसे 'फरजाउलिंग' कहते हैं पिछले सदी के छठे-सातवें दशक तक चलती रही। डच सरकार का मत है कि यदि बहुधार्मिक और बहुभाषी अल्पसंख्यक समाज को डच समाज के साथ मिलाकर (इंटीग्रेशन) रखा जाए तो आवश्यक है कि अल्पसंख्यक समाज अपनी भाषा और धर्म-संस्कृति को उचित रूप में समझे और सीखे। इस योजना को बाद में ओ.ई.टी.सी. 'अपनी भाषा और संस्कृति की शिक्षा' को डच राष्ट्र में मिलकर रहने के रूप में देखा गया। प्रवासी भारतीयों ने डच सरकार की इस योजना का पूरा लाभ उठाया।

डच संविधान के आर्टिकल 23 में शिक्षा की स्वतंत्रता पर विशेष महत्त्व दिया गया है। डच राष्ट्र के सभी लोगों को शिक्षा में अपनी भाषा और संस्कृति सीखने की, अध्ययन और अध्यापन की पूरी स्वतंत्रता है। विश्वविद्यालयों में हिंदी सबसे पहले कर्न इंस्टीट्यूट (लायडन विश्वविद्यालय) में इंडोलोजी (भारतीय विद्या) के अंतर्गत प्रो. फोगल ने आरंभ की थी। 20वीं सदी के 8वें दशक में जब सरकार की विषयों को न पढ़ाने की कटौती पर कैंची चली तब नीदरलैंडस के 4 विश्वविद्यालयों में से केवल लायडन विश्वविद्यालय बच सका।

प्रवासी भारतीय

आज प्रवासी भारतीय या 'हिंदुस्तानी' डच राष्ट्र के एक अंग बन गए हैं किंतु अपनी अस्मिता को सँजोए रखे हैं। उनकी अस्मिता का बोध हिंदी भाषा और उसकी लिपि देवनागरी से और सुदृढ़ हुआ है। आज नीदरलैंड्स में प्रत्येक बड़े नगर में कोई 40-50 हिंदुस्तानी स्वयं चालित संस्थाएँ हैं जिनको डच सरकार से किसी-न-किसी रूप में अनुदान मिलता है। पूरे नीदरलैंड्स में 51 हिंदू मंदिर हैं। 6 हिंदू स्कूल हैं, जहाँ कोई 2000 से अधिक विद्यार्थी पढ़ रहे हैं। इन सभी संस्थाओं में 'हिंदी परिषद् नीदरलैंड्स' और 'हिंदी प्रचार संस्था नीदरलैंड्स' के द्वारा वर्धा के पाठ्यक्रम पर आधारित हिंदी कक्षाएँ चलाई जाती हैं। इस तरह से 'प्रथमा', 'प्रारंभिक', 'प्रवेश', 'मध्यमा', 'कोविद', 'रत्न' और 'आचार्य' की परीक्षाओं का सिलसिला चल उठा है। दोनों हिंदी की संस्थाओं की परीक्षाओं के द्वारा पिछले 26 वर्षों में कोई 15000 विद्यार्थी हिंदी सीख चुके हैं। कुछ पत्रिकाएँ भी हिंदी में आलेख छाप रही हैं। हिंदी को विकसित करने का श्रेय उन प्रवासी भारतीयों को है जिन्होंने धर्म, साधना, हवन, यज्ञ, पूजा, भजन, कीर्तन, बॉलीवुड फिल्म, तीज-त्योहार, लोकगीत, रेडियो और आपसी समाजीकरण से हिंदी को जीवित रखा है। नीदरलैंड्स में राष्ट्रभाषा डच है जो

रोजी-रोटी की भाषा है पर अस्मिता की भाषा हिंदी है जिसे हम 'हिंदी', 'हिंदुस्तानी' या 'सरनामी' कोई भी संज्ञा दें। 'योरोपियन यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट और वेस्ट' का प्रयत्न यही है कि भारतीय विद्या के सभी विषयों का शीघ्र अध्यापन आरंभ हो। प्राइवेट यूनिवर्सिटी होने के कारण राशि की कमी होने से अध्यापन कार्य में विलंब हो रहा है। इसी का एक भाग 'इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन डायस्पोरा' भी विकसित करने का विचार है।

भारत सरकार और अनिवासी भारतवंशी

अनिवासी भारतवंशी, प्रवासी भारतवंशियों की भाँति अपने को अलग रखे हुए हैं। अंग्रेजी अधिकतर उनकी सामाजिक स्तर की भाषा है। हाँ, हिंगलिश वे अवश्य बोलते हैं पर हिंदी के विकास और सृजन के लिए उनकी रुचि नहीं है। इसलिए प्रवासी भारतीयों के अधिवेशनों को नकारते हैं। अभी जब 19 सितंबर, 2009 को भारत सरकार के भारतवंशी मंत्रालय ने एकदिवसीय छोटे भारतीय प्रवासी दिवस का आयोजन किया, उसमें पहली बार प्रवासी भारतीयों की उपस्थिति नजर आई। भारतीय राजदूत श्री मनबीर सिंह के साथ मंत्रालय के मंत्री श्री ब्यालर रवि और उनके सचिव श्री मोहनदास भी थे। नीदरलैंड्स से भी डच सरकार के मंत्री, पूर्व प्रधानमंत्री श्री लुबर और द हेग नगरपालिका के मेयर भी थे। अंत में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन था। भांगड़ा था और सूरीनामी कलाकारों का सांस्कृतिक कार्यक्रम जिसमें लोकगीत, नृत्य और संगीत था। सभी लोगों को कार्यक्रम भी था, बहुत अच्छा लगा।

नीदरलैंड के दो भारतीय राजदूतावास में कोई हिंदी अधिकारी नहीं है। चाहिए कि लंदन के भारतीय दूतावास की भाँति नीदरलैंड्स में भी हिंदी अधिकारी हो जो लाख प्रवासी भारतवंशियों से संबंध रख सके। विश्व हिंदी सम्मेलन की जब बातें होती हैं, लगता है कि भारतीय दूतावास की उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसा हिंदी संस्थाओं से सुनने में आता है। प्रयत्न हमारा है कि आगामी विश्व हिंदी सम्मेलन हॉलैंड में हो, जिससे हिंदी को और विकसित किया जा सके। डच सरकार द्वारा हिंदी को मान्यता देने के साथ हिंदी को योरोपियन भाषा का स्तर भी दिया जा सके। श्रीमती इंदिरा गांधी जी के समय से विश्व हिंदी सम्मलेनों का आयोजन हो रहा है। योरोप के अन्य देशों में भारतीय दूतावास हिंदी को बढ़ावा देने में संलग्न हैं फिर नीदरलैंड्स में क्यों नहीं? हाँ, डच सरकार हिंदी में दुभाषियों की और अनुवादकों की तलाश अवश्य कर रही है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी अभी तक नहीं पहुँची पर लगता है कि प्रवासी भारतीयों के अथक परिश्रम से योरोपियन पार्लियामेंट में अवश्य जा पहुँचेगी। जहाँ अनिवासी भारतवंशियों में अंग्रेजियत सामाजिक स्तर बनकर अन्य भारतवंशियों का बहिष्कार कर रही है वहाँ प्रवासी भारतीयों का सांस्कृतिक वर्चस्व हिंदी भाषा के द्वारा अभिमान बनकर भारतीयता की तलाश में भारत और दूसरे देश-देशों में बसे भारतवंशियों से नाता जोड़ रहा है:

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।'

शायद हिंदी भावनाओं की भाषा बन आत्मीय बन गई है। यथार्थ को अभिव्यक्त करने में भारतीय अस्मिता, संबंधों और मूल्यों की पहचान बन गई है।

सूरीनामी प्रवासी भारतीयों का हिंदी के प्रति विश्वास और लगन मुट्ठियों में कैद नहीं है, वह स्वतंत्र है और जन समाज में समा गया है। आज नए युवक हिंदी में कविताएँ, कहानियाँ, हिंदी व्याकरण, शब्दकोश आदि रच रहे हैं। हिंदी अब सरस्वती का वरदान बन गई है। पूरे दिन प्रवासी रेडियो पर भारतीय भजन, धार्मिक वार्ताएँ, फिल्मी गीत, धर्म और संस्कृति पर हिंदी ही में सबकुछ कहते हैं। सभी हिंदी संस्थाओं को एक साथ मिलाने में 'डच हिंदी समिति' का एक अनूठा योगदान है। अगर अमर सिंह रमण की कविता 'हिंदी से हिंदुस्तानी' सभी भारतवंशी अपना लें तो हिंदी रूपी अमृत उन्हें सजीव रखेगा :

'अय दुनिया के लोगो' सुन लो, एक खबर मस्तानी।
हिंदी सीखो, हिंदी बोलो, हिंदी से ही हिंदुस्तानी।।

Prof M. K. Gautam
Chancellor President & Director of
PIO Institute
European University of West & East
Van Ledenberchstraat 8
2334 AT Leiden
The Netherlands
Email : gautammohan@hotmail.com

35

दक्षिण कोरिया में हिंदी अध्ययन, प्रशिक्षण और शोध

प्रो. आलोक कुमार रॉय

एशिया महाद्वीप के उत्तर-पूर्व में स्थित दक्षिण कोरिया में हिंदी भाषा के अध्ययन, प्रशिक्षण और स्वतंत्रता के बाद के भारत से संबंधित शोध कार्य का इतिहास अब धीरे-धीरे पाँचवें दशक की ओर अग्रसर होता जा रहा है। हिंदी भाषा की पढ़ाई एवं अन्य संबंधित विषयों के अध्ययन एवं शोध का सिलसिला सियोल के हान्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज और बुसान में स्थित बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग में जारी है। इन दो विश्वविद्यालयों में चारवर्षीय स्नातक डिग्री कार्यक्रम चल रहे हैं जहाँ लगभग एक सौ कोरियाई छात्र हर वर्ष प्रवेश लेते हैं। भारत और हिंदी के बारे में छात्रों की दिलचस्पी और प्रतिस्पर्द्धा लगातार बढ़ रही है जिसके कारण इन दोनों ही स्थानों में प्रवेश के इच्छुक छात्रों के लिए हर परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना अत्यावश्यक है। पिछले तीन दशक में कोरिया की आर्थिक उन्नति और भारत के साथ बढ़ते संबंध भी प्रोत्साहन के मुख्य कारण बने हैं। आजकल भारत जाकर हिंदी का प्रशिक्षण और सीधी जानकारी लेने वाले कोरियाई छात्रों की संख्या भी हर साल बढ़ती नजर आ रही है।

अन्य देशों की तुलना में कोरिया में प्रवासी भारतीयों की संख्या को लगभग नहीं के बराबर कहा जा सकता है पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता के साथ कोरिया के लोगों का संबंध ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। सुदूर स्थित होने के बावजूद यहाँ के काफी लोग अपने को भारत का वंशधर मानते आ रहे हैं। कहा जाता है कि लगभग 2000 साल पूर्व भारत के अयोध्या की एक राजकुमारी, जिन्हें यहाँ 'ह हांग ऊ' के नाम से जाना जाता है, पत्थर से बनी एक नाव पर कोरिया के दक्षिण तट पर आई थी और उनकी शादी 'काराक देश' के राजा 'किम सु रो' से हुई थी। इसी कारण सदियों से 'किम' और 'ह' वंश के सभी लोग भारत को अपने पूर्वजों का देश समझते हैं और भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इसके अतिरिक्त कोरिया में बौद्ध धर्म के आरंभ एवं प्रसार को भी कोरियाई लोग कोरिया और भारत के बीच संबंधों की ऐतिहासिक महत्ता के रूप में देखते हैं।

साथ ही दोनों देशों के बीच साहित्यिक संबंधों के आधुनिक इतिहास को देखने से पता चलता है कि प्रथम एशियाई, रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा सन् 1913 में नोबेल पुरस्कार जैसे सम्मान प्राप्त करने के उपरांत से भारत की ही तरह इस गुलाम देश की जनता को भी आशा की एक नई किरण दिखाई दी थी। सन् 1916 से रवींद्रनाथ टैगोर के साहित्य का कोरियन भाषा में अनुवाद जोरों से हुआ और आज भी जारी है। कोरिया में जिन हक मून, किम अक, यांग जू दोंग जैसे महान् साहित्यकारों ने रवींद्र साहित्य के अनुवाद के माध्यम से गुलाम लोगों की आवाज को समाज के सामने रखने का प्रयास किया। सियोल के 'टैगोर सोसाइटी' की संस्थापिका और कवयित्री श्रीमती किम यांग शिक का उत्साह इस मामले में आज भी सराहनीय है, उनके अथक परिश्रम को देखकर भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री की उपाधि भी प्रदान की है।

कोरिया में हिंदी भाषा अध्ययन और प्रशिक्षण की शुरुआत का श्रेय सियोल के हांगुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्ट्डीज को मिलता है जहाँ सन् 1971 में 'हिंदुस्तानी भाषा विभाग' खोलने का निश्चय किया गया था। सन् 1973 में इस विभाग का नाम 'हिंदी विभाग' में परिवर्तित कर दिया गया।

श्री पाक सक इल इसके संस्थापक प्राध्यापक हुए। श्री पाक कोरिया के छन्नाम नामक यूनिवर्सिटी में समाजशास्त्र की पढ़ाई के बाद भारत गए थे। कहा जाता है कि श्री पाक ने भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू को स्वयं पत्र लिखकर भारत में पढ़ाई करने की इच्छा व्यक्त की थी और उनकी मदद माँगी थी।

नेहरू जी ने उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया और दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाई का मौका भी प्रदान किया। सन् 1975 में सुश्री किम वू जो ने भी इसी कला कौशल का फिर से उपयोग किया और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से भारत में शिक्षा ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त किया।

सन् 1972 के पहले सत्र में 30 कोरियाई छात्रों को हांगुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के चारवर्षीय स्नातक डिग्री कार्यक्रम में दाखिल किया गया था। उस समय श्री पाक के अतिरिक्त हिंदी प्रशिक्षण का भार सुश्री अलका (गुप्ता) ने संभाला, जो कोरिया में उच्चशिक्षा के लिए पहले से ही आई हुई थीं। कोरियाई भाषा और संस्कृति का उनका ज्ञान छात्रों के लिए एक वरदान सावित हुआ।

कुछ वर्षों में ही दूसरी और तीसरी पीढ़ी के कुशल कोरियाई प्रशिक्षकों को साथ लेकर बेहतर तैयारी के साथ हिंदी विभाग के प्रसार का काम सुचारु रूप से चलने लगा। हांगुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज ने सियोल के बाहर क्योंगिदो प्रोविंस में स्थित नए कैंपस योंग इन में सन् 1984 में नया हिंदी विभाग खोला जिसमें 25 छात्र हर साल दाखिला ले रहे हैं। आजकल भारत और कोरिया के बढ़ते आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को देखते हुए हिंदी भाषा के अतिरिक्त भारत संबंधी वाणिज्य-व्यापार संबंधित विषयों पर भी ज्ञान उपलब्ध कराने की जरूरत बढ़ती जा रही है।

लेकिन कुछ दिनों में इस हिंदी विभाग को एक बड़ा झटका लगा। जब पारिवारिक कारणों से श्री पाक को त्याग-पत्र देना पड़ा। अर्सत व्यस्तता के एक छोटे दौर के बाद सन् 1977-78 में श्री किम हा ऊ ने नया पदभार सँभाला। उनका ज्ञान मुख्यतः भारतीय दर्शन पर रहा। हर साल नए छात्र प्रवेश लेते रहे पर उपयुक्त शिक्षकों का अभाव बना रहा और बंगलादेश से आए श्री मिर्धा को कुछ समय तक हिंदी पढ़ाने का कार्यभार भी सौंपा गया था।

सन् 1978 के बाद से हांगुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग के विकास का एक नया दौर शुरू हुआ जब इस विभाग के पहले बैच के कुछ छात्र भारत से हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटे थे। श्री सह हैंग जंग, श्री ली जंग हो और सुश्री किम वू जो ने दूसरी पीढ़ी के प्राध्यापकों के रूप में हिंदी शिक्षण का संपूर्ण उत्तरदायित्व सँभाला।

कोरिया के दूसरे बड़े शहर बुसान के बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में हिंदी विभाग खोलने का निश्चय सन् 1983 में हुआ और इसका भार डॉ. को हांग गन ने सँभाला। डॉ. को होंग गन प्रथम कोरियाई नागरिक हैं जिन्होंने इंडियन स्टडीज में पी-एच.डी. की डिग्री हासिल की। शीघ्र ही श्रीमती नो यंग जा को भी हिंदी विभाग में शामिल किया गया। ये दोनों भी श्री सह हैंग जंग, श्री ली जंग हो, और सुश्री किम वू जो के साथ ही हान्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग के प्रथम बैच के छात्र रह चुके थे। सन् 1984 में पहली बार इस विभाग में 50 छात्रों ने दाखिला लिया। शुरू में श्री नरेंद्र मोहन पंकज, प्रोफेसर पी.एन. सिंह ने भारतीय प्राध्यापक के रूप में कार्यभार सँभाला। सन् 1989 से उनकी जगह प्रोफेसर आलोक कुमार राय यहाँ हिंदी, इंडियन स्टडीज का प्राध्यापन और शोध कार्य सँभाल रहे हैं।

कुछ वर्षों में ही दूसरी और तीसरी पीढ़ी के कुशल कोरियाई प्रशिक्षकों को साथ लेकर बेहतर तैयारी के साथ हिंदी विभाग के प्रसार का काम सुचारु रूप से चलने लगा। हान्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज ने सियोल के बाहर क्योंगिदो प्रोविंस में स्थित नए कैंपस योंग इन में सन् 1984 में नया हिंदी विभाग खोला जिसमें 25 छात्र हर साल दाखिला ले रहे हैं। आजकल भारत और कोरिया के बढ़ते आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को देखते हुए हिंदी भाषा के अतिरिक्त भारत संबंधी वाणिज्य-व्यापार संबंधित विषयों पर भी ज्ञान उपलब्ध कराने की जरूरत बढ़ती जा रही है। इसी कारण बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में सन् 2005 में एक नया विभाग तथा प्रोग्राम शुरू किया गया है जहाँ भारत के साथ बढ़ते व्यापार संबंधी विषयों की विशेष शिक्षा प्रदान की जा रही है। यहाँ हर साल 20 छात्रों को प्रवेश दिया जाता है।

जाहिर है बहुत-सी मुश्किलों के बावजूद पिछले चालीस वर्षों के दौरान कोरिया में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रशिक्षण और अनुसंधान कार्य में काफी प्रगति हुई है जिसका श्रेय भारत में उच्च

शिक्षा प्राप्त दूसरी और तीसरी पीढ़ी के भाषाविदों और शोधकर्ताओं को जाता है। सह हैंग जंग, ली जंग हो, किम वू जो, नो यंग जा, छवे जोंग छान, इम गुन दोंग, ली उन गु आदि कोरियाई भाषाविदों का योगदान इस क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखता है। कोरिया में हिंदी शिक्षण में भारतीयों के रूप में कर्ण सिंह चौहान, दिविक रमेश, ज्ञानम जी, रवींद्र गर्गेश, एम.पी. शर्मा, प्रतिभा रामचंद्र मुद्लिअर जैसे भाषाविदों का योगदान विशेष रूप से सराहनीय रहा है। कोरियन-हिंदी शब्दकोश का प्रकाशन यहाँ हिंदी के विकास और प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कोरियन साहित्य के हिंदी में अनुवाद का कार्य भी अब आगे बढ़ने लगा है। जहाँ किम वू जो और कर्ण सिंह चौहान ने 'पहाड़ में फूल' कोरियाई कविता के संग्रह का अनुवाद किया है, वहीं आलोक राय और नो यौंग जा ने कोरिया के प्रसिद्ध उपन्यासकार छवे इन हून की प्रमुख रचना 'क्वांगजांग' को हिंदी में 'रंगमंच' के नाम से प्रकाशित किया है।

स्थान और काल के परिवर्तन के अनुकूल अब कोरिया में हिंदी भाषा और भाषा विज्ञान ही नहीं, भारतीय दर्शन, इतिहास, सभ्यता और संस्कृति, समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र और वाणिज्य के क्षेत्र में उभरते प्रतिभाओं की अब कमी नहीं रह गई है। कोरियन एसोसिएशन ऑफ इंडियन स्टडीज की छत्र-छाया में अब सभी प्रतिभाओं का समावेश संभव हो पाया है। विभिन्न क्षेत्रों में शोध कार्य लगातार चल रहे हैं जिनमें को होंग गन, आन जंग हन, ना यून दो, ली क्वांग सु, होंग सोंग उक, जो दोंग इल, ली जे सुक, किम क्यंग हाक, क्वन कि छल, किम छान वान, किम मी सुक, पाक जंग सक, जंग छे संग, को थे जिन आदि का योगदान बहुत ही सराहनीय रहा है।

आजकल भारत के बाजार में भाषा से संबंधित एक विशेष बात देखने को मिल रही है कि कोरिया की कुछ कंपनियाँ भारत में भारतीय भाषाओं का प्रयोग कर उनके व्यापारिक प्रसार में एक अभूतपूर्व भूमिका निभा रही हैं। व्यापार के विस्तार और अपने ग्राहकों से नजदीकी संबंध बढ़ाने के लिए भारत में घरेलू काम में आनेवाली कोरियन इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक मशीनों के इलेक्ट्रॉनिक डिसप्ले पैनल पर सामसुंग ब्रांड ने पहली बार अंग्रेजी की जगह हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग करना प्रारंभ किया है जो देशी व्यापार जगत में एक अभूतपूर्व पहल है। इसका आश्चर्यजनक प्रभाव ग्राहकों पर ही नहीं हो रहा है, बल्कि उनका यह प्रयास अंग्रेजी के प्रभाव से अनुप्रेरित भारतीयों के लिए व्यापारिक दृष्टि से एक ताजगी भरी चुनौती बनकर सामने आ गया है।

पिछले चार दशक के महत्त्वपूर्ण अनुभव और सफलताओं को मद्देनजर रखकर यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि अगले वर्षों में कोरिया में हिंदी साहित्य और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि भारत संबंधित सभी विषयों पर अध्ययन और शोध कार्य में और भी तेजी आयेगी और अभूतपूर्व सफलता भी मिलेगी। साथ ही एक चुनौती भी सामने आ रही है कि हर साल सौ से भी अधिक स्नातक छात्रों के रोजगार की समस्या का समाधान कैसे किया जाएगा।

Prof Alok Kumar Roy
Dean, International Language Education Center
Dean, Lifelong Education Center
15 Seokporo, Nam-Gu, Busan, 608-738, Korea
Email:alok@pufs.ac.kr
Tel:82-51-640-3122

36

श्रीलंका में हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन

प्रो. उपुल रंजीत हेवावितानगमगे

वास्तव में श्रीलंका में हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन का लगभग पाँच दशकों से अधिक समय का इतिहास दृष्टिगत होता है। इसकी पृष्ठभूमि इससे भी लगभग 7 दशकों से पहले निर्मित हो गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, यानी सन् 1880 में The Elphiniston Dramatic Company सज्ञक एक फारसी नाटक दल का मुंबई से श्रीलंका पहुँचना एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इस नाटक दल ने न केवल सिंहली रंगमंच को प्रभावित किया, बल्कि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत को भी रसिक जनों से अवगत कराया। इसी के साथ सिंहली रंगमंच में एक ऐसी नई प्रक्रिया आरंभ हो गई, जिसके अधीन रामायण, इद्रसभा, सत्य हरिश्चंद्र आदि भारतीय संभाव्य साहित्य से संवंधित कथाओं का अनुवाद, रूपांतरण तथा मंचन होने लगा। इन्हीं नाटकों के संगीत संयोजन कराने हेतु भारतीय संगीतज्ञों को भी बुलाया गया। उपलब्ध जानकारियों के अनुसार श्रीलंका के रंगमंच से संबंधित कलाकार न केवल भारतीय कथाओं से प्रभावित हुए, बल्कि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ उत्तर भारतीय संस्कृति तथा विशेषतः हिंदी भाषा से भी। इसी वातावरण से लंका के आधुनिक कलाकारों को एक ऐसी प्रेरणा भी मिली कि वे स्वयं कोलकाता स्थित शांतिनिकेतन, लखनऊ स्थित भातखंडे संगीत विद्यापीठ (वर्तमान में भातखंडे संगीत विश्वविद्यालय) आदि अनेक प्रतिष्ठित कला संस्थाओं में प्रवेश लेकर विभिन्न कलाओं का अध्ययन करने लगे।

इस संदर्भ में 20वीं शती के पूर्वार्ध में (1934 तथा 1941) हुई महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की लंका यात्राएँ भी अतिशय महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। इन यात्राओं से तत्कालीन श्रीलंकाई स्वतंत्रता आंदोलन, साहित्य तथा कला आदि क्षेत्रों के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण प्रोत्साहन अवश्य मिला, जो लंका में कार्यान्वित समस्त भारतीय अध्ययनों के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय तथ्य माना जाता है। तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से प्रेरित लंकावासी जनता न केवल ब्रितानी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध आंदोलन चलाने हेतु आगे आ गई, बल्कि महात्मा गांधी जैसे भारतीय नेताओं के महान् व्यक्तित्व तथा उनकी जीवन-शैली आदि से भी अत्यंत प्रभावित हो गई। परिणामतः अनेक संस्थाओं की स्थापना की जाने लगी। राष्ट्रीय जागरूकता बढ़ाते हुए 'सादा जीवन उच्च विचार' आदि तद्‌युगीन भारतीय आदर्शों को भी अपनाना, इन संस्थाओं का मुख्य उद्‌देश्य रहा। इन्हीं परिस्थितियों ने श्रीलंका में हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय आदर्शों से प्रेरित अनेक लंकावासी विभिन्न विषयों, जैसे हिंदी भाषा साहित्य ललित कला, आयुर्वेद आदि का ज्ञान प्राप्त करने हेतु भारत जाने लगे। के.एम. डब्लिव, कुरुप्पु, पूज्य भिक्षु बबॅरेन्दे सिरि सीवली थेरो, पूज्य भिक्षु कलल्‌अॅल्ले आनंद सागर थेरा, डी.बी. धनपाल आदि शिक्षा प्राप्त करने हेतु काशी में स्थित 'काशी विद्यापीठ' गए। विश्वास किया जाता है कि जब वे स्वदेश लौटे, तभी से श्रीलंका में सर्वप्रथम हिंदी अध्ययन-अध्यापन का श्री गणेश हो गया है। तत्कालीन शिक्षा संस्थानों में 'पिरिवन' को महत्त्वपूर्ण स्थान अवश्य मिल गया था, जहाँ बौद्ध भिक्षुओं को शिक्षा दी जा रही थी। तद्‌युगीन प्राच्य विषयों के अध्ययन-अध्यापन के संदर्भ में विशेषतः बौद्ध भिक्षुओं की भूमिका अत्यंत स्तरीय थी।

19वीं शती के मध्य में उपस्थित राजनीतिक वातावरण में प्राच्य शिक्षा संबंधी गतिविधियों को पर्याप्त प्रोत्साहन अवश्य मिला। 'प्राचीन भाषोपकार समिति' द्वारा प्राच्य भाषाओं की, विशेषतः हिंदी भाषा की परीक्षाओं का आयोजन पिरिवनों में किया गया। हिंदी के संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि उपर्युक्त हिंदी परीक्षाओं से उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों को सरकारी पाठशालाओं में हिंदी अध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया। इसका उद्‌देश्य यह रहा कि हिंदी भाषा तथा उत्तर भारतीय संस्कृति का उचित प्रचार-प्रसार हो। हिंदी की शिक्षा दिए जानेवाले पिरिवनों में विद्यालंकार पिरिवन, विद्योदय पिरिवन, सरस्वती पिरिवन आदि प्रमुख थे।

प्राच्य-शिक्षा का स्तर बढ़ाने हेतु उपर्युक्त प्रमुख पिरिवनों में से विद्यालंकार तथा विद्योदय को विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान किया गया और इन दोनों विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन पर विशेष ध्यान दिया गया। परिणामतः विद्यालंकार विश्वविद्यालय में एक हिंदी विभाग की स्थापना की गई। साथ-साथ हिंदी, संस्कृत, इतिहास, दर्शन-शास्त्र आदि विषयों का

उद्धार करने हेतु भारतीय विद्वानों को यहाँ बुलाया गया। उनमें से महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्यायन थेरो, प्रोफेसर शांति भिक्षु शास्त्री, प्रोफेसर हेमचंद्र राय आदि प्रमुख हैं। विद्यालंकार विश्वविद्यालय (वर्तमान में कॅलणिय विश्वविद्यालय) में हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन कार्य का श्रीगणेश हिंदी के प्रोफेसर के रूप में पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्यायन थेरा द्वारा किया गया, जबकि विद्योदय विश्वविद्यालय (वर्तमान में श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय) में पूज्य भिक्षु गलगदर प्रज्ञानंद थेरो द्वारा, जो वर्तमान में लखनऊ स्थित महाबोधि संस्था के बौद्ध मंदिर के अधिपति हैं।

मद्रास यानी चेन्नई में स्थित 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' तथा वर्धा स्थित 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' द्वारा आयोजित हिंदी परीक्षाओं में भाग लेने का अवसर श्रीलंका के हिंदी विद्यार्थियों को दिया गया। सरकारी पाठशालाओं में हिंदी से संबंधित परीक्षाओं का संचालन करने हेतु श्री के.एम. डब्लिव. कुरुप्पु जी को एक सरकारी अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। साथ-साथ उनके सहायक अधिकारी के रूप में श्री विमलधर्म जी को भी नियुक्त किया गया। इसी तरह सरकार की भरपूर सहायता मिलने हेतु हिंदी शिक्षण का कार्य विश्वविद्यालयों, पाठशालाओं, पिरिवनों तथा आयुर्वेदिक संस्थानों तक शीघ्र फैल जाने लगा। साथ-साथ पुस्तकालयों के लिए आवश्यक पुस्तकों तथा अन्य सामग्रियों को उपलब्ध कराते हुए और भारतीय विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन करने हेतु छात्रवृत्तियाँ दिलाते हुए भारतीय सरकार ने इस कार्य को गति बढ़ाने में सराहनीय कदम उठाए।

इसी समय के दौरान 'रेडियो सिलोन' (राष्ट्रीय रेडियो) यानी 'Sri Lanka Broadcasting Corporation' पर हिंदी के गाने प्रसारित होने लगे और हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन देश भर के सिनेमाघरों में होने लगा। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि कई सिनेमाघरों में कुछ फिल्में दो से लेकर चार वर्षों तक लगातार प्रदर्शित की गईं। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंदी के प्रति श्रीलंकावासियों में कितनी बड़ी माँग थी और कितनी गहरी लगन थी।

> **प्राच्य-शिक्षा का स्तर बढ़ाने हेतु उपर्युक्त प्रमुख पिरिवनों में से विद्यालंकार तथा विद्योदय को विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान किया गया और इन दोनों विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन पर विशेष ध्यान दिया गया। परिणामतः विद्यालंकार विश्वविद्यालय में एक हिंदी विभाग की स्थापना की गई। साथ-साथ हिंदी, संस्कृत, इतिहास, दर्शन-शास्त्र आदि विषयों का उद्धार करने हेतु भारतीय विद्वानों को यहाँ बुलाया गया। उनमें से महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्यायन थेरो, प्रोफेसर शांति भिक्षु शास्त्री, प्रोफेसर हेमचंद्र राय आदि प्रमुख हैं।**

विभिन्न भारतीय कला संस्थानों में से प्रशिक्षण पाकर, शिक्षा प्राप्त कर जो कलाकार वापस लंका लौटे, उन्हें उन भारतीय कला विषयों को पढ़ाने हेतु सरकारी स्कूलों में नियुक्त किया गया। कुछ कलाकारों ने निजी रूप में कई संस्थान स्थापित किए। इन्हीं संस्थानों के जरिए हिंदी भाषा तथा संस्कृति का प्रचार तीव्र हो गया।

हिंदी भाषा के प्रचलन के साथ-साथ उसका अध्ययन करने हेतु सिंहली भाषा में हिंदी शिक्षा ग्रंथों का प्रकाशन होने लगा। उन ग्रंथों के रचनाकारों में से पूज्य भिक्षु प्रोफेसर बबॅरेन्दे सिरि सीवली थेरो, पूज्य भिक्षु गलगदर प्रज्ञानंद थेरो, पूज्य भिक्षु दरमिटिपॉल रतनसार थेरो, पूज्य भिक्षु गिरिदर सुमनजोति थेरो तथा श्री ए. दसनायक जी प्रमुख थे। तद्युगीन मुद्रण तकनीक के अनुकूल जब जिन हिंदी अक्षरों की आवश्यकता हुई, तब उन्हें भारत से आयात किए जाने की व्यवस्था की गई।

तदनंतर, विभिन्न शास्त्रीय कार्यों में निरत जो भारतीय विद्वान यहाँ रहे, उन्होंने अनेक सिंहली तथा पालि भाषाओं में रचित ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया। उनमें से पूज्य भिक्षु प्रोफेसर आनंद कौसल्यायन थेरो तथा पूज्य भिक्षु जगदीश काश्यप थेरो प्रमुख रहे। साथ-साथ पूज्य भिक्षु प्रोफेसर बबॅरेन्दे सिरि सीवली थेरो, पूज्य भिक्षु मैत्री मूर्ति थेरो, श्री डी.बी. तवरप्परुम तथा श्री मुदियन्से रत्नायक आदि ने हिंदी ग्रंथों का सिंहली में अनुवाद किया। कुछ हिंदी ग्रंथों का अनुवाद, उनके अंग्रेजी अनुवादों के जरिए सिंहली में किया गया। सन् 1968 में श्री चंद्रसिरि पल्लियगुरु जी द्वारा सिंहली भाषा में कृत 'हिंदी भाषाव सह साहित्य' (हिंदी भाषा तथा साहित्य) इस विषय से संबंधित प्रथम मौलिक ग्रंथ माना जा सकता है।

70 दशक के उत्तरार्ध में जनसंचार संबंधी नया माध्यम यानी टेलीविज़न का आगमन हुआ। इस माध्यम से जब हिंदी फिल्में, गाने आदि प्रसारित किए जाने लगे, तभी से हिंदी अध्ययन से संबंधित नए रास्ते खुलने लगे। क्योंकि हिंदी पढ़नेवाले नए छात्रों के लिए यह एकदम अच्छा 'हिंदी का माहौल' था, जिससे वे पहले वंचित रहे।

यह स्पष्ट दिखाई देता है कि 80 के दशक में विश्वविद्यालयों

में 'हिंदी-अध्ययन-क्षेत्र' का भरपूर विस्तार हुआ है। कॅलणिय विश्वविद्यालय (पहले विद्यालंकार विश्वविद्यालय) में आधुनिक भाषा विभाग के अधीन हिंदी विषय से संबंधित सामान्यवेदी उपाधि पाठ्यक्रम तथा प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम के अलावा एक विशेषवेदी उपाधि पाठ्यक्रम का परिचय कराया गया। इस संबंध में डॉ. (श्रीमती) इंद्रा दसनायक जी ने जो भूमिका निभाई, वह अत्यंत सराहनीय कही जा सकती है। इस पाठ्यक्रम के बाह्य परीक्षकों के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर प्रभाकर शुक्ल जी तथा प्रोफेसर (श्रीमती) सरला शुक्ल जी को नियुक्त किया गया। वर्तमान में प्रोफेसर (श्रीमती) सरला शुक्ल जी के स्थान पर प्रोफेसर उषा सिन्हा जी कार्यरत हैं, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग की वर्तमान अध्यक्षा हैं। इन परीक्षकों के पास उत्तरपत्र तथा शोध-प्रबंध भेज दिए जाने से स्तरीय हिंदी शिक्षा दिलाने का गौरव इस विभाग को मिला है।

डॉ. (श्रीमती) इंद्रा दसनायक जी के द्वारा प्रस्तुत किए गए एक प्रस्ताव के अनुसार, सन् 1995 में आधुनिक भाषा विभाग से पृथक् होकर एक नए विभाग के रूप में 'हिंदी अध्ययन विभाग' की स्थापना की गई, जो श्रीलंका में स्थापित एक ही पूर्ण 'हिंदी अध्ययन विभाग' है। वर्तनाम में हिंदी के प्रोफेसर के रूप में (श्रीमती) इंद्रा दसनायक जी इस विभाग में कार्यरत हैं। यह भी कहना उचित होगा कि अभी तक दूसरे विश्वविद्यालयों में (श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय तथा सबरगमुव विश्वविद्यालय) हिंदी केवल किसी दूसरे विभाग के एक विषय के रूप में ही पढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त पिरिवनों, आयुर्वेदिक संस्थानों तथा कुछ सरकारी पाठशालाओं में भी हिंदी शिक्षण दिया जाता है। साथ-साथ भारतीय उच्चायोग से संबंधित 'भारतीय सांस्कृतिक केंद्र' में दक्षिण भारतीय हिंदी प्रचार सभा की परीक्षाओं के लिए हिंदी शिक्षण दिया जाने लगा। यहाँ वर्तमान में आगरा स्थित 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' के पाठ्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। 'श्रीलंका हिंदी समाज', हिंदी निकेतन आदि निजी संस्थाओं से भी हिंदी की शिक्षा विभिन्न स्तरों पर दी जा रही है। साथ-साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'श्रीलंका हिंदी सम्मेलन' तथा 'अखिल श्रीलंका हिंदी संघ' आदि संस्थाओं का योगदान भी अविस्मरणीय है।

सन् 1998 में भारतीय तथा श्रीलंकाई 50वें स्वतंत्रता दिवस मनाने हेतु कॅलणिय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग ने श्रीलंका स्थित भारतीय उच्चायोग के अनुग्रह से एक 'हिंदी संगोष्ठी' का आयोजन किया। मुख्य अतिथि के रूप में इसमें भाग लेने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर प्रभाकर शुक्ल जी को निमंत्रण दिया गया। इस अवसर पर सर्वप्रथम 'हिंदी शास्त्रीय संग्रह-1' संज्ञक पत्रिका का लोकार्पण किया गया, जिसमें हिंदी, सिंहली तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में रचित चौदह लेख प्रकाशित हुए। यह श्रीलंका में हिंदी-शिक्षण से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है। 'हिंदी शास्त्रीय संग्रह-2' का प्रकाशन सन् 2007 में किया गया है, जिसमें एक हिंदी लेख तथा सात सिंहली लेख अंतर्गत होते हैं। साथ-साथ मौलिक हिंदी से सिंहली में अनूदित अनेक कहानी संकलनों का प्रकाशन भी होने लगा। इसकी विशेषता यह रही कि पहले सिंहली में हिंदी से संबंधित जिन कृतियों का अनुवाद किया गया, उनकी भाषा मौलिक हिंदी न होकर अंग्रेजी ही थी। लेकिन इस नई प्रक्रिया से सिंहली पाठकों को अत्यंत लाभ यह होता है कि वे मौलिक हिंदी से सिंहली में अनूदित कृतियों का रसास्वादन कर सकते हैं।

सन् 1980 के दशक में हिंदी अध्ययन के क्षेत्र में नया मोड़ दिलाने हेतु भारतीय सरकार ने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (आई.सी.सी.आर.) द्वारा आगरा तथा दिल्ली में स्थित 'केंद्रीय हिंदी संस्थानों' में हिंदी अध्ययन करने हेतु श्रीलंकाई विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं। इस कार्यक्रम के अधीन वर्तमान में भी श्रीलंकाई छात्र हिंदी अध्ययन हेतु भारत जाते रहते हैं।

वर्तमान में कॅलणिय विश्वविद्यालय के हिंदी अध्ययन विभाग में हिंदी में स्नातकोत्तर शोधकार्य करने की सुविधाएँ भी उपलब्ध की गई हैं। साथ-साथ भविष्य में हिंदी तथा सिंहली साहित्य से संबंधित तुलनात्मक शोध अध्ययन संपन्न कराने के लिए आवश्यक व्यवस्था की जाने की भी आशा है।

आधार साक्षात्कार

वरिष्ठ हिंदी प्रवक्ता श्री रविलाल विमलधर्म जी के साथ अगस्त, 1995 में कॅलणिय विश्वविद्यालय के हिंदी अध्ययन में संपन्न साक्षात्कार।

मानवशास्त्र संकायाध्यक्ष, कार्यवाहक हिंदी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर चंद्रसिरि पल्लियगुरु जी के साथ अगस्त, 1995 में कॅलणिय विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र संकाय के कार्यालय में संपन्न साक्षात्कार।

आधार ग्रंथ

विजयतुंग, विल्मट् पी. (1966) स्वरलिपि सहित सिंहल नृत्य गीत, सांस्कृतिक विभाग, कॉळॅंब।

Prof. Upul Ranjith Hewawitanagamage
Head of Hindi Studies,
University of Kelaniya,
Room No K2-210
Sri Lanka
Email : urhewa766@yahoo.com

37

पाकिस्तान में हिंदी

प्रो. माजदा असद

पाकिस्तान के तीन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है : कराची विश्वविद्यालय, इस्लामाबाद विश्वविद्यालय और लाहौर विश्वविद्यालय। अधिकांश हिंदी पढ़ानेवाली महिलाएँ ही हैं। इनको कुछ कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। भारत की धर्म-संस्कृति को समझने के लिए यह दूरदर्शन के धारावाहिकों से विद्यार्थियों को परिचित कराती हैं। 'रामायण', 'महाभारत' आदि अनेक धारावाहिक यहाँ रुचि के साथ देखे गए। सर्टिफिकेट, डिप्लोमा पाठ्यक्रम के साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी यहाँ आरंभ हो चुका है। पी-एच.डी. की व्यवस्था भी वहाँ हो चुकी है। तीनों विश्वविद्यालय एक-दूसरे के सहयोग से काम चला रहे हैं। यह सुनकर आश्चर्य होगा कि कराँची में अस्सी के दशक में अहमद हमेश साहेब ने हिंदी अकादमी की स्थापना की। वहाँ की हिंदी अकादमी में अनुवाद का कार्य भी होता रहा। सन् 1885 में जब वह दिल्ली आए तो दिल्ली हिंदी अकादमी में उनका स्वागत किया गया। वह हिंदी में कविता भी लिखते हैं। रेडियो पाकिस्तान देशांतर सेवा से हिंदी में समाचार भी पढ़ते थे। देशांतर सेवा के लिए आज रेडियो इस्लामाबाद से हिंदी समाचार पढ़े जाते हैं। पाकिस्तान में यहाँ की हिंदी फिल्में, दूरदर्शन के धारावाहिक बहुत लोकप्रिय रहे हैं और आज भी बड़े चाव के साथ देखे जाते हैं। वहाँ के लड़के-लड़कियों को फिल्मों को देखकर भारत बहुत पसंद आता है। बात है सन् 1986 की, जब मैं अपने भाई के घर पेशावर गई। मेरी भाभी मुझे अपनी किसी दोस्त के घर ले गईं। जब उन्हें पता चला कि मैं हिंदुस्तान से आई हूँ तो सोलह साल की उनकी बेटी मेरे पास आई और बोली, ''आंटी, आप बहुत खुशकिस्मत हैं।'' मैंने पूछा, ''कैसे?'' ''क्योंकि आप हिंदुस्तान में रहती हैं,'' वह बोली। ''क्या तुमने हिंदुस्तान देखा है?'' मैंने सवाल किया। उसका जवाब था, ''मैं हिंदुस्तान कभी नहीं गई, लेकिन फिल्मों में हम हिंदुस्तान को देखते हैं। हिंदुस्तान बहुत खूबसूरत है।'' उसकी बातें सुनकर मैं चकित रह गई। वहाँ के बहुत से लोग, बच्चे-बड़े फिल्मों और धारावाहिकों और समाचार आदि देख-सुनकर हिंदी बोलने और समझने लगे हैं। कभी-कभी वे आनंद लेने के लिए भी हिंदी बोल लेते हैं। यहाँ के कुछ शब्द उनकी बोलचाल में रच-बस गए हैं, जैसे आदर्श, गंभीर, समस्या, प्रकाश आदि। वैसे भी उर्दू में बहुत ध्वनियाँ, अक्षर, शब्द और मुहावरे आदि हिंदी से गए हैं और उस भाषा में बस गए हैं।

अनुवाद के माध्यम से भी पाकिस्तान में हिंदी ने अपने पाँव जमाए हैं। वहाँ के लेखकों की रचनाओं का हिंदी में अच्छा अनुवाद हो रहा है और हुआ है। 'फैज', 'फहमीदा रियाज', 'इंतजार हुसैन', की रचनाएँ हिंदी में सुलभ हैं। वजीर आगा की किताब 'उर्दू शायरी का मिजाज' का हिंदी अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ। यहाँ के लेखकों की रचनाएँ भी अनुवाद के माध्यम से वहाँ पहुँचती रही हैं। वहाँ की पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी की अच्छी रचनाओं का अनुवाद कराकर प्रकाशित कराती रही हैं। इस तरह पाकिस्तान की जनता का संबंध हिंदी से लगातार बना रहा है। कमलेश्वर का हिंदी उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' का अनुवाद वहाँ हो चुका है। वहाँ की जनता ने इस रचना को बहुत पसंद किया। फारसी लिपि में पाकिस्तान में हिंदी के छंदों, हिंदी के शब्दों का प्रयोग भी होता है। उन गीतों, दोहों, कविताओं को यदि नागरी लिपि में लिख दें, तो बिलकुल हिंदी की हो जाती हैं। उनका स्वरूप, संस्कृति, विषय आदि सब हिंदीमय है। अजमतुल्लाह खाँ की रचना 'सुरेले बोल' उर्दू अकादमी पाकिस्तान से सन् 1959 ई. में प्रकाशित हुई। उन्होंने हिंदी छंदों को कुछ परिवर्तन के साथ अपनाया। उनकी कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

कलधौत के धाम बनाए गए अर्जुन के
चल ढाक तले, चल ढाक चले। (दुर्मल सवैया अपूर्ण)
जो मैं ऐसा जानती प्रीत करे दुःख होए।('दोहा')
प्रीत करे दुःख होए जो मैं ऐसा जानती।('सोरठा')

अजमतुल्लाह खाँ ने कविता में सुरीलेपन पर अधिक ध्यान दिया है, छंदों और मात्रों पर कम।

नहीं-नहीं यह क्या कहा मुझे, नहीं तुम्हारी चाह यह जानेमन ।
यह बात काश हो सके तुझे दिखा सकूँ मैं सीना चीर मन ।

कहीं-कहीं एक 'मिसरा' पंक्ति कहकर मात्राओं के खाने बना लिये हैं। नीचेवाली पंक्ति में ऊपरवाले खाने के शब्द की मात्रा का बराबर का शब्द छाँटकर रख दिया है। उदाहरणार्थ :

मुझे पीत का याँ कोई फल न मिला,

मिरे जी को यह आग लगा ही गई।
मुझे ऐश यहाँ कोई न मिला,
मिरे तन को यह आग लगा ही गई।
वो चैन कहाँ अपने घर का,
वो बात कहाँ अपने घर की।।
वो राज कहाँ अपने घर का।
वो रात कहाँ अपने घर की
कामिनी कोमल थी तू, हुसन रसीला तेरा
कूकती कोयल थी तू, शब्द सुरीला तेरा।
मोले तिरे मुख पे मैं, दिलोजान फिदा करूँ।
तिरे चैन पे सुख पे मैं मिरी जान मिटा करूँ।
चलो आओ बस हो चुकी जंग प्यारे
न छेड़ें न उलझें न रोएँ बस अब
मुहब्बत का पहला सा हो रंग प्यारे
हुआ जो हुआ आओ सोएँ बस अब।

मात्राओं, छंदों और शब्दावली के प्रयोग में सुरीले बोल हिंदी का समाँ बाँध देते हैं।

जमीलुद्दीन आली पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि जो प्रायः भारत के मुशायरों में बहुत वाहवाही लूटते हैं और बहुत प्यार से सुने जाते हैं, उन्होंने हिंदी छंदों विशेषकर 'सरसी' छंद जिसे वह दोहा कहते हैं उसमें कविता लिखी:

दोहे कवित कह कहकर 'आली' मन की आग बुझाए।।
मन की आग न बुझी किसी से उसे यह कौन बताए।
साजन हम से मिले भी लेकिन ऐसे मिले कि हाए।
जैसे सूखे खेत से बादल बिन बरसे उड़ जाए।।
चाल पे तेरी गज झूमें और नैना मृग रिझाए।
पर गोरी वो रूप ही क्या जो अपने काम न आए।।
मोती कूट के माँग भरूँ चंदन से धोऊँ बाल।
हाय सुंदर रंग अनोखा हाए ये तेरी चाल।।
'सूर', 'कबीर', 'बिहारी', 'मीरा', 'रहीमन', 'तुलसीदास'
सब की सेवा की पर 'आली' गई न मन की प्यास।

जमीलुद्दीन आली की रचनाएँ 'गजलें दोहे गीत' शीर्षक से अदबी प्रेस कराची से सन् 1957 ई. में प्रकाशित हुई। आली की कविताओं में हिंदी शब्दावली के नगीने जुड़े हुए हैं। बहुत स्वाभाविक ढंग से वह हिंदी की कोमलकांत पदावली का प्रयोग अपनी कविता में करते हैं। आली और उनके वंशजों का संबंध दिल्ली की उस धरती से हैं जहाँ खड़ी बोली ने जन्म लिया और अमीर खुसरो ने उसे परवान चढ़ा दिया। जमीलुद्दीन आली के गीतों में लय और ध्वनि के झंकार हैं :

छुनन छुनन छुनन छुनन छुनन
यह रात का बोझ दिन की थकन यहाँ मन की
प्यास आँखों की
जलन
यह अपनी लगन, संगीत सा इक बुन जाती है
छुनन छुनन छुनन छुनन छुनन।

पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि नासिर शहजाद ने सरसी छंद में माधुर्य और प्रवाह से भरी कविता की। उनकी गजलों में लय और संगीत की चाशनी घुली हुई है। शहजाद धरती से जुड़े हैं। वह खेतों, नदियों, झीलों का वर्णन करते हैं। उनके काव्य में प्रकृति पृष्ठभूमि में हरियाली बिखेरती, फूल खिलाती नजर आती है। गोकुल की गोरी वहाँ थिरकती मद बरसाती है। उसे वह जन्म-जन्म से प्यार करते हैं :

कौन है तू ओ सुंदर नारी, क्या है तेरा नाम।
तुझको एक कवि की नजरें करती हैं प्रणाम।।
गोरी तेरे संग है मुझको जन्म-जन्म से प्यार
तू गोकुल की मधुवंती मैं मथुरा का श्याम।।
नैन नशीले होंठ रसीले जुल्फ महकती रात।
इंद्रधनुष सा निर्मला मुखड़ा फूल से कोमल गात।।
वो है मेरी राधारानी मैं हूँ उसका श्याम।
साँझ सकारे मन माला पर स्मरणों उसका नाम।।
होंठ गुलाबी, नैन शराबी, मुखड़ा बदरो मनीर (चाँद)।
कुछ तो बता दे तू दिल यह है किस नारी की तसवीर।

नासीर शहजाद ने सरसी छंद से मिलती-जुलती मात्राओं में अनेक नज्में लिखी हैं। उनकी कविता में हिंदी की मिट्टी की सुगंध है। यहाँ की धरती उनके काव्य में रची-बसी है। उनकी कविताओं का संग्रह 'चाँद की पत्तियाँ' मकतबा अदब जदीद, लाहौर से सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। हिंदी गीतों का रंग भी नासिर शहजाद के काव्य की जान है। उनके गीतों में मथुरा, वृंदावन, जमुना तट, पनघट, रंग लाल गुलाल, राधा-कृष्ण, गोकुल, पर्वत, सागर, नदी, वन-उपवन, झरनों की कलकल सुनाई देती हैं। उनकी गोरी गीतों की रानी भी अनेक रूपों में नजर आती है। कहीं वह मधुवंती है, कहीं माधुरी, कहीं गोरी, कहीं मनोहर कामिनी तो कहीं वह रूपवती का रूप धारण करती है। शृंगार-रस से परिपूर्ण उनकी

कविता में सोलह शृंगार की साज-सज्जा भी है

अखियन में कजरा डारे चंदन से माँग भरे

मधुर मिलन का अमृत पीकर

बैठ के चाँद के निर्मल रथ पर दीप जलाने जाती है।

बसंत ऋतु की मादकता, होली की गुलाल-मस्ती और शृंगार नासिर शहजाद के गीतों में हिंदी वातावरण को झलकाते हैं

कैसी बसंत सुहाए सखी री कैसी बसंत सुहाए

पेड़ों की निर्मल छैया में मंद पवन इठलाए कैसी बसंत

प्रीतम के संग होली खेलें गाँवों की रत्नारे अमृत रस की फुआरें

मन आँगन में फूल खिलाएँ नेपुर की झंकारें बान लगन के मारे।

बाग में खिलती माधुरी की डार-डार लहराए...मस्त सुगंध बरसाए

कैसी बसंत सुहाए

छम छम छम थम थम थम

चल नार अलबेली सजरी नई नवेली

चाल में लेकर फूल कम के, पास पिया के जाए

प्रीत की मोहन मदिरा पीकर पीतम को कल्पाए।

नासिर शहजाद के अनेक गीतों में प्रेमाभिव्यक्ति नारी की ओर से है जो हिंदी की विशेषता रही है। कुछ गीतों में स्वयं उनकी आवाज भी सुनाई देती है

अब काहे पछताए री गोरी अब काहे पछताए।

तूने एक धनवान की खातिर प्रीत मेरी ठुकराई तुझको लाज न आई।।

काहे नैन चुनाए सजनी काहे नैन चुराए।

मैं हूँ तेरा राजमुरारी मुझसे क्यों शरमाए।।

गीत लेखकों में एक प्रसिद्ध नाम मीरा जी का है। मीरा जी को जीवन में त्रासदी ही मिली। प्रेम की असफलता जो उन्हें 'मीर सेन' से मिली उसने उन्हें मीरा जी तखल्लुस कविनाम दिया। उनके गीत जग बीती नहीं आप बीती हैं। गीतों का मध्यम-मध्यम धीमा-धीमा सुर उनके बुझे हुए दिल की कसक की प्रतिध्वनि है। उसमें राख और धुआँ मीर तकी मीर के 'यह धुआँ सा कहाँ से उठता है' की याद दिलाता है। हिंदी के कोमल शब्द और हिंदी कविता की गहरी छाया उनके गीतों को मौलिक रूप प्रदान करती है। अपने गीतों के संबंध में उनका कथन है''गीत चंपा की कलियाँ नहीं लाजवंती के फूल हैं, हाथ लगा और मुरझाया गीतों की छान फटक रस के बैरन हैं''एक गीत में वह कहते हैं :

चंचल हँसमुख वारी पल में दुख की याद भुला दी

तीखी चितवन गहरा कजल कोमल आँचल उड़ता बादल

अंग-अंग लहराती दौड़ी चंचल हँसमुख नारी

ज्योति माथे के अंकन की, गेसू परछाई नागन की

हलके आशा बिस की सिर चंचल नारी

बात का रस बरखा सावन की रूप के गीत में तान जीवन की

स्थायी अंतरा संचारी चंचल हँसमुख नारी

इंद्रसभा की बहती धारा गीत भी प्यारा नाच भी प्यारा

पल पल छन छन (क्षण) शोभा न्यारी चल हँसमुख नारी।।

छम छम छम छम नाच रही है किसका है प्यार

दिल में कैसी पुकार।

'मीरा जी के गीत' पकतबए उर्दू लाहौर से प्रकाशित हुए। उनके गीतों में भारत की आत्मा बसी है। हिंदी के रंग में रँगे स्थायी अंतरा में पके यहाँ की देवमाला अंतर्कथाओं में सजे हुए गीत उन्होंने गाए हैं।

पाकिस्तानी कवियों में गीत एक 'प्रीत के गीत' संग्रह में भी मिलते हैं जो पाकिस्तान से पहली बार 'दारूल अदब' पंजाब लाहौर से सन् 1964 ई. में प्रकाशित हुआ।

'प्रीत के गीत' प्रेम की पुकार हैं। उन पे मन ही नहीं तन की आवाज को भी सुना जा सकता है। उनमें विरह शरीर में आग लगा रही है। जायसी की 'पद्मावत' की नागमती के विरह के प्रतिबिंब को यहाँ देखा जा सकता है। उसके धुएँ से कौवे और भौंरें काले हो गए हैं। तो अहसान दानिश की विरह्णी नायिका को अंगों में विरह आग लगा रही है। वह प्रेम को मन का रोग बताते हुए कहती है

प्रीति है मन का रोग सखी री प्रीति है मन का रोग।

अंग है अग्नि बैनन पानी, बोलता है सब विष की बानी।

वियोग में बीती जात जवानी आई कठिन संजोग

सखी री प्रीति है मन का रोग''

पाकिस्तान में हिंदी विविध माध्यमों और विविध रूपों में अपना रंग जमाए हुए एक शांत धारा के रूप में प्रवाहित है। उसका अपना रंग-ढंग है, अपना मिजाज है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि उसने कहीं-कहीं फारसी लिपि का चोला भी पहन लिया है, लेकिन उसकी आत्मा भारत की धरती और अपने हिंदी परिवार के साथ है।

(गगनांचल, जुलाई-दिसंबर 2007 से साभार)

38

विदेशों में हिंदी के अध्ययन की समस्याएँ

डॉ० सुधेश

विश्व के लगभग 125 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हिंदी पढ़ाई जाती है, यह हिंदी प्रेमियों के लिये प्रसन्नता एवं गर्व की बात है। पर आत्ममुग्ध होकर हिंदी का समुचित विकास नहीं किया जा सकता । उसके अध्ययन की समस्याओं पर भी विचार करना होगा, और उनके निदान ढूँढ़ने होंगे । भारत में भी हिंदी के अध्ययन के मार्ग में अनेक समस्याएँ हैं, पर यहाँ मैं विदेशों में हिंदी का अध्ययन करनेवालों की समस्याओं पर विचार करना चाहता हूँ ।

मैं तीन बार विदेश यात्राओं पर गया और इटली, अमेरिका, जर्मनी, हँगरी, ब्रिटेन, चैकोस्लोवाकिया, बेलज़ियम, दक्षिणी कोरिया के अनेक विश्वविद्यालयों को देखा । उनमें कई में भाषण दिये, हिंदी के शिक्षकों और विद्यार्थियों से बात की और उनकी समस्याओं की जानकारी प्राप्त की । उन्हीं के आधार पर यह लेख लिख रहा हूँ ।

अंग्रेज़ी भाषी देशों, जैसे अमेरिका और ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़नेवाले विदेशी छात्रों तथा छात्राओं की समस्याएँ अन्य देशों, जैसे फ्रॉंस, हंगरी, चैक गणराज्य, पोलैंड, रूस, इटली, जर्मनी, चीन, जापान, कोरिया आदि के विश्व-विद्यालयों में हिंदी के विद्यार्थियों की समस्याओं से अलग हैं। अंग्रेज़ी भाषी देशों में हिंदी को अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ाया जाता है, जबकि अन्य देशों के विद्यार्थी अपनी-अपनी मातृभाषाओं, जैसे फ्राँसीसी, हंगेरियन, चैक, पोलिश, रूसी, इतालवी, जर्मनी, चीनी, जापानी और कोरियन आदि के माध्यम से हिंदी पढ़ते हैं। शिक्षण के माध्यम की भिन्नता समस्याओं के स्वरूप को बदल देती है । यह एक व्यापक भ्रांति है कि अंग्रेजी के माध्यम से आप विश्व को जीत लेंगे, क्योंकि विश्व के अधिकांश देशों के निवासी अपनी-अपनी भाषा में जीते और मरते हैं ।

सन 1959 ई. में दिल्ली में मेरी पहली भेंट तत्कालीन चैकोस्लोवाकिया के प्राग विश्वविद्यालय में हिंदी के शिक्षक डॉ. ओदोनेल स्मैकल से हुई थी । मैंने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि मैं प्राग के चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने जा सकता हूँ । उनका दो टूक उत्तर था - 'पहले चैक भाषा सीख लीजिए, क्योंकि हमारे देश में हिंदी क्या सभी विषय चैक माध्यम से पढ़ाए जाते हैं ।' उनका उत्तर सुनकर मैं चौंका था, क्योंकि तब मैं समझता था कि अंग्रेज़ी विश्वभाषा है और मैं ठीक-ठाक अंग्रेज़ी जानता हूँ । अंग्रेज़ी सीमित अर्थ में विश्वभाषा है, पर अंग्रेज़ी के बाहर का विश्व अंग्रेज़ी के तथाकथित विश्व से कहीं अधिक बड़ा और व्यापक है ।

विदेशों में हिंदी पढ़नेवालों की पहली समस्या शिक्षण का माध्यम है । अंग्रेजी भाषी देश में तो अंग्रेजी का माध्यम चल जाएगा, पर इटली और फ्रांस में यदि आप अंग्रेजी बोलेंगे, तो होटल का रास्ता भी नहीं मिलेगा । वहाँ के विद्यार्थी अंग्रेजी सुनकर आप पर हँसेंगे या कक्षा छोड़कर चले जाएँगे । अंग्रेजी से अधिक तो हाथ, अंगुलि, अँगूठे, आँखों के इशारे काम आएँगे। हिंदी सीखने के लिए यदि किसी विदेशी को पहले अंग्रेजी सीखनी पड़े तो वह हिंदी सीखने का विचार ही छोड़ देगा ।

विश्व में हिंदी शिक्षण का कोई एक माध्यम नहीं है, बल्कि अनेक माध्यम हैं । कई विदेशी भाषाएँ संबंधित देशों में हिंदी के शिक्षण की माध्यम हैं । माध्यम की भिन्नता अध्यापकों के लिए चुनौती प्रस्तुत करती है और विद्यार्थियों के लिए भी ।

हिंदी के भारतीय शिक्षक की कठिनाई यह कि वह चाहे हिंदी का महापंडित हो, पर वह अंग्रेज़ी केवल बाज़ार लायक जानता है । उसे यह कहने में शर्म आएगी कि वह अंग्रेज़ी नहीं जानता, जबकि बहुत से हिंदुस्तानी यह कहने में नहीं शरमाते-'मैं हिंदी नहीं जानता।' मान लीजिए कि कोई अंग्रेजी में भी पारंगत है तो वह अंग्रेजीभाषी देशों में हिंदी पढ़ाकर अपना सिक्का जमा लेगा, पर वह इटली और फ्राँस में क्या करेगा। विदेशों में हिंदी पढ़ाने के लिए

वह कितनी विदेशी भाषाएँ सीखेगा ?

इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व को ऐसे हिंदी शिक्षकों की आवश्यकता है जो अनेक विदेशी भाषाओं के माध्यम से हिंदी पढ़ा सकें । हिंदी भाषियों और प्रेमियों के लिए यह एक चुनौती है । पर वास्तविकता यह है कि हिंदी के पंडित यदि कोई विदेशी भाषा जानते हैं तो वह अंग्रेज़ी है और जो भारतीय अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाएँ जानते हैं, वे हिंदी नहीं जानते या वैसा अभिनय करते हैं अथवा हिंदी में उन्हें अपना कोई भविष्य नज़र नहीं आता । बहुत से हिंदुस्तानी हिंदी का भी कोई भविष्य नहीं देखते, न देश में और न विदेशों में ।

विश्व के अनेक देशों में हिंदी अध्ययन की एक बड़ी समस्या स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों एवं सहायक पुस्तकों की कमी है । इस कमी को अनेक विद्वानों ने अंग्रेज़ी में पाठ्य - पुस्तकों तथा सहायक पुस्तकें लिखकर पूरा करने की कोशिशें की है । उदाहरण के लिये अमेरिकी विद्वान् फेयरबैंक्स और भारतीय विद्वान् बहादुर सिंह ने एक संयुक्त पुस्तक तैयार की थी, जिसका नाम है Conversational Hindi and Urdu, जिसे दिल्ली के राधाकृष्ण प्रकाशन ने छापा था । भारतीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में इस पुस्तक को लोकप्रियता मिली और अमेरिका में भी इसका खूब प्रचलन रहा । पर यह पुस्तक पुरानी हो गई है। इसकी एक कमी यह है कि यह हिंदी में बोलचाल तो सिखाती है, पर लिखने पढ़ने पर बल नहीं देती । जर्मनी के हिंदी विद्वान लोथार लुट्से ने भी Conversational Hindi नामक पुस्तक लिखी थी, पर हाइडिलबर्ग में वे जर्मन भाषा के माध्यम से ही हिंदी पढ़ाते थे। मैं हाइडिलबर्ग में उनसे मिला था । उनके जर्मन विद्यार्थी कई वर्षों तक हिंदी पढ़ने के बाद भी धाराप्रवाह हिंदी नहीं बोल सकते थे । लंदन के रुपर्ट स्नेल ने भी हिंदी नामक एक पुस्तक अंग्रेज़ी में तैयार की थी, जिसे Hodder and Stoughton नामक प्रकाशक ने लंदन से छापा था । देहरादून के देवकी नंदन शर्मा ने भी अमेरिका में एक पुस्तक अंग्रेज़ी में तैयार की थी, जो उनके अमेरिकी विश्वविद्यालय में चलती थी ।

भारत और विदेशों में अन्य पुस्तकें भी तैयार की गईं जिनमें कुछ स्तरीय हैं, कुछ साधारण । हिंदी सेल्फ़ टॉट' नाम से कई पुस्तकें अंग्रेज़ी में छपीं, जैसे आशुतोष घोष की पुस्तक Hindi Self Taught जिसे दिल्ली के Orient Paperbacks ने छापा था । पर ऐसी पुस्तकें विदेशी विश्वविद्यालयों में पाठ्य - पुस्तक के रूप में निर्धारित होने योग्य नहीं हैं ।

देखने में आया है कि विदेशी विश्वविद्यालय में कार्यरत हिंदी शिक्षक, चाहे वे भारतीय हों या विदेशी, प्रायः हिंदी की पाठ्य - पुस्तकों का निर्माण करते रहे हैं, पर उनके स्तरीकरण के प्रयास लगभग नहीं के बराबर हुए । डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय जब रोमानिया के विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर थे, तब उन्होंने इतालवी भाषा में हिंदी पाठ्य-पुस्तक तैयार की थी । उन्होंने 'हिंदी इताल्वी शब्दकोश' भी तैयार किया था । ऐसे प्रयास अन्य विदेशी विश्वविद्यालयों में भी हुए और उनसे हिंदी अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ। ऐसी पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग स्थान विशेष तक सीमित रहा। उनका अन्य विश्वविद्यालयों में व्यापक प्रचार एवं उपयोग नहीं हुआ।

एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि विदेशी विश्वविद्यालयों के हिंदीभाषी शिक्षक प्रायः यह कोशिश करते रहे कि उनकी पाठ्य - पुस्तकें ही चलें, पर उन्हें अन्य विश्वविद्यालयों में तभी निर्धारित किया गया, जब कोई विकल्प नहीं बचा। जो पाठ्य-पुस्तकें बनीं भी उनमें संशोधन एवं परिवर्तन बहुत कम हुए। स्थिति कमोबेश यह बनी कि जितने विदेशी विश्वविद्या-लयों में हिंदी पढ़ाई जाती है, वहाँ की पाठ्य - पुस्तकें प्रायः अलग - अलग हैं । वे विभिन्न भाषाओं में हैं और स्थानीय आवश्यकता को पूरा करती हैं ।

फिर भी सच बात यह है कि हिंदी पढ़ाने की जितनी पाठ्य - पुस्तकें और सहायक पुस्तकें अंग्रजी में छपीं, उतनी किसी विदेशी भाषा में नहीं छपीं, और उन्होंने विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था में बड़ी सहायता की । यदि उल्लेखनीय कमी रही तो यह कि ऐसी पुस्तकों का स्तरीकरण नहीं हुआ और उनके संशोधन तथा परिवर्धन के बहुत कम प्रयास हुए ।

पाठ्य-पुस्तकों एवं सहायक पुस्तकों के निर्माण में अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास किए, और उनसे विदेशों में हिंदी शिक्षण में बड़ी सहायता मिली । पर इन व्यक्तिगत प्रयासों में तालमेल का अभाव रहा, जिसके कारण ऐसी पाठ्य - पुस्तकों का व्यापक प्रचार नहीं हो पाया ।

दिल्ली स्थित केंद्रीय हिंदी निदेशालय के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता । निदेशालय ने विभिन्न स्तर की पाठ्य - पुस्तकें बनाई हैं जो अनेक भारतीय संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों में इस्तेमाल की जाती हैं । उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

1. A basic grammar of Modern Hindi.
2. Desk book on Devanagri Script.

3. Hindi Primer- Part 1 to 4.

4. English Hindi conversation guide.

5. Hindi English conversation guide.

6. Hindi records with English, Malayalam and Tamil commentary

7. Hindi cassettes (with English, Malayalam, Tamil and Bengali commentary).

इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के शब्दकोश भी हिंदी निदेशालय ने प्रकाशित किए हैं, जो भारतीय भाषाभाषियों के लिए अधिक उपयोगी हैं, पर विदेशी भाषाभाषियों के लिए भी कुछ शब्दकोश तैयार हुए हैं और छपे हैं, जैसे व्यावहारिक हिंदी - अंग्रेज़ी शब्दकोश, हिंदी स्पेनी शब्दकोश, हिंदी अरबी कोश, हिंदी चीनी कोश, हिंदी फ्रांसीसी कोश, चैक हिंदी कोश आदि।

ऊपर दी गई सामग्री अंग्रेज़ीभाषी विदेशियों को हिंदी सीखने में सहायता दे सकती है, पर जिन देशों में अलग विदेशी भाषाओं के माध्यम से हिंदी पढ़ाई जाती है, वहाँ इस सामग्री का अधिक उपयोग नहीं हो पाएगा। वहाँ तो अलग विदेशी भाषाओं में लिखित पाठ्य - पुस्तकें की आवश्यकता होगी। फ्रांस, जर्मनी, हंगरी, चैक, गणराज्य, होलैंड, पोलैंड, रूस, इटली, चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में हिंदी संबंधित विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाई जाती है। अतः हिंदी की पाठ्य - पुस्तकें अंग्रेज़ी के साथ अन्य विदेशी भाषाओं में भी तैयार हों, इसका कोई विकल्प नहीं है।

विदेशों में हिंदी के सम्यक अध्ययन के लिए स्तरीय पाठ्य - पुस्तकों के साथ सहायक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की भी आवश्यकता होगी। इनकी सुचारु उपलब्धि तभी संभव है, जब पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के प्रकाशक आसानी से विदेशी संस्थाओं तथा ग्राहकों को इनका निर्यात कर सकें। पर भारत से विदेशों में पुस्तकें निर्यात करने पर सरकारी नियंत्रण है। प्रकाशक अथवा विक्रेता को निर्यात के लिए सरकार से लाइसेंस लेना पड़ता है लाइसेंस प्राप्त प्रकाशक अथवा विक्रेता पुस्तकें आदि बाहर भेज सकता है। प्रत्येक प्रकाशक या विक्रेता निर्यात नहीं कर सकता। पुस्तकें निर्यात करने के व्यवसाय पर कुछ ही बड़े प्रकाशकों और विक्रेताओं का कब्ज़ा है, जिनकी रुचि विदेशों में हिंदी शिक्षण को सुगम बनाने से अधिक लाभ कमाने में है।

इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, हंगरी, चैकागणराज्य, कोरिया, चीन, रूस, जापान, स्पेन, जर्मनी आदि अनेक देशों के दूतावास अपनी-अपनी भाषाओं की दिल्ली में कक्षाएँ लगाते हैं और इन्हे सिखाने में दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय की तरह-तरह से मदद करते रहते हैं। विदेशों में भारतीय दूतावास भी राजभाषा हिंदी के प्रति यदि अपने कर्तव्य को समझें तो विदेशों में हिंदी का अध्ययन सुगम हो सकेगा।

एक और कटुसत्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। विदेशों में बसे भारतीयों में बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जिन्हें हिंदी से कुछ लेना-देना नहीं है और जो भारत एवं भारतीय संस्कृति को भूले हुए हैं। विदेशी धरती पर वे अमरबेल की तरह फल-फूल रहे हैं और अपनी जड़ों से कटे हुए हैं। उनकी संतानें न तो विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ती हैं और न हिंदी बोलती हैं। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़नेवाले 99 प्रतिशत विद्यार्थी विदेशी होते हैं। 'जैसा देश-वैसा भेष' वाली उक्ति वहाँ खूब चरितार्थ होती है। विदेशी धरती पर विदेशी भाषा-भूषा के पीछे भारतीय आत्मा को ढूँढ़ना गूलर का फूल ढूँढ़ने के बराबर है। विदेशों में बसे भारतीय यदि कहीं आर्थिक लाभ मिलता है तो हिंदी के अनुवादक, दुभाषिए, शिक्षक बनकर काम करने लगते हैं, अन्यथा वे बेशर्मी से कहते हैं कि वे हिंदी नहीं जानते। ऐसे लोगों की संख्या अधिक है,पर ऐसे हिंदुस्तानी भी विदेशों में बसे हुए हैं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ उसके शिक्षण की व्यवस्था में तन मन धन से लगे हुए हैं। मंदिरों, आर्य समाज केंद्रों, कम्युनिटी सेंटरों, घरों तक में हिंदी की कक्षाएं लगाई जा रही हैं और नई पीढ़ी को हिंदी का ज्ञान कराया जा रहा हैं। ऐसी संस्थाओं, व्यक्तियों का विवरण एक स्वतंत्र लेख की मांग करता है। पर उनके सामने भी हिंदी अध्ययन एवं शिक्षण की अनेक समस्याएँ हैं, जिनके समाधान वे अपने ढंग से निकाल रहे हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि विदेशों में हिंदी का अध्ययन एवं शिक्षण चुनौती से कम नहीं हैं। इस चुनौती का बहुत से हिंदीप्रेमी (जिन में अनेक विदेशी मूल के हैं) खूबी से सामना कर रहे हैं। समस्याओं के समाधान खोजने में भारत सरकार और भारतवासी यदि सहयोग दें तो उसके अच्छे परिणाम निकलेंगे।

Dr Sudhesh
A-34 New India Apartment,
Rohini, Sector-9
Delhi-110085 (INDIA)
Tel: +91-9350794120

39

रोमानिया में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का इतिहास

प्रो. सबिना पॉपरलेन

1. भारतीय संस्कृति के अध्ययन का सूत्रपात

भारतीय संस्कृति के अध्ययन में सबसे पहले हमारे राष्ट्रकवि मिहाई एमिनेस्कु (Mihai Eminescu1850-1889) ने रुचि ली। उन्होंने वियेना और बर्लिन में संस्कृत का अध्ययन किया, जहाँ पहली बार उनका साक्षात्कार ऋग्वेद उपनिषद् व बौद्ध ग्रंथों से हुआ। फलतः उनकी कविताओं में जगह-जगह भारतीय चिंतन और रहस्यमयता के दर्शन मिलते हैं।

एमिनेस्कु ने 40 वर्ष के अपने संक्षिप्त जीवनकाल में, फ्रॉन्त्स बोप के संस्कृत व्याकरण का अनुवाद जर्मन से रोमानियन भाषा में करने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक संस्कृत-रोमानियन शब्दकोश भी लिखने का प्रयास किया।

हमारे एक और सुप्रसिद्ध महाकवि जेओर्जे कोश्बुल (George Cosbuc1866-1918) ने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'ऋग्वेद' और 'महाभारत' के कुछ खंडों का अनुवाद रोमानिया में किया।

विख्यात रोमानियन भाषविज्ञानी बी.पी. हाश्देउ (B.P. Hasdeu1838-1907) ने संस्कृत भाषा के संदर्भ में रोमानियन और दूसरी भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषातत्त्व का बड़ा रोचक अन्वेषण किया है।

बीसवीं सदी के रोमानियन कवि, लेखक और दर्शनकार भी भारतीय चिंतन से बहुत प्रभावित हुए, जिनमें प्रमुख हैं : कवि लुच्यान ब्लागा (Lucian Blaga1895-1961) और इयोन पिलात (Ion Pilat1891-1945), चिंतक तथा विद्वान् मिरच्या एलियादे (Mircca Eliade1907-1986), उपन्यासकार लिव्यु रब्रेआनु (Liviu Rebreanu1885-1944) आदि।

बीसवीं शताब्दी का एक और विद्वान सेर्ज्यु आलजेओर्जे (Sergiu Algeorge1992-1981) हुए थे। उन्होंने भारतीय दर्शन और चिंतन पर कई किताबों लिखीं, जैसे 'भारतीय दर्शन पाठ्यक्रम में या भाषा एवं चिंतन भारतीय संस्कृति में।'

वे रोमानिया के पहले ऐसे संस्कृतज्ञ थे, जिन्होंने 'भगवद्गीता' का अनुवाद सीधे संस्कृत के माध्यम से किया, अग्रेजी अनुवाद के माध्यम से नहीं।

2. संस्कृत के अध्ययन की परंपरा

रोमानिया में संस्कृत का अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में ही शुरू हुआ।

इस अध्ययन के संस्थापक रोमेनियन विद्वान् प्रो. को. जेओर्जीअन (Co-tin Georgian1850-1904) ने, जो प्रतिष्ठित प्राच्यवेत्ता और संस्कृतज्ञ थे, सन् 1890 में बुखारेस्त विश्वविद्यालय में पहली बार संस्कृत को ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था की थी।

उन्होंने 'महाभारत' के कुछ अंशों का अनुवाद भी किया था। उनको इस कार्य में बी.पी. हाउदेउ (B.P. Hasdeu) ने तुलनात्मक भाषातत्त्व पर व्याख्यानों के द्वारा सहायता दी।

सन् 1950 में बुखारेस्त विश्वविद्यालय में, स्थायी रूप से, संस्कृत विभाग स्थापित हो चुका था।

इस विभाग में रोमानियन मशहूर प्राच्यवेत्ता और संस्कृत विशेषज्ञ व्लाद बनत्सेआनु (Vlad Banatseanu) ने अध्यापन किया।

सन् 1950 से याशिनगर के विश्वविद्यालय में भी संस्कृत का एक पाठ्यक्रम चलाया गया, जिसको संस्कृत के विद्वान् ते. सिमेस्कि (T. Simenschy) ने सँभाला।

उन्होंने संस्कृत का प्रथम व्याकरण भी प्रकाशित किया।

3. हिंदी विभाग का इतिहास

सन् 1956 में बुखारेस्त में रोमानिया प्राच्य विद्या संस्थान की स्थापना हुई।

सन् 1965 में भारतीय रोमानियन सांस्कृतिक विनिमय के कार्यक्रम पर हस्ताक्षर किए गए।

उसी साल भारतीय प्राध्यापक, हिंदी कवि और लेखक, श्री इंदु प्रकाश पांडेय (Indu Prakash Pandey) ने रोमानिया आकर बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा का ऐच्छिक पाठ्यक्रम प्रारंभ किया।

श्री इंदु प्रकाश पांडेय ने सन् 1965 से 1967 तक बुखारेस्त में हिंदी पढ़ाई।

इस अविध में उन्होंने रोमानियन विद्यार्थियों के लिए रोमानियन में पहली हिंदी पाठ्य-पुस्तक बनाई थी, जो सन् 1967 में बुखारेस्त विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित की गई। उन्होंने भी भारतीय विद्या, हिंदी साहित्य, भारतीय संगीत, कला और फिल्म पर अनेक दिलचस्प व्याख्यान दिए।

सन् 1969 में प्रो. आल रोसेती (Al. Rosetti), प्रो. ला. तेबान, (L. Theban) और प्रो. ची. पेगिर्क (C. Poghirc) ने शिक्षा मंत्रालय को एक ज्ञापन देकर माँग की कि प्राच्य भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विभाग की विधिवत स्थापना की जाए।

फलतः शिक्षा मंत्रालय ने बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना करने की स्वीकृति दे दी।

सन् 1960 से रोमानियन भाषा में प्रेमचंद के 'गोदान' तथा फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' का अनुवाद किया गया।

एक हिंदी प्रेमी दनिल इंकजे (Danil Incze) ने प्रेमचंद की 22 कहानियों का सीधे हिंदी से रोमानियन में अनुवाद किया है।

सितंबर सन् 1968 से जून 1972 तक हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. प्रभुदयाल विद्यासागर (Prabhu Dayal Vidyasagar) ने हिंदी अध्यापन का कार्य किया। पहले दो अध्ययन-वर्षों के बीच उन्होंने ऐच्छिक पाठ्यक्रम पढ़ाया।

सन् 1971 के वसंत से रोमानियन सरकार ने बुखारेस्त विश्वविद्यालय में चतुर्वर्षीय हिंदी विभाग स्थापित करने का निर्णय किया।

उसी साल, हिंदी विभाग के सहायक अध्यापकों के रूप में श्री लौरेन्त्सियु तेबान (Laurenstiu Theban) और श्री निकोलाये ज्वेरिया (Nicolac Zberea) की नियुक्ति भी की गई थी।

श्री निकोलजाए ज्वेरिया (Nicole Zberea) ने 'धर्मयुग' के सन् 1970 के अंक में 'एक रोमांचक अध्यात्मिक यात्रा', आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान की पत्रिका 'समन्वय' में, 'भारत और रोमानिया का सांस्कृतिक संबंध', सन् 1973 के 'पराग' में, 'एक रोमानियन दंत-कथा' आदि प्रकाशित किए।

अपने चार साल के कार्यकाल में डॉ. विद्यासागर ने रोमानियन विद्यार्थियों के लिए एक विशालकाय पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की और विस्तृत हिंदी-रोमानियन शब्दकोश (चार खंडों में) तथा रोमानियन-हिंदी शब्दकोश का सूत्रपात किया।

शब्दकोश के संपादक मंडल के दूसरे सदस्य अस इयोन पेत्रेस्कु (Ion Petrescu), अस निकोलाये ज्वेरिया (Nicolac Zberea) और अस लौरेन्त्स्यु तेबान (Laurenstiu Theban) थे।

अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाने के लिए डॉ. विद्यासागर ने याशिनगर के विश्वविद्यालय में भी एक ऐच्छिक पाठ्यक्रम आरंभ किया।

हिंदी अध्यापन के अतिरिक्त, उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य पर कुछ लेख लिखे और भारत के जीवन से संबंधित सांस्कृतिक, कलात्मक एवं ऐतिहासिक फिल्मों के प्रदर्शन का भी प्रबंध किया।

मार्च 1973 से मई 1974 तक तीसरे भारतीय प्राध्यापक ने संस्कृति तथा कला के प्रति रोमानियन जनता में विशेष अभिरुचि जग्रत् की।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के इतिहास में विद्यार्थियों की जानकारी पूर्ण करने के लिए सन् 1972 में प्रो. डॉ. चीचेरोने पोगीर्क (Cicerone Poghirc) और डॉ. सैर्ज्यु आल जेओर्जे (Sergui Al-George) ने व्याख्यान दिए।

उसी समय संस्कृत और भारतीय सभ्यता पर दिल्ली की प्राध्यापिका श्रीमती उषा चौधुरी (Usha Chaudhuri) ने विशेष भाषण दिए।

प्रोफेसर चौधुरी ने 'नवभारत टाइम्स' में एक लेख प्रकाशित किया 'डेन्यूब के किनारे संस्कृत, हिंदी तथा हिंदी संगीत का प्रचार'।

सन् 1974 में बुखारेस्त में डॉ. चौधुरी के रहने के समय रोमानियन-भारतीय मित्रता समाज स्थापित किया गया।

सन् 1975 से सन् 1978 तक पुनः डॉ. दयाल विद्यासागर (Dayal Vidyasagar) ने रोमानिया आकर हिंदी का अध्यापन किया।

अप्रैल 1979 में, आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान से, डॉ. सूरजभान सिंह (Suraj Bhan Singh) रोमानिया आए थे। उन्होंने यहाँ सन् 1983 तक हिंदी पढ़ाई।

प्रो. सूरजभान सिंह ने नवीन भाषा वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर दो खंडों में हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक लिखी।

सन् 1983 में वे भारत लौट गए और उसी साल जबलपुर विश्वविद्यालय में डॉ. महावीर सरल जैन (Mahavir Suran Jain) भारत सरकार की ओर से बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी प्रोफेसर प्रतिनियुक्त होकर रोमानिया आए थे। उन्होंने हमारे देश में सन् 1984 तक हिंदी का अध्यापन किया।

उसी समय से सन् 1992 तक सुश्री अमिता बोस (Amite Bose) ने बांगला और संस्कृत पढ़ाई।

श्री रादू बेर्चा (Radu Bercea) ने सन् 1996 से सन् 2000 तक बुखारेस्त विश्वविद्यालय में भारतीय सभ्यता के इतिहास और संस्कृत का अध्यापन किया।

उन्होंने 'प्राचीनतम उपनिषद्' का अनुवाद आलोचना संबंधी टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करवाया। वर्तमान समय में रादू बेर्चा सेर्ज्यू आल-जेर्जे प्राच्य विद्या संस्थान के निदेशक हैं।

इसी दौरान हिंदी पाठ्यक्रम के स्नातक-मारिया लीला पोपेस्कु (Maria Lila Popescu), लेलिया पोपेस्कु (Lelia Popescu), मिर्चिया इजु (Mircea Itu), एरिक बेचेस्कु (Eric Becescu), कवि जॉर्जे आंका (George Anca) आदि ने हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य तथा संस्कृत पढ़ाई।

सन् 1998 से सन् 1999 तक प्राध्यापिका लता गुप्ता (Lata Gupta) ने रोमानियन विद्यार्थियों के लिए हिंदी का अध्यापन किया।

सन् 1998 से भी सन् 2000 तक प्रोफेसर यतींद्र तिवारी (Yatindra Tiwari) ने हिंदी साहित्य का पाठ्यक्रम पढ़ाया। उनके रहने के समय मार्च 2000 में हिंदी विभगा के 30 वर्ष पूर्ण होने पर एक समारोह आयोजित हुआ।

हिंदी अध्ययन करने की सुविधा के लिए हिंदी रोमानियन शब्दकोश का निर्माण करने का भी कार्य प्रारंभ किया।

सन् 2000 में डॉ. शत्रुघ्न कुमार (Shatrughna Kumar) बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य पढ़ाने के लिए प्रतिनियुक्ति पर आए।

उसी साल से सबिना पॉपरलेन (Sabina Poparlan) हिंदी भाषा-विज्ञान तथा हिंदी साहित्य पढ़ाती हैं।

वरिष्ठ प्राध्यापक लौरेन्त्स्यु तेबान (Laurentiu Theban) हिंदी विभाग के शुरू से ही अर्थात् 33 वर्षों से हिंदी भाषाविज्ञान एवं संस्कृत पढ़ा रहे हैं।

उन्होंने आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान की पत्रिका 'गवेषणा' में 'हिंदी भाषा का मूलभूत वाक्य-विन्यास' प्रकाशित करवाया।

प्रोफेसर ला. तेवान, डॉ. विद्यासागर के हिंदी-रोमानियन शब्दकोश के संपादक-मंडल में अस इयोन पेत्रेस्कु और अस निकोलये ज्वेरिया के साथ सदस्य थे।

उन्होंने डॉ. सूरजभान सिंह को हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक के बनाने के सहायता दी थी।

आजकल बुखारेस्त के हिंदी विभाग में लगभग 30 विद्यार्थी संस्कृत, हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ रहे हैं। वे हिंदी एवं संस्कृत के अध्ययन में रुचि रखते हैं और वे परिश्रमी हैं।

हिंदी विभाग के अध्यापक हिंदी भाषा का व्याकरण तैयार कर रहे हैं।

इस लेख के माध्यम से मैंने रोमानिया में अभी तक हुए हिंदी के कार्य की स्थिति दिखाने की कोशिश की है। मैं आशा करती हूँ कि मेरा उद्देश्य संतोषजनक रूप से पूरा हो गया होगा।

Prof Sabina Poparlan
Pantelimon, nr248-250,
Bl 59-60, et 7, apt 38,
Sector 2, cod: 021646,
Bucharest, Romania
Email: sabina_ioana@yahoo.com

हंगरी और हिंदी

डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा

हंगरी में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा से पहले भारोपीय अध्ययन की और संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा थी। इसकी शुरुआत 18वीं सदी के उत्तरार्ध में हुई थी। इस परंपरा की शुरुआत करने का श्रेय ऑलैक्सांदेर चोमा को जाता है। प्रारंभ में संस्कृत की पुस्तकों का अनुवाद संस्कृत से न करके तुर्की, लैटिन और अंग्रेजी भाषाओं के अनुवादों से किया जाता था। पर अब स्थिति बदल गई है। आजकल हिंदी और संस्कृत दोनों ही भाषाओं से सीधे अनुवाद कार्य किए जा रहे हैं। इसके साथ ही हिंदी में भी सीधे ही हंगेरियन भाषा से अनुवाद किए जा रहे हैं। संस्कृत अध्ययन की परंपरा की शुरुआत और उसका विकास ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. तोत्तोशि चाबा के प्रयासों से हुआ।

हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा पाँचवें दशक में आरंभ हुई थी। हंगरी के भारतीय दूतावास में कार्यरत डॉ. दैबरैत्सैनी आर्पाद ने स्वयं हिंदी सीखकर विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन करने का कार्य किया था। हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा के विकास का पूरा श्रेय सुश्री मारिया नेज्यैशी को जाता है। पिछली शताब्दी के नौवें दशक में जब उन्होंने पढ़ाना प्रारंभ किया था, तब विश्वविद्यालय में पाठ्यपुस्तकों का अभाव था। न तो हंगेरियन में, न ही हिंदी या अंग्रेजी में कोई भी पाठ्यपुस्तक उपलब्ध थी। उस समय बुदापैश्त में हिंदी बोलनेवालों की संख्या नहीं के बराबर थी। मारिया नेज्यैशी ने कुआँ खोदकर पानी पीने जैसे कार्य किया। वे हर सप्ताह पढ़ाने के लिए नया पाठ तैयार करती थीं और फिर उस पाठ की सहायता से अध्यापन कार्य करती थीं।

भारत सरकार आई.सी.सी.आर. के माध्यम से विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान करता है। हंगरी के एक या दो छात्र प्रतिवर्ष यह छात्रवृत्ति लेकर केंद्रीय संस्थान में हिंदी का अध्ययन करने के लिए जाते हैं।

इस दौरान भारत सरकार और राजदूतावास के सहयोग से हिंदी की पुस्तकें ऐल्ते विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को मिलने लगीं। इससे हिंदी अध्ययन और अध्यापन का कार्य थोड़ा सा आसान हो गया। सन् 1992 में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। इस वर्ष भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय भाषाविज्ञान विभाग में हिंदी के एक अतिथि प्रोफेसर के पद का सृजन किया गया। हिंदी के एक जाने-माने साहित्यकार डॉ. असगर वजाहत ने हिंदी के साथ-साथ उर्दू पढ़ाने का कार्य प्रारंभ किया और मारिया नेज्यैशी के साथ मिलकर हिंदी अध्यापन की पाठ्यपुस्तक का निर्माण किया। इस परंपरा को डॉ. लक्ष्मण सिंह बिट 'बटरोही', डॉ. रविप्रकाश गुप्ता, डॉ. उमाशंकर उपाध्याय और आजकल डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा आगे बढ़ा रहे हैं। डॉ. बटरोही ने आधुनिक काव्य संकलन, डॉ. रविप्रकाश गुप्ता ने बोलचाल की हिंदी और डॉ. उपाध्याय ने मध्यकालीन काव्य संकलन शीर्षक पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया। डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा विभाग के लिए उच्चस्तरीय वार्तालाप पुस्तक का निर्माण कर रहे हैं। गत शैक्षिक सत्र (2007-08) में एक नए प्रयोग के तौर पर छात्रों को कंप्यूटर का हिंदी अध्ययन-अध्यापन में प्रयोग करना सिखाया गया। वर्तमान सत्र (2008-09) में उच्च स्तर के छात्रों को मीडिया की भाषा का अध्ययन कर उसकी समझ विकसित करने का प्रयास किया जाएगा। इस वर्ष के छात्रों ने मारिया नेज्यैशी के निर्देशन में भीष्म साहनी की अनेक कहानियों का हिंदी से हंगेरियन अनुवाद कार्य भी किया। वर्तमान सत्र से छात्र हंगेरियन भाषा से हिंदी में अनुवाद करना भी प्रारंभ करनेवाले हैं। अपने ग्रीष्मावकाश के दौरान भी कुछ छात्रों ने हिंदी के अन्य लेखकों की कुछ प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद किया।

विभाग के प्रतिभाशाली छात्रों में मारिया नेज्यैशी, इम्रे बंघा, फैरेस रुजा, दानियल बलोग, युदित तोरजोक, कोरत्वैयेशी तिबोर, जुजाना रेनर, दैजो चाबा, किश चाबा और शांतो पेतर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, ये सभी आजकल यूरोप के विभिन्न देशों व हंगरी के विभिन्न महत्त्वपूर्ण संस्थानों में उच्च पदों पर पदस्थ या शोधरत हैं। मारिया नेज्यैशी आजकल ऐल्ते विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की अध्यक्षा हैं। इम्रे बंघा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन करते हैं। इसके अलावा चीकसैरैदा (रोमानिया) के सपिऐंत्सिया विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य

करते हैं। ऐल्ते विश्वविद्यालय में इब्रे बंघा के निर्देशन में एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य जारी है। इसमें तुलसीदास कृत कवितावली के पाठालोचन का कार्य किया जा रहा है। सन् 2007 से ऐल्ते विश्वविद्यालय में आई.सी.सी.आर. की ओर से टैगोर फैलोशिप आरंभ की गई है। इस विभाग के ही एक अन्य छात्र हिदाश गैर्गैय इस फैलोशिप के अंतर्गत शोध कार्य कर रहे हैं।

ऐल्ते विश्वविद्यालय के स्नातक व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अलावा बुदापैश्त में भारतीय दूतावास के सहयोग से तीन स्तरों पर हिंदी अध्यापन की नियमित कक्षाएँ चलती हैं। ये कक्षाएँ भी ऐल्ते विश्वविद्यालय में प्रांगण में आयोजित की जाती हैं। इन कक्षाओं की शोभा हिंदी-प्रेमी ही नहीं, बल्कि भारत-प्रेमी भी बढ़ाते हैं। इन तीन कक्षाओं का स्तर क्रमशः प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च है।

पिछले 16 वर्षों से चल रही इन कक्षाओं में लगभग 1500 लोग हिंदी के साथ-साथ भारत और भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा दूतावास के सहयोग से भारतीय समाज और संस्कृति से संबंधित वियों पर व्याख्यानमाला को भी आयोजन किया जाता है। इस व्याख्यानमाला में भारतीय व हंगेरियन भारतविद् भारतीय संस्कृति से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चापरक व्याख्यान देते हैं। व्याख्यान के बाद श्रोता और छात्र अपनी जिज्ञासाओं को प्रश्न पूछकर शांत कर सकते हैं। इस व्याख्यानमाला में भारतीय दर्शन, इतिहास, समाज, कला, खान-पान, पहनावा आदि जैसे वियों पर बल दिया जाता है। इन कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्र प्रतिवर्ष विश्व हिंदी दिवस (या हिंदी दिवस) के अवसर पर हिंदी कविताओं का पाठ करते हैं व लघु नाटकों का मंचन करते हैं।

इन कक्षाओं के छात्र सन् 1995 व 2000 में भारत की शैक्षणिक यात्राएँ भी कर चुके हैं।

हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की इस परंपरा के अलावा कुछ और भी तथ्य ऐसे हैं जिनका उल्लेख इस प्रपत्र में करना आवश्यक है। हंगरी में अनेक लोग योग सीखकर इसे अपने जीवन का अनिवार्य अंग बना चुके हैं। यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। हंगरी में अनेक योग सिखानेवाली संस्थाएँ हैं।

- हंगरी में कुछ हंगेरियन भारतीय शास्त्रीय व लोक नृत्य करनेवाली नृत्यांगनाएँ हैं जिनके अपने विद्यालय भी हैं, जिनमें हंगेरियन लोग भारतीय शास्त्रीय नृत्य सीखते हैं।
- हंगेरियन लोगों में भारतीय व्यंजन लोकप्रिय हैं। भारतीय रेस्तराओं में हंगेरियन लोगों की भरमार रहती है।
- बुदापेश्त में लगभग प्रतिमाह एक बॉलीवुड पार्टी होती है, जिसमें अनेक हंगेरियन युवक-युवतियाँ (भारतीय भी) हिंदी के लोकप्रिय हिंदी-पंजाबी फिल्मी गानों पर देर रात तक थिरकते रहते हैं।
- इसी तरह बुडापेस्ट में दूतावास की कक्षाओं से जुड़ा एक हिंदी फिल्म क्लब भी है, जो प्रतिमाह एक हिंदी फिल्म का प्रदर्शन करता है। इसमें दर्शकों की संख्या पर्याप्त होती है।
- हंगेरियन दूरदर्शन पर हिंदी फिल्में डब करके दिखाने की एक लंबी परंपरा है।
- हंगरी में रहनेवाले भारतीयों व हंगेरियन लोगों में एक याहू ग्रुप (indianinhungary.com) भी लोकप्रिय है। इसके सदस्य भारतीय भी हैं और हंगेरियन भी। हंगेरियन भााा की भारत विषयक एक साइट हंगरी में बहुत ही लोकप्रिय है। इसका वेब पता हैये इंडिया (http://jeindia.hu)।
- कभी-कभी हंगेरियन एफ.एम. रेडियो पर भी हिंदी गाने सुनने को मिल जाते हैं, पर यह यदा-कदा ही होता है।

एक दिन अपने परिवार के साथ बुडापेश्त की सड़कों पर घूमते हुए एक दृश्य देखा, जिसकी चर्चा हिंदी फिल्मों व गानों के संदर्भ में जरूरी है। हमने देखा कि एक हंगेरियन युवती अपनी कनवर्टिबल मर्सीडीज में गैंगस्टर फिल्म का गाना 'या अली मदद या अली' सुनती जा रही है। हम लोग आश्चर्य से उसे देखते ही रह गए और उसकी कार फुर्र से निकल गई।

इस्कॉन, साईंबाबा और प्रजापिता ब्रह्मकुमारी जैसे संप्रदायों व बुद्ध धर्म को माननेवाले लोगों की हंगरी में संख्या प्रर्याप्त है। इनके शिष्य हिंदी व भारतीय संस्कृति को अपनाने की ओर अग्रसर हैं। हंगरी में बुद्धधर्म की आस्थाओं पर आधारित एक महाविद्यालय भी है, जिसमें संस्कृत व पालि आदि का अध्यापन किया जाता है।

Dr. Pramod Kumar Sharma
Visiting Professor
Dept of indo-European Studies
Eotvos Lorand Uni., Budapest
1088 Budapest, Muzeum krt. 6-8/A
Hungary
e-mail: pramodkhsd@gmail.com

41

भूटान की संपर्क भाषा हिंदी

प्रो. अ. नटराजन

विश्व की लगभग अट्ठाईस सौ भाषाओं में से एक हिंदी भाषा बोलनेवालों की संख्या (लगभग साठ करोड़) के आधार पर तृतीय स्थान पर आती है। यह अपनी समृद्ध परंपरा, सतत प्रवाहमान सामाजिकता तथा सहज रचनात्मक प्रकृति की वजह से महज भारत ही नहीं, वरन् म्यांमार, श्रीलंका, मॉरीशस, ट्रिनिडाड, फीजी, नेपाल, सूरीनाम, दक्षिण व पूर्वी अफ्रीका तथा भूटान में भी 'संपर्क भाषा' के तौर पर बोली और समझी जाती है। भूटान में हिंदी 'संपर्क भाषा' के साथ-साथ मॉरीशस तथा फीजी की तरह ही 'व्यावसायिक भाषा' का भी स्थान प्राप्त कर चुकी है।

भूटान तथा भारत को भौगोलिक सामीप्य के साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समरसता के अनूठे अवगुंठन ने भी सदैव एक-दूसरे के करीब किया है। भारत हमेशा ही भूटान के उत्थान तथा विकास का मुख्य सहयोगी देश रहा है और इसके सर्वमुखी विकास हेतु निरंतर प्रयासरत रहा है। भूटान में हिंदी का प्रचार-प्रसार चिरकाल से औपचारिक तथा अनौपचारिक तौर पर चलता आया है और आज भूटान में हिंदी का जो स्वरूप विद्यमान है, उसमें औपचारिक प्रयासों की तुलना में अनौपचारिक माध्यमों का योगदान अद्वितीय है।

भूटान में हिंदी के प्रचार-प्रसार की आधिकारिक शुरुआत बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुई थी, जब सन् 1930 के दशक में 'हा' तथा 'बुमथांग' के विद्यालयों में हिंदी को शिक्षण का माध्यम बनाया गया। इसके बाद हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू के प्रयासों के फलस्वरूप छठे दशक के शुरुआत में प्रारंभ किए गए औपचारिक शिक्षण व्यवस्था में भी हिंदी ही शिक्षण का माध्यम बनी।

भारत के सहयोग से भूटान में विभिन्न परियोजनाओं का कार्य चलता रहा है। इन परियोजनाओं के संपादन हेतु भूटान में भारतीयों की उपस्थिति सदैव बनी रही है, जिसने हिंदी के प्रसार को निरंतर गति प्रदान की है। विभिन्न सरकारी संगठनों तथा केंद्रीय जल आयोग, भारतीय सैन्य प्रशिक्षण दल (इमट्राट), वापकोस, सीमा सड़क संगठन (बी.आर.ओ.), राष्ट्रीय ताप विद्युत् निगम (एन.टी.पी.सी.) तथा गैर सरकारी संगठनों तथा जे.पी. ग्रुप, एच.सी.सी., गैमन इंडिया आदि के कार्यदल की उपस्थिति ने भूटान में हिंदी के प्रसार में अनुपम योगदान दिया है। निपुण तथा अर्द्धनिपुण भारतीय श्रमिकों की भूटान में बहुलता, जो कि सड़क निर्माण, भवन-निर्माण और अन्य निर्माण तथा उत्पाद क्षेत्रों से जुड़े हैं, ने भी हिंदी को आम भूटानवासी तक पहुँचाया है और हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने में अथाह योगदान दिया है। दैनिक क्रियाकलापों में भूटानी तथा भारतीयों के बीच विचार-विनमय का मुख्य माध्यम हिंदी ही रही है। भूटान में भारतीय व्यवसायियों की बहुलता तथा भूटानियों की उन पर निर्भरता ने भी हिंदी का प्रसार किया है।

भूटान में अच्छे विद्यालयों, शिक्षण संस्थानों, खासकर उच्च तथा व्यवसायिक शिक्षा संस्थानों की कमी रही है अतः भूटानवासी शिक्षा हेतु मुख्यतः भारतीय संस्थानों पर ही निर्भर करते हैं। उनका यह प्रवास उन्हें भारत तथा वहाँ के लोगों को समीप से जानने और उनसे संपर्क का अवसर प्रदान करता है। इससे हिंदी के प्रसार को एक गति मिलती है। शिक्षा के अतिरिक्त भारत में नौकरी, व्यवसाय की स्वतंत्रता तथा अवसर ने भी भूटान में हिंदी के प्रसार को आगे बढ़ाया है। भारतीय समाज, संस्कृति, शास्त्रीय नृत्य तथा संगीत के प्रति प्रेम तथा जिज्ञासा ने भी भूटानवासियों को भारत के करीब किया है जिससे उनमें हिंदी बोलने तथा समझने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

भूटान में लोग मुख्यतः बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं, अतः बौद्ध धर्म के उद्गम स्थल भारत से इनका संपर्क चिरकालीन है। इस धर्म के मुख्य तीर्थस्थल जैसे बोधगया, सारनाथ, साँची, कुशीनगर

आदि हिंदी के हृदयस्थल अर्थात् बिहार तथा उत्तर प्रदेश में अवस्थित हैं। भूटानवासी इन तीर्थस्थलियों की यात्राएँ आदिकाल से करते आए हैं। तीर्थाटन के दौरान उन्हें भारतवासियों, भारतीय संस्कृति तथा धरोहरों को देखने और समझने का अवसर उपलब्ध होता आया है, जिससे भूटान में हिंदी के प्रसार को एक मजबूत आधार तथा सतत गति मिली है।

शिक्षण संस्थानों की तरह भूटान में स्वास्थ्य सेवाओं की भी नितांत कमी रही है अतः इस दृष्टि से भी भारत पर निर्भरता ने उन्हें हिंदुस्तान और हिंदी के करीब लाने का काम किया है।

भारतीय फिल्म उद्योग का भी भूटान में हिंदी को लोकप्रिय व सर्वसुलभ बनाने में अनुपम योगदान रहा है। हिंदी चलचित्र (फिल्म), धारावाहिक तथा हिंदी गाने भूटान में अत्यंत लोकप्रिय हैं तथा दर्शकों की संख्या में उत्तरोत्तर बढ़ोतरी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। दूसरी तरफ डिस्कवरी, कार्टून, पोगो, स्टारगोल्ड, बिंदास तथा फिरंगी जैसे चैनलों पर जगप्रसिद्ध सर्वप्रिय कार्यक्रमों के हिंदी में ध्वन्यारोपण (डबिंग) ने भी हिंदी के प्रसार अर्थात् बोलने और समझनेवालों के दायरे को निरंतर विस्तार दिया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से भूटान भी अछूता नहीं रहा है। हिंदी में माइक्रोसॉफ्ट के कार्यक्रम, गूगल के फ्रेम, ई-बे जैसे वेबसाईट तथा फेसबुक इत्यादि की देवनागरी लिपि में उपलब्धता ने भी भूटान में हिंदी को बढ़ावा दिया है।

भूटान की राजभाषा जोंखा है। सन् 1988 में जोंखा को मानकीकृत किया गया। भूटान की सरकार ने जोंखा को बढ़ावा देने हेतु शिक्षण माध्यम के साथ-साथ जोंखा में अध्ययन सामग्री की उपलब्धता को भी बढ़ावा दिया है। आज के वैश्वीकरण के युग में भूटान में जोंखा के साथ-साथ हिंदी का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। भूटान में परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग काफी कम होता है क्योंकि यह बोलचाल, संपर्क तथा विचार विनमय के मुख्य भाषा के तौर पर ही प्रयोग होती है अतः यह व्याकरण की दृष्टि से नियंत्रित तथा संयमित प्रारूप में नहीं रह पाई है। भूटानवासियों के भारत तथा भारतीयों से निरंतर संपर्क की वजह से जोंखा में हिंदी के कई शब्द ग्रहण तथा स्वीकृत (प्रयोग दृष्टि से) हो गए हैं। जैसेहप्ता, गाड़ी, पूरा, पक्का, छुट्टी तथा बाजार आदि। जोंखा में सिर्फ हिंदी शब्द ग्रहण ही नहीं, वरन् ध्वन्यात्मक परिवर्तन तथा मूल शब्दार्थ परिवर्तन भी परिलक्षित होने लगा हैं, जो कि दोनों भाषाओं (जोंखा तथा हिंदी) की जीवंतता की परिचायक है। हालाँकि भूटान के कुछ बुजुर्ग हिंदी के भूटान में प्रसार को एक अतिक्रमण तथा भाषा (जोंखा) के ह्रास की दृष्टि से देखते हैं, युवा इसे सुलभ तथा जरूरत की वजह से स्वीकार्य मानते हैं और शुद्धिवादी भाषाविद् हिंदी के प्रसार का प्रतिरोध करते हैं परंतु भूटानी भाषाविद् किनले दोरजी इसे एक सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया मानते हैं जो कि अपरिहार्य है, क्योंकि भूटान में हिंदी जन-साधारण की भाषा बनकर राष्ट्रीय विकास में संपर्क सहायक की भूमिका निभा रही है।

Dr. Nathrajan
Consulate General of India
Phuentsholing: Bhutan
Tel: (00975-5) 252101
Fax: (00975-5) 252992
Email:hop.psling@mea.gov.in

मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदी में पूछो, मैं तुम्हें उसमें बता सकूँगा।

—अमीर खुसरो

42

नेपाल में हिंदी की दशा और दिशा

प्रो. मृदुला शर्मा

नेपाल भारत का पड़ोसी राष्ट्र ही नहीं मित्रराष्ट्र भी है। भाषिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी दोनों एक दूसरे के सन्निकट हैं। नेपाल में हिंदी का प्रयोग लगभग 600 वर्षों से भी अधिक समय से होता आया है, जिसे हम नेपाल के शिलालेखों, अभिलेखों, ताम्रपत्रों, लोक-साहित्य, संस्थागत पुस्तकालय तथा व्यक्तिगत रचनाओं में देख सकते हैं। इतना ही नहीं आदिकाल से ही नेपाल में संगीत, नाट्यमंच, औषध विज्ञान, शिक्षा, पत्राचार, तथा प्रचार आदि के कार्यों में भी हिंदी का प्रयोग अनवरत रूप से होता आया है। जिसका कारण यह है कि हिंदी और नेपाली दोनों भाषाओं की जननी संस्कृत है तथा लिपि देवनागरी । यही कारण है कि दोनों राष्ट्रों के नागरिकों को विश्व के अन्य मुल्कों की भाषाओं की तरह समझने तथा अभिव्यक्ति करने में अत्यधिक कठिनाई नहीं होती। नेपाल का जहाँ तक प्रश्न है इस परिप्रेक्ष्य में मैं बताना चाहूँगी कि आज भी नेपाल के शहरी क्षेत्र में हिंदी भाषा का दूसरा स्थान है। 3000 वर्ष पूर्व के अर्थात् वैदिक कालीन ऐतिहासिक अध्ययन से यह प्रमाण मिलता है कि विदेह तथा नेपाल का संघीय गठबंधन था। विदेह से तात्पर्य मिथिला राज्य से है, जो प्रारंभ से नेपाल का सीमावर्ती इलाका रहा है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित हुआ है कि प्राचीन नेपाल में भाषा की समस्या नहीं थी। शिक्षा-संस्कृति के अंतर्गत संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होता था। आदिकालीन सिद्धों की वाणियों को विभिन्न झंझावतों के बीच भी संजोकर रखने का श्रेय नेपालियों को जाता है। आज भी नेवारी समाज में चंचागीत (चर्यागीत) के रूप में जिसका गायन होता है, उसकी खोज सर्वप्रथम हर प्रसाद शास्त्री ने नेपाल में ही की थी । उसी तरह गोरखनाथ के शिष्य रतननाथ द्वारा रचित नाथ पंथों की साहित्यिक कृति की उपलब्धि भी नेपाल के दाङ. (पश्चिम नेपाल) जिले में हुई थी । इतना ही नही, हिंदी की आदिकालीन महत्वपूर्ण कृति ''वर्णा-रत्नाकर'' की रचना भी ज्योतिश्वर ठाकुर ने नेपाल में ही की थी। रामशक्ति शाखा की काव्य रचना का जहाँ तक प्रश्न है उसकी भी लगभग 300 वर्षों से निरंतर किसी न किसी रूप में रचना यहाँ होती चली आ रही है।

नेपाल के मध्यकालीन नाटक साहित्य में हमें हिंदी भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है । इस काल के मल्ल राजाओं का कर्नाटवंश से संबंध था । मिथिला के प्रति इन राजाओं का सदैव सकारात्मक दृष्टिकोण रहा। साहित्यिक रचना के अंतर्गत जब नेपाली समाज में संस्कृत लेखन की परम्परा थी, उस समय भी इन मल्ल शासकों ने हिंदी और मैथिली नाटक के लेखन एवं मंचन को महत्व दिया था। नेपाल की राजधानी काठमाण्डो के राजा प्रतापमल्ल स्वंय भी हिंदी तथा मैथिली साहित्य के ज्ञाता थे । भारत और नेपाल के बीच आवागमन का क्रम उस समय भी अटूट था । मुसलमानों के आक्रमण से जब कुमाउँ सुरक्षित न रहा तब कन्नौज के ब्राह्मण नेपाल की ओर बढ़ने लगे। ये नवागंतुक ब्राह्मण धार्मिक आचार से तो कट्टर थे पर, विचारों से उदार थे । रीति रिवाजों में अंतर होने पर भी इनकी भाषा में अंतर न था ।

नेपालियों का हिंदी के प्रति आकर्षित होने का एक कारण विद्यापति तथा चैतन्यमहाप्रभु का ललित काव्य भी था। दरवारों में उस समय मिथिला के विद्वानों का पूर्णरूपेण सम्मान होता था । राजा त्रैलोक्य (1562 – 1586, ई. सर) के समय का ''कृष्ण चरित '' नामक नाटक (मैथिली भाषा में लिखा गया) आज भी उपलब्ध है । इसमें विद्यापति और जयदेव के पदों की झलक देखने को मिलती है । मैथिली भाषा का प्रथम नाटक ''विद्याविलास'' 16 वीं शताब्दी में राजा विश्व मल्ल के शासनकाल में लिखा गया था । सन् 1628 में ''मुदितकुवलयाश्व'' नामक नाटक, जो ऐतिहासिक

दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है, की रचना जगतज्योति मल्ल ने की थी। इसमें मल्लवंशों का सविस्तार वर्णन है। भाषा की दृष्टि से इसमें संस्कृत, ब्रज और बंगाली भाषा का प्रयोग किया गया है । उपमा अलंकार के माध्यम से झुमरी, मेघ मल्हार तथा कोहबर आदि गीतों को अलंकृत किया गया है। कथावस्तु, पात्र, अभिनेता, कथोपकथन, रस-माधुर्य तथा नाटकारंभ की प्रक्रिया में यह आधुनिक युग से भिन्न है। तत्कालीन नाटक एकदिवसीय हुआ करता था । अंक विभाजन की दृष्टि से इन नाटकों में 1 से 43 अंक होते थे । जैसे संस्कृत भाषा में शास्त्रीय परंपरानुसार मंगलाचरण, नटी अथवा सूत्रधार का प्रवेश होने के पश्चात् ही कथा आगे बढ़ती थी उसी प्रकार इन नाटकों का शुभारंभ भी इसी शास्त्रीय परंपरानुसार होता था ।

उत्तर मध्यकाल को यदि भक्तिकाल कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि इसीकाल में नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों में 'जोशमणि ' निर्गुण संत संप्रदाय तथा कृष्ण प्रणायी संप्रदाय का सूत्रपात हुआ था और हिंदी भाषा में भक्ति काव्यों की रचना हुई थी। 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही महात्मा सूर किशोर, जो किशोरी जी के अधिष्ठाता थे, ने 'सीतायन ' (रामायण) की रचना नेपाल के जनकपुर में की थी । नेपाल के आदिकवि भानुभक्त ने वाल्मीकि रामायण का अनुगायन नेपाली भाषा में 18 वीं शताब्दी में किया था । पर, सामूहिक रूप में साहित्य सृजन की परंपरा मोती राम भट्ट ने चलाई थी। यही कारण था कि उन दिनों दरवारों में जो नाटिकाएँ अभिनीत होती थी वे प्रायः हिंदी तथा मैथिली भाषा की होती थीं । स्वयं राजेंद्र विक्रमशाह के मझले पुत्र श्री उपेंद्र विक्रम शाह ने भी हिंदी भाषा में रचनाएँ की थीं । तत्कालीन पंडित विद्यारण्य केशरी ने हिंदी भाषा में 'गोपिका स्तुति ' की रचना की थी ।

उन्नीसवीं शताब्दी में बड़ा पंडित वाणी विलासपांडे ने भी संस्कृत के साथ साथ हिंदी में रचनाएँ की थीं । इसी युग में पठन पाठन की दृष्टि से नेपाली भाषा का क्षेत्र विस्तृत हुआ । भारतीय विश्वविद्यालयों में नेपाली भाषा एक विषय के रूप में रखी जाने लगी । परिणाम स्वरूप नेपाली भाषा के पाठ्यक्रम पर भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का प्रभाव पड़ा अर्थात् नेपाली भाषा में भी हिंदी की तरह ही अंग्रेजी का प्रयोग होने लगा । इस प्रभाव को रोकने के लिए नेपाल में 'झर्रोवाद' आंदोलन भी चला ।

आधुनिक युग में भी नेपाल में अहिंदी भाषी लेखकों का योगदान कम नहीं । यूँ तो हिंदी लेखन में गोपाल सिंह 'नेपाली ' की तरह औरों को प्रसिद्धि नहीं मिली, परंतु नेपाल में जिन साहित्यकारों ने हिंदी भाषा में रचना की है उनमें स्व. केदार भान 'व्यथित' का नाम अग्रणी पंक्ति में आता है । स्व. 'व्यथित' की सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि उन्होंने हिंदी भाषा में ही अपनी कविता का श्री गणेश तथा इति श्री ' चाँद ' नामक कविता से की थी। हिंदी भाषा में केवल नेपाल के कवि और साहित्यकारों ने ही कलम नहीं चलाई बल्कि विभिन्न विषयों से जुड़े व्यक्तियों ने भी खुलकर कलम चलाई है । कुछ स्मरणीय नाम हैं--स्व. विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, रामहरि जोशी, प्रो. ढुण्डीराज भंडारी, डा. ध्रुवचंद गौतम, उत्तम नेपाली, मोदनाथ प्रश्रित, लोकेन्द्र बहादुर चंद, प्रो. मोहन राज शर्मा, स्व. चंद्रदेव ठाकुर, उमाकांत दास, बुन्नी लाल, स्व. प्रो. डा. कृष्णचंद्र मिश्र, किशोर नेपाल, प्रो. डा.सूर्यनाथ गोप, डा. बामदेव पहाड़ी, डॉ. गौरी शंकर सिंह, डॉ. मथुरा दत्त पांडे, स्व. धुस्वा सायमी, डॉ. तुलसी भट्टराई, चेतन कार्की आदि । इसी तरह विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी महिलाओं ने भी हिंदी साहित्य लेखन में विशेष योगदान किया है जैसे-सुश्री भद्रा घले, प्रो. डॉ. उषा ठाकुर, डॉ. आशा सिंह और स्वंय मैं भी अहिंदी भाषी होकर तीन दशक से भी अधिक समय से हिंदी साहित्य लेखन तथा अनुवाद कार्य से जुड़ी हूँ ।

यद्यपि पंचायती काल (वि.सं. 2019) के आगमन के पश्चात् नेपाल में राजनैतिक और सामाजिक कारणों से हिंदी भाषा की उन्नति अपेक्षानुरूप न हो पाई, परंतु नेपालियों ने कभी-भी-हिंदी को अलग नहीं समझा। उदाहरण स्वरूप-नेपाल नरेश स्वर्गीय श्री पाँच वीरेंद्र विक्रम शाहदेव ने भी मद्रास में वायस ऑफ अमेरिका के संवाददाता के अनुरोध पर हिंदी भाषा में अपना उद्गार व्यक्त करने के क्रम में कहा था कि-'' हिंदुस्तान, हिंदुस्तानी भाषा कभी भी नेपाल से न तो कभी अलग थी और न कभी होगी ।''-(देशांतर 2050/2/10)

अहिंदी मुल्क नेपाल की चौंकानेवाली बात यह भी है कि ' रेडियो नेपाल ' की स्थापना होने पर हिंदी भाषा में वहाँ से प्रसारण भी हुआ था । आज भी नेपाल के बहुल जनसंख्यावाले तराई क्षेत्र में हिंदी विषय की पढ़ाई प्रारंभिक कक्षा से लेकर उच्चशिक्षा तक होती है। काठमांडौ घाटी में भी कतिपय स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई अभी भी हो रही है । प्रतिदिन हिंदी भाषा में समाचार का प्रसारण रेडियो नेपाल से होता है । हिंदी पत्र-

पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं । ' हिंदी साहित्य संगम ' (जो बाद में हिंदी कला साहित्य संगम के नाम से जाना गया) तथा अंतरराष्ट्रीय हिंदी परिषद नेपाल आदि जैसी संस्थाएँ भी हैं जो समय-समय पर हिंदी से जुड़े कार्यक्रमों का आयोजन करती हैं। परंतु हिंदी-नेपाली तथा नेपाली हिंदी अनुवाद की दिशा में अभी न्यून मात्रा में ही कार्य हुआ है जबकि भाषिक शैली और मौलिकता की परख तथा मूल्यांकन के लिए यह अत्यावश्यक है कि दोनों भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं का अनुवाद अधिकाधिक संख्या में हो। इस दिशा में हर दृष्टिकोण से प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है, ताकि दानों भाषा जो एक ही गर्भ से जन्मी हैं अर्थात् सहोदरा हैं उसके अंदर भाषिक कठिनाई के कारण अलगाव पैदा न हो । नेपाल और भारत की मित्रता को साहित्यिक तौर पर भी सुमधुर और अक्षुणण बनाए रखने के लिए अनुवाद कार्य को भाषिक सेतु के रूप में प्रयोग करने की आवश्यकता है ।

Dr. Mridula Sharma
Padma Kanya Campus
Tribhuvan University
Kathmandu (Nepal)
e-mail: drmridulasharma@hotmail.com

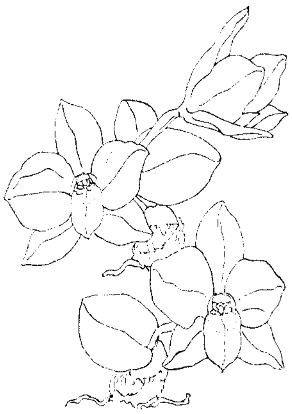

जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती ।

—गांधी

हिंदी एक संगठित करने वाली शक्ति है। हिंदी का प्रचार-कार्य वाग्यज्ञ है।

—काका साहिब गाडगिल

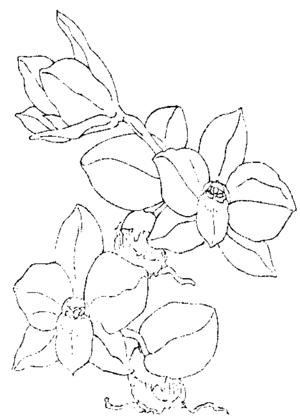

चेक गणराज्य में हिंदी-लेखन

प्रो. डैग्मर मार्कोवा

1348 ई. में कारेल (चार्ल्स) नामक राजा ने मध्य यूरोप में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह विश्वविद्यालय कारलोवा यूनिवर्सिटी (चार्ल्स विश्वविद्यालय) नाम से ज्ञात है। यह विश्वविद्यालय अत्यंत लोकप्रिय हुआ व अनेक विषयों के अध्ययन का केंद्र बन गया। पिछले कई दशकों से विश्वविद्यालय के भारत विद्या (इंडोलॉजी) विभाग में अनेक आधुनिक भाषाओं का सुव्यवस्थित रूप से अध्यापन किया जा रहा है। हिंदी भाषा व साहित्य का अध्ययन भी सन् 1950 से उच्चतर स्तर पर आरंभ किया गया। प्रोफेसर लेस्नी की देखरेख में चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी व बँगला भाषाओं का स्वतंत्र रूप से अध्यापन किया जा रहा है। डॉ. पोरिज्का व डॉ. स्मेकल वहाँ पर हिंदी के शिक्षक थे।

चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी का पाठ्यक्रम पाँच साल में पूरा होता है। इसमें छात्रों को एक शोध-निबंध लिखना होता है और मौखिक परीक्षा से भी गुजरना होता है। इस तरह वे हिंदी भाषा व साहित्य के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के बारे में भी सीखते हैं।

ओटाकर पर्टोल्ड व डॉ. विनसेंस पोरिज्का ने हिंदी अध्ययन हेतु पुस्तकें लिखी हैं। इस क्षेत्र में डॉ. ओदोलेन स्मेकल का योगदान अतुलनीय है। वह हिंदी के विद्वान् थे और उन्होंने हिंदी पाठ्यपुस्तकों की पूरी शृंखला तैयार की थी, जो इस प्रकार है :

1. हिंदी वार्त्तालाप (1968, 1984)
2. हिंदी पाठमाला (1968)
3. हिंदी क्रियाएँ (1970-71)
4. हिंदी क्रिया प्रबंध (1971)
5. हिंदी शब्दावली (1971)
6. अनुप्रयुक्त हिंदी व्याकरण (3 भाग, 1986: 1988)

डॉ. ओदोलेन स्मेकल 1994-1997 तक भारत में चेक गणराज्य के राजूदत थे। उससे पहले वह दिल्ली विश्वविद्यालय में चेक भाषा के प्रोफेसर थे। सन् 1998 में उनका प्राहा में निधन हो गया। उन्होंने आजीवन हिंदी की सेवा की। उन्होंने हिंदी के ऐतिहासिक ग्रंथों का चेक भाषा में अनुवाद किया। सन् 1978 में भारत सरकार ने विश्व हिंदी पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया। भारत की अनेक संस्थानों ने भी उन्हें उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित किया था। यहाँ पर उनकी पुस्तकों की सूची दी गई है :

I. मेरी प्रीत, तेरे गीत
   प्रकाशक : श्री शांतिकुंज प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982

II. नमो नमो भारत माता
   प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

III. स्वाति बूँद
   प्रकाशक : राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 1983

IV. कमल को लेकर चल
   प्रकाशक : स्टार बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1982

V. तेरे दिग्दिगंतर अभिराम, नई दिल्ली, 1982

VI. स्मेकल की प्रतिनिधि कविताएँ
   प्रकाशक : श्री शांति कुंज प्रकाशन, दिल्ली, 1983

VII. अविराम
   प्रकाशक : समकालीन प्रकाशक दिल्ली, 1988

VIII. हमारी हरित नीम, श्रेष्ठ कविताएँ
   प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन, 1994

IX. दीपकों के देश में, नई दिल्ली, 1996

डॉ. विनसेंस पोरिज्का ने सन् 1976 तक हिंदी का अध्यापन किया और प्रोफेसर ओदोलेन स्मेकल ने सन् 1990 तक हिंदी का अध्यापन किया। वर्तमान में डॉ. डैग्मर मार्कोवा हिंदी साहित्य के अध्ययन से जुड़ी हैं और डॉ. स्वेतिस्लाव कोस्टिश हिंदी भाषा के अध्यापन से। डॉ. स्वेतिस्लाव कोस्टिश ने अपनी पुस्तक 'वर्ब सिंटैग्मैटा इन हिंदी' (1999) से हिंदी भाषा व साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें भी लिखी हैं। डॉ. मार्कोवा, डॉ. स्ट्रनाड, और रेनेट स्वोबादोवा के साथ मिलकर उन्होंने हिंदी चेक शब्दकोश भी लिखा है।

स्वर्गीय डॉ. व्लादिमीर मिल्टनर भी हिंदी साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् थे। डॉ. डैग्मर मार्कोवा ने हिंदी की अनेक जानी-मानी लघुकथाओं का और तीन उपन्यासों का चेक भाषा में अनुवाद किया है।

Dr Dagmar Markova
Za Strahovem 21,
16900 Prague 6,
Czech Republic
Email:dagmarmarkova@post.cz

भाषा कल्पवृक्ष है। जो उससे आस्थापूर्वक माँगा जाता है, भाषा वह देती है। उससे कुछ माँगा ही न जाए, क्योंकि वह पेड़ से लटका हुआ नहीं दीख रहा है, तो कल्पवृक्ष भी कुछ नहीं देता।

—अज्ञेय

किसी के भी प्रयत्न से क्यों न हो हिंदी दिन प्रतिदिन पनप रही है।

—ज.गं.फगरे

जमैका में हिंदी शिक्षण के नए प्रयोग

प्रो. सीताराम पोद्दार

जमैका में हिंदी आई गिरमिटिया भारतीय मजदूरों के साथ 10 मई 1845 को। यह वह जमाना था जब गुलामी प्रथा खत्म हो जाने के बाद ब्रिटिश उपनिवेशों में गन्ने के खेतों और केले के बागानों में काम करने के लिए मजदूरों की जरूरत पड़ी। उस समय बहुत सारे उपनिवेशों में भारतवर्ष से मजदूर गए। ये मजदूर गए तो थे एक ऐग्रीमेंट पर (एकरारनामा: अंग्रेजी का शब्द एग्रीमेंट ही अपभ्रंश होकर 'गिरमिट' हो गया और गिरमिट पर उपनिवेशों में जानेवाले भारतीय मजदूर 'गिरमिटिया मजदूर' कहलाने लगे) किंतु एग्रीमेंट खत्म होने पर कुछ ही भारतवर्ष लौटे, अधिकतर उसी देश में बस गए जहाँ ये गए थे। जमैका में 1930 के बाद भारत से व्यापारी (सिंधी और गुजराती) और पेशेवर (डॉक्टर, अर्थशास्त्री, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर इंजीनियर आदि) लोग भी आए हैं। इस देश में भारतीयों की संख्या कुल आबादी तीस लाख (लगभग) की केवल एक प्रतिशत ही है।

भारतीय मजदूर अधिकतर उत्तर प्रदेश और बिहार से थे, अतः हिंदी ही उनकी भाषा थी। ये अपने साथ रामायण, भगवद्गीता, कबीर, सूरदास आदि की पुस्तकें और गाने-बजाने के लिए झांझ-मजीरा, तबला, हारमोनियम वगैरह लेते आए थे। जब फुर्सत मिलती रामायण, गीता आदि बाँचते, भजन-गीत गाते, किस्से-कहानी कहते-सुनते, हँसते-बोलते सब हिंदी में ही।

किंतु जमैका में ये मजदूर बहुत थोड़ी संख्या में आए थे (जब कि ट्रिनिडाड, सूरीनाम और गयाना में भारी संख्या में गए थे)। एक तो संख्या में थोड़े थे, उस पर अंग्रेज मालिकों द्वारा इनके परिवारों को एक साथ नहीं रखा जाता था। प्रशासन और चर्च का दबाव इतना अधिक और इस प्रकार का था कि बहुत सारे मजदूर ईसाई हो गए। शासन द्वारा अंग्रेजी सीखना जरूरी कर दिया गया था। धर्म-परिवर्तन, अंग्रेजी भाषा के प्रयोग, वर्णसंकर शादी-विवाह के कारण इन गिरमिटिया मजदूरों के लिए अपनी संस्कृति और भाषा को बचाना बहुत मुश्किल हो गया।

हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की बात तो दूर, बोलचाल में भी हिंदी कुछ घरों तक ही सीमित होकर रह गई। वैसे आजा-आजी, भैया-भौजी, खटिया-बिछौना, धोती-साड़ी, कुरता-पैजामा, भात-दाल, रोटी-तरकारी, हलवा-फुलौरी, पाँवलागी भाई जी, जै रामजी आदि हिंदी शब्द तो इन गिरमिटिया मजदूरों की दूसरी-तीसरी पीढ़ी में आज भी सुनने को मिलते हैं।

कुछ व्यक्तियों एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संगठनों ने संस्कृति को बचाए रखने की भरसक कोशिश की है, पर हिंदी भाषा तो लुप्त-सी हो गई है। किंग्सटन, जमैका में दो मंदिर हैं सनातन धर्म मंदिर और प्रेमा सत्संग मंदिर - जहाँ पूजा-पाठ, भजनादि हिंदी में ही होते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन पर हिंदी में ही गीत नृत्यादि होते हैं। अजीब बात तो यह है कि भजन, गीत जो ये लोग गाते हैं सबकुछ रोमन लिपि में लिखा होता है, और जो रोमन लिपि में लिखा होता है वह भी हिंदी के शब्दों को विकृत करके। लोग अर्थ नहीं जानते हैं किंतु जिस धुन और लय में भाव-विभोर होकर जो ये गाते हैं वह मुग्धकारी होता है। हिंदी फिल्मी गीतों पर इनका नाचना मनोहारी लगता है। काश, ये हिंदी सीख लें तो सोने में सुहागा हो जाए!

गयाना के कुछ गिरमिटिया मजदूरों के वंशज, जो जमैका में बस गए हैं, उन्होंने (जिनमें डॉ. हेमचंद्र परसौद का नाम उल्लेखनीय है) 1960 के दशक में जमैका में हिंदी पढ़ाने की कोशिश की थी, किंतु ज्यादा समर्थन नहीं मिलने के कारण वह खतम हो गई। 'प्रेमा सत्संग ऑफ जमैका (धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्था) जिसके संस्थापकों में डॉ. परसौद भी हैं, की अभी भी कोशिश हिंदी को बढ़ावा देने की रहती है। गर्मियों की छुट्टियों में वे लोग शिक्षण शिविरों का आयोजन करते रहते हैं, जिसमें हिंदी शिक्षण का कार्यक्रम भी रखते हैं।

जमैका में हिंदी की पढ़ाई के लिए उचित कदम पहली बार भारतीय उच्चायोग की ओर से हुआ 1991 में। उच्चायोग के तत्कालीन प्रथम सचिव श्री आर. पी. करे का ध्यान लेखक की ओर गया, जो उच्चायोग का या सामाजिक/सांस्कृतिक/धार्मिक संस्थाओं का कोई भी समारोह हो या कोई अन्य अवसर हो, सदैव हिंदी में ही बात करना पसंद करते थे (आज भी करते हैं।) श्री करे ने यह नोट किया और एक दिन लेखक को अपने ऑफिस में बुलाया और हिंदी पढ़ाने का प्रस्ताव रखा। लेखक पेशे से मेडिकल डॉक्टर हैं। उस समय वे युनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज, मोना (जमैका) के शरीर-रचना विभाग में वरीय व्याख्याता के पद पर काम कर रहे थे। उन्हें हिंदी पढ़ाने का (जो उनकी मातृभाषा है) शुभ अवसर मिल रहा था, सो उन्होंने खुशी-खुशी हामी भर दी। भारतीय उच्चायोग की अनुशंसा पर भारत सरकार के हिंदी विभाग द्वारा उन्हें हिंदी शिक्षण की नियुक्ति मिल गई। तब से वे जमैका में हिंदी शिक्षण एवं प्रचार में लगे हैं।

हिंदी पढ़ाने के लिए 'क्लब इंडिया (किंग्सटन की एक भारतीय सामाजिक संस्था)' में सुविधाजनक स्थान मिल गया। लेखक उस समय उस क्लब के सचिव थे, अतः प्रबन्धक समिति से आसानी से स्वीकृति मिल गई। जमैका में भारत के उच्चयोग की ओर से हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था का होना सभी के लिए, खासकर जमैकन-भारतीय (गिरमिटिया मजदूरों के वंशज) और प्रवासी भारतीयों के लिए, बड़ी खुशी की बात होनी चाहिए थी किन्तु प्रवासी भारतीयों ने जो विरोध किया उसकी कल्पना लेखक ने स्वप्न में भी नहीं की थी। कुछ भारतीयों ने कहा कि क्लब में हिंदी ही क्यों, मराठी, गुजराती, तामिल भी पढ़ाई जानी चाहिए। जब हिंदी कक्षाएं चलती थीं तब कुछ भारतीय परिवार के बच्चे बाहर शोरगुल करते और जोर-जोर से अ-आ, इ-ई··· गुरुजी बोलकर परेशान करते। जो हिंदी पढ़ने आते उन्हें तंग करते।

हिंदी को अपने देशवासियों से ही उपेक्षा मिलती रही है। जातिवाद, भाषावाद अपने देश में ही नहीं, विदेशों में रहनेवाले भारतीयों में भी देखने को मिलता है। जमैका में विशेष देखने को मिला।

जमैका में हिंदी पढ़ाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। गिरमिटिया मजदूरों के वंशज तो रोमन लिपि में लिखे भजन और गीतों से ढोलक और हारमोनियम पर गाकर-नाचकर मस्ती से फगुआ और दीवाली मना लेते हैं, पूजा-पाठ कर लेते हैं, शादी-विवाह भी रचा लेते हैं। अब हिंदी पढ़ने का झंझट क्यों और कौन करे? प्रवासी भारतीयों के बच्चे हिंदी सीखना निरर्थक समझते हैं। उनके माता-पिता ही हिंदी को महत्व नहीं देते हैं। सारा काम अंग्रेजी से हो जाता है। जब भारतवर्ष इंडिया हो गया तो किसे क्या कहा जाए।

शुरू-शुरू में न तो इंडो-जमैकन से, न ही इंडियन से प्रोत्साहन मिला- उनके दो-तीन बच्चे हिंदी पढ़ने आ गए तो ईश्वर की बड़ी कृपा हुई समझिए। आज के युग में भारत की प्रगति और विकास से संसार के सारे देश प्रभावित हैं। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के जमाने में विदेशियों में हिंदी का महत्त्व बढ़ रहा है। लोगों में भारतवर्ष देखने, भारतीय संस्कृति और दर्शन जानने की जिज्ञासा है, अतः विदेशियों में हिंदी सीखने की चाह बढ़ रही है। विदेशों में हिंदी फिल्में लोकप्रिय हो रही हैं जिनके गानों का अर्थ जानने के लिए कई हिंदी पढ़ना चाहते हैं। जमैका में हिंदी पढ़ाई होती है इसकी व्यापक रूप से जानकारी देने के लिए एक अफ्रो-जमैका हिंदी विद्यार्थी की राय पर स्थानीय अखबारों में हिंदी शिक्षण कार्यक्रम के बारे में विज्ञापन देने का बहुत अच्छा असर पड़ा। एक साप्ताहिक " संडे हेराल्ड " में हिंदी के बारे में लेख भी निकला। इन सबसे हिंदी के प्रचार में मदद मिली। इसके बाद से हिंदी पढ़ने वालों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। अब हर वर्ष हिंदी में नामांकन के लिए विज्ञापन निकलता है। " संडे हेराल्ड " हिंदी समारोह की रिपोर्ट भी छापता है।

जमैका में हिंदी विद्यार्थियों में अधिकतर अफ्रो-जमैकान होते हैं। ये विविध क्षेत्रों से आते हैं- कोई सूचना एवं पर्यटन विभाग में काम करता है तो कोई विदेश विभाग में जहाँ हिंदी का ज्ञान उनके काम में भारतीयों से संपर्क में सहायक होगा। कोई भारत दर्शन का इच्छुक है, इसलिए हिंदी पढ़ रहा है तो कोई हिंदी फिल्मी गानों का अर्थ जानने के लिए। इन विद्यार्थियों के लिए हिंदी बिलकुल विदेशी भाषा है, क्योंकि इनकी कोई हिंदी की पृष्ठभूमि नहीं होती है। हिंदी सीख लेने के बाद हिंदी में बातचीत के अभ्यास के लिए हिंदी परिवार जैसा उपयुक्त वातावरण हो इसके लिए जनवरी 2004 में 'हिंदी क्लब ऑफ जमैका' की स्थापना की गई। लेखक ने 'हिंदी में बातचीत कीजिए' पुस्तक भी लिखी। हिंदी क्लब में विद्यार्थियों के बीच मेलजोल, भाईचारा, हिंदी परिवार जैसे वातावरण को बढ़ावा दिया जाता है, ताकि वे आपस में हिंदी में बात करें। पिकनिक का आयोजन भी किया जाता है जिसमें भारतीय उच्चायोग के स्टाफ भी शामिल होते हैं। उद्देश्य है कि विद्यार्थियों के बीच हिंदी में बातचीत करने में जो झिझक होती है वह दूर हो।

हिंदी पढ़ाने के लिए कोई आधुनिक सुविधा उपलब्ध नहीं

है। वही बाबा आदम के जमाने के तरीकों श्याम पट्ट, खड़िया और झाड़न से काम चलता है। जिन किताबों की जरूरत होती है, वे आसानी से नहीं मिलती हैं।

अपने बनाए नोट्स और उनकी प्रतिछवियों (फोटोनकल) से काम निकाला जाता है। हिंदी क्लब परिवार इस दिशा में काफी सहायक सिद्ध हो रहा है। पूर्व और वर्तमान हिंदी विद्यार्थियों में हिंदी को आगे ले जाने के लिए उत्साह है। प्राप्त सुविधाओं से ही हमने प्रारंभिक और उन्नत पाठ्यक्रम का विकास किया है और अब हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा पाठ्यक्रम का विकास कर रहे हैं। जमैका में जो हिंदी भाषा में दक्षता प्राप्त करना चाहते है, उनके लिए यही डिप्लोमा अच्छा रहेगा, क्योंकि केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा की छात्रवृति मिलना किसी जमैकन छात्र के लिए आसान नहीं है। प्रारंभिक पाठ्यक्रम 1 वर्ष का, उसके बाद उन्नत पाठ्यक्रम 2 वर्ष का और उसके बाद डिप्लोमा पाठ्यक्रम 2 वर्ष का है। हिंदी की पढ़ाई सप्ताह में दो दिन शनिवार और रविवार को 2 घंटे, सुबह 10 बजे से 12 बजे दोपहर तक होती है। हिंदी पढ़ने-लिखने और वार्त्तालाप तीनों में विद्यार्थी योग्य हो इसकी चेष्टा की जाती है। वर्ष के अंत में परीक्षाएँ होती हैं और सफल विद्यार्थियों को भारत के स्वाधीनता दिवस 15 अगस्त के शुभावसर पर उच्चायुक्त द्वारा प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं।

विदेशों में हिंदी की पढ़ाई, उसके विकास और प्रचार में भारत के उच्चायोगों /दूतावासों की बड़ी भूमिका होती है। जिन देशों में भारतीय बहुत बड़ी संख्या में बस गए हैं वहाँ भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (आई. सी. सी. आर) द्वारा भारतीय सांस्कृतिक केंद्र खोले गए हैं जहाँ हिंदी शिक्षण की व्यवस्था भी है। इन देशों में निजी और सामाजिक संस्थाएँ भी हिंदी के प्रचार में लगी होती हैं किंतु जमैका जैसी जगह में यदि भारतीय उच्चायोग का ध्यान नहीं गया होता तो हिंदी शिक्षा की शायद ही कोई व्यवस्था कभी हो पाती। व्यवस्था की शुरुआत करा देने के बाद उसे सँभालने और विकसित करने की भी जरूरत होती है। उच्चायुक्त/राजदूत यदि अपने यहाँ आयोजित समारोहों में हिंदी का प्रयोग करें तो उससे ही हिंदी का महत्त्व लोगों को समझ में आए और हिंदी के प्रचार में सहायता मिले। कम-से-कम स्वाधीनता दिवस और गणतंत्र दिवस पर भारतवर्ष के राष्ट्रपति/प्रधानमंत्री का भाषण तो हिंदी में पढ़ना ही चाहिए।

जमैका में हिंदी की पढ़ाई जुलाई-अगस्त 1991 में शुरू हुई। लेखक (और उनका साथ देने के लिए उनकी पत्नी) हिंदी शिक्षण कार्यक्रम को चालू रखने के लिए वर्षों संघर्ष करते रहे। हिंदी पुस्तकों के लिए बार-बार आग्रह करने पर, पीछे पड़ने पर, कभी-कभी सफलता मिली है, परंतु इससे अधिक और कुछ नहीं। 1991 के बाद 2005 में एक उच्चायुक्त श्री कैलाश लाल अग्रवाल की नियुक्ति जमैका में हुई। वे मार्च 2005 में आए और जुलाई 2007 में सेवानिवृत्त होने के बाद चले गए। अपने सेवाकाल में वे जो हिंदी के लिए कर गए, वैसा पहले किसी ने नहीं किया। उनके प्रयास से पहली बार जमैका में विश्व हिंदी दिवस मनाया गया। इस अवसर पर हिंदी में कविता, कहानी, लेख, गीत गायन, नृत्य, हास्य-वार्त्ता का आयोजन किया गया और सफल छात्र-छात्राओं को पुरस्कार दिए गए। इस समारोह में इन छात्र-छात्राओं ने रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसकी सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की। लोग यह देखकर दंग थे कि अफ्रो-जमैकन छात्रगण भी इतनी शुद्ध हिंदी, बोल सकते हैं और इतना सुंदर कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकते हैं।

'हिंदी क्लब' द्वारा जब भी पिकनिक का आयोजन किया गया भारतीय उच्चायोग के स्टाफ और उनके परिवार ही नहीं, उच्चायुक्त श्री अग्रवाल ने स्वयं भी शामिल होकर उत्साह बढ़ाया। हिंदी पाठ्यक्रम के विकास को भी प्रोत्साहन दिया। 2008 में एक हिंदी छात्रा ने हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा परीक्षा में उत्तीर्ण होकर हमारे पाठ्यक्रम को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है।

विश्व हिंदी दिवस मनाने के लिए गत वर्षों में अनुदान मिला और हर वर्ष हिंदी दिवस मना रहे हैं। हिंदी प्रतियोगिताओं में अब उन भारतीयों के बच्चे भी भाग लेते हैं जो शुरू में हमारा मज़ाक उड़ाया करते थे। जमैका के हिंदी शिक्षण कार्यक्रम की सराहना हो रही है। हम आगे भी हिंदी की सेवा इसी तरह करते रहें, बल्कि और अधिक करें, यही कामना है।

Dr Sitaram Poddar
5 Gerbara Drive
MonaHeights
Kingston 6
Jamaica,
West Indies
Email:hindiclubjamaica@hotmail.com

45

लोक के स्तंभ पर टिका है विश्व हिंदी का महराब

राकेश पांडेय

आज विश्व ग्राम की बात की जा रही है, विश्व भाषा की बात की जा रही है। जहाँ पर एक ओर अंग्रेजी ने अपने को विश्व भाषा के रूप में स्थापित किया है, वहीं पर अब हिंदी को भी विश्व भाषा बनाने की ओर बल दिया जा रहा है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने की बात की जा रही है। तमाम विश्व में बसे भारतीय मूल के लोगों के भीतर धीरे-धीरे यह बात छूने लगी है कि उनके देश की एक प्रतिनिधि भाषा अर्थात् राष्ट्रभाषा नहीं है। यूँ तो हिंदी को सरकार द्वारा राजभाषा का दर्जा प्राप्त है किंतु वास्तविकता यही है कि वह न राज की भाषा है, न काज की भाषा है, वह केवल लोक की भाषा है। वह भारत के एक अधिसंख्य आम आदमी के बोलचाल की भाषा है। इस वैश्वीकरण के युग में आजीविका के लिए युवा पीढ़ी को विस्तृत संसार में विचरण करना उसकी वाध्यता है, अन्यथा वह व्यवस्थित ढंग से नौकरी नहीं कर सकता। इसलिए धीरे-धीरे हिंदी समूचे भारत की भाषा के रूप में तो अनिवार्य होती ही जा रही है, साथ-ही-साथ विदेशों में बसे भारतीयों या गिरमिटिया मजदूरों की आज की युवा पीढ़ी भी हिंदी की ओर मुखरित होती दिखती है, क्योंकि भाषा के साथ उसकी जीवन संस्कृति समाज को दिशा देने का कार्य करती है।

एक लोकप्रिय लोकोक्ति है 'कोस-कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।' इस लिहाज से भारत जैसे विशाल देश में असंख्य बोलियाँ एवं भाषाएँ हैं। भारत में मुख्य रूप से एक ओर अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, गही, राजस्थानी, गढ़वाली, ब्रज, कुमाउँनी, डोंगरी, मारवाड़ी सहित अनेक लोकभाषाएँ हैं, दूसरी ओर दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगू, कन्नड़ व बंगाल की बाँगला आदि भाषाएँ हैं। इन सभी बोलियों व भाषाओं के साथ उनकी संस्कृति, उनका समाज है। ऐसे में इस सौ करोड़ से अधिक जनसंख्यावाले देश भारत में एक प्रतिनिधि भाषा हिंदी का स्वरूप निर्धारित करना अर्थात् मानकीकरण करना संभव नहीं है। फलस्वरूप हिंदी भाषा धीरे-धीरे अनेक बोलियों एवं भाषाओं के शब्दों का अंगीकार कर समृद्ध हो रही है, क्योंकि प्राचीन काल में मूल रूप से भारत की मुख्य भाषा तो संस्कृत थी लेकिन काल एवं परिस्थितियों के कारण संस्कृत सामान्य व्यवहार से दूर हो गई और उसका दूसरा स्वरूप हिंदी के रूप में विकसित होकर आज भारत की पहचान बन रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी के समर्थन में घोषणा की थी कि 'दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी नहीं जानता'। महात्मा गांधी की इस भावना का अनुसरण एक आम भारतीय नहीं कर पाया, जिसके कारण हिंदी की उपेक्षा तो हुई है। लेकिन इस वैश्वीकरण के युग में जो विश्व हिंदी का स्वरूप बन रहा है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि तमाम विश्व में रह रहे भारतीयों के घरों में हिंदी का प्रयोग भले ही कम हो, लेकिन लोकभाषाओं व भारतीय भाषाओं का प्रयोग निरंतर होता है। आज पंजाब का एक बहुत बड़ा वर्ग विदेशों में बसता है। इसी प्रकार गुजराती मूल के लोगों का व्यवसाय भी विदेशों में बड़ी मात्रा में फैला हुआ है। यह सभी लोग अपने घरों में पंजाबी अथवा गुजराती प्रयोग करते हैं। इन लोगों में ऐसा कोई नहीं होगा जो हिंदी न जानता हो। इसलिए जब भी कभी हिंदी प्रयोग का अवसर मिलता है तो यह लोग अपनी मातृभाषा से मिश्रित हिंदी का प्रयोग करते हैं। इनकी हिंदी में वह तमाम शब्द आ जाते हैं जिन्हें प्रायः शुद्ध हिंदी नहीं कहा जा सकता, लेकिन इन शब्दों को हिंदी शब्दकोश में सम्मिलित करना होगा, ताकि हिंदी और समृद्ध हो सके और प्रयोग में सहज।

यह लोकभाषाएँ, जैसे कि मॉरीशस में भोजपुरी, सूरीनाम में सरनामी, फिजी में फिजीबात और दक्षिण अफ्रीका में नैताली हिंदी बन जाती हैं। समय के साथ-साथ संस्कृति व भाषा का भी स्वरूप बदलता रहता है। विश्व में भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ-साथ उनके साथ गईं भाषाओं का संरक्षण जिस प्रकार किया, वह अनुकरणीय है। उन्होंने अपनी आनेवाली पीढ़ियों को भी सांस्कृतिक एवं भाषायी

संकट से सदैव सचेत किए रखा, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ पर निरंतर लोक साहित्य की रचना होती रही और जिसे हिंदी का नाम दिया गया। जैसे कि सूरीनाम के श्री हरी साहू, जो सूरीनाम में विख्यात कवि हैं, उनकी कविता इस प्रकार है :

'हम तोके का बोली
हम तोके का बोली
बोली बोली
भाषा बोली
अवधी कि भोजपुरी
अंत में
अपन भाषा में एक बात बोली
तोहँसे हम्मे बहुत है प्यार
महतारी भाषा हमारे, महतारी भाषा हमार
सरनामी हमार, सरनामी हमार।'

इसी प्रकार गिरमिटिया मजदूर के रूप में सन् 1898 में सूरीनाम पहुँचे मुंशी रहमान खान वहाँ के प्रसिद्ध कवि हुए। काल एवं परिस्थितियों का प्रभाव भाषा व साहित्य पर भी पड़ता है, जैसे कि उन्होंने हजरत नबी मुहम्मद रसूलिल्लाह के जीवन चरित्र को तुलसीदास की रामायण शैली में इस प्रकार रचा है :

'आदि अंत प्रभु का नहीं, नहिं कोई सिरजन हार।
मातपिता प्रभु के नहीं, नहीं कोई पालन हार।।
जो कहिं नूर रसूल का, नहीं रचत रहमान।
तौ कुदरत रब आपनी, प्रकट न करत जहान।।
नूर की उत्पत्ति जस भई, है यह रब की शान।
है यह नूर रसूल का, कहुँ संक्षेप बखान।।
जिबरा ईल रसूल में, जौन भयउ सम्बाद।
उन दोनहुँ की वार्ता, कहँ यहाँ इरशाद।।'

उपरोक्त दोहों में खड़ी हिंदी का प्रयोग अधिक है, जबकि हरी साहू की कविता में अवधी व भोजपुरी अधिक है। कारण हरी साहू की कविता मुंशी रहमान खान के काल के बाद की है। इसलिए भाषा अपने लोक के रूप में अधिक जीवित है। मॉरीशस में भी भोजपुरी, व अवधी क्षेत्रों के लोग अधिक गए। ऐसे में वहाँ पर एक नए समाज के साथ-साथ भाषा ने भी स्वरूप बदला। वहाँ की भोजपुरी जिसे वे लोग हिंदी कहते हैं, उसमें क्रियोल के अनेक शब्द आ गए। मॉरीशस में लिखी गई एक कविता के अंश इस प्रकार हैं :

'जंगल काट कियो मैदाना
खेत बनाए सहित सिवाना।
उपल बटोर सजाए सीमा
खाकर दाल भात अरु पीमा।'

उपरोक्त पंक्तियों में 'सीमा' का अर्थ रास्ता है और 'पीमा' का मिर्च। यह सभी शब्द क्रियोल भाषा के हैं, जिनका प्रयोग भोजपुरी में किया गया है। इसी प्रकार आज मॉरीशस में वहाँ की हिंदी में अनेक शब्द क्रियोल भाषा के समाहित हो चुके हैं और वह नित नए प्रयोगों के साथ सामने आ रही है। भले ही हम उसे भोजपुरी कहें, अवधी कहें, या जो भी कहें, लेकिन वे लोग तो इसे हिंदी ही कहते हैं।

हिंदी का दिलचस्प स्वरूप तो फीजी में देखने को मिलता है, जिसे फीजी के लोग 'फीजी बात' कहते हैं। वह भाषा जिसे हम अवधी कहते हैं, अधिकतर शब्द और शैली अवधी ही है। उदाहरण स्वरूप प्रो. सुब्रमनी के 'डउका पुरान' का उल्लेख इस तर्क को प्रमाणित करता है कि विश्व में हिंदी यदि जीवित है तो इन्हीं लोकभाषाओं के कारण। 'डउका पुरान' उपन्यास का अंश इस प्रकार है

कामिनी तिरछा आंखिस देखा कै बोलिस,
'चोट्टा!'
हमार दिल धक से होइ गय। कुछ बोलत ना बना।
'घूरा करते हौ?'
'हम ना घूरित। खाली निहारित।'
कामिनी सोचे होइ केतना ढीठ होइ गवा फीजीलाल।
'धूरो फीजीलाल! हम कुछ ना बोलिद।'
'काहे?'
'अच्छा लगे जब तू घूरत हौ।'

उपरोक्त भाषा को आप कौन सी हिंदी कहेंगे? हम अवधी कहेंगे, लेकिन यह है फिजी की फिजीबात यानी वहाँ की हिंदी। जहाँ-जहाँ पर लोकभाषाओं ने अपना महत्त्व खोया है, वहीं-वहीं पर हिंदी भी शून्य हो गई है। जैस कि त्रिनिदाद और गयाना में। न वहाँ पर भोजपुरी बोलनेवाले मिलेंगे और न ही हिंदी के लोग। एक रोचक प्रसंग यह है कि पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद में आयोजित किया गया जिसमें कि सारी कार्यवाही अंग्रेजी में हुई। वहाँ की 'हिंदी निधि संस्था' के प्रमुख तक को हिंदी नहीं आती। सरकारी आँकड़ेबाजी भले कुछ ही बयाँ करे, लेकिन इन देशों में हिंदी नाममात्र की भी नहीं बची है। यह केवल वहाँ के समाज से लुप्त हुई भारतीय लोकभाषाओं के कारण हुआ है। मुझे एक मंदिर में बहुत विचित्र लग रहा था कि पंडित जी रोमन लिपि में लिखी हुई 'रामायण' बाँच रहे थे और भक्तजनों को उसका विवेचन अंग्रेजी में कर रहे थे।

हिंदी को लचीलापन देकर उसमें तमाम शब्दों को समाहित करना होगा। इससे भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, बांगलादेश, नेपाल, भूटान, बर्मा आदि देशों के लोग भी हिंदी को समझनेवाले हो जाएँगे। इससे वह एक आम बोलचाल की भाषा के रूप में अधिक समृद्ध होगी। जहाँ तक बात पश्चिमी देशों की है, वहाँ पर आजादी के बाद की पीढ़ी अधिक बसती है। जो व्यवसाय अथवा नौकरी के लिए वहाँ पर गए हुए हैं। उन लोगों में अंग्रेजियत अधिक है और भारतीय संस्कृति व भाषा के प्रति विरक्तता भी। इन लोगों के परिवारों में एक परिवर्तन धीरे-धीरे सामने आने लगा है, क्योंकि इनकी अगली पीढ़ी ने अपने बड़ों से वह संस्कार प्राप्त नहीं किए जो भारत में रहकर उन्हें प्राप्त होते। इसका खामियाजा इन परिवारों को आज भुगतना पड़ रहा है और अब यह लोग भी अपनी भाषा व लोक संस्कृति की ओर लौट रहे हैं। विगत दिनों हिंदी सम्मेलन में भाग लेने बर्मिंघम स्थित माता दा मंदिर पहुँचने पर जिस प्रकार ब्रिटेन के परिवारों को आपस में बातचीत करते और संस्कारों को निभाते हुए देखा, उससे यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि हम भारत में नहीं है। एक स्थानीय निवासी से बात करने पर उन्होंने बताया कि हम घर में केवल पंजाबी का ही प्रयोग करते हैं जिसके कारण हमारे बच्चों को हिंदुस्तान जाने पर कोई कठिनाई नहीं होती और हिंदी भी नहीं भूलते। क्योंकि बोलचाल में बहुत अंतर नहीं है। इसी प्रकार वहाँ के पंडित जी गढ़वाली मूल के थे। वे भी वहाँ के गढ़वाली परिवारों से अपने पहाड़ की भाषा में बतियाते दिखे। पंडित जी ने बताया कि यहाँ पर अनेक पहाड़ी मूल के परिवार हैं जहाँ पर पूजा व परिवारों का वातावरण विशुद्ध रूप से गढ़वाली ही है। यह एक निष्कर्ष सामने आया कि जिन-जिन भारतीय परिवारों में उनकी लोकभाषाएँ जीवित हैं वहीं पर हिंदी भी जीवित है। अन्यथा अंग्रेजी ने अपना वर्चव कायम कर लिया है। हिंदी को समर्थन देती मनोरंजन प्रसाद की भोजपुरी कविता कुछ यूँ कहती है

हिंदी ह भारत के भाषा
ऊहे एक राष्ट्र के आसा
हम ओकरो भंडार बढ़ाइब
ओही में बोलब ओ गाइब।

अतः यह सत्य ही है कि लोक के स्तंभ पर टिका है विश्व हिंदी का महराब।

Rakesh Pandey
Pravasi Sansar
5/23, Gita Colony, Delhi-92 (INDIA)
Email : pravasisansar@yahoo.com,
editor@pravasisansar.com
Tel:+91-9810180765,
+91-9312208845

विश्व हिंदी सचिवालय

WORLD HINDI SECRETARIAT

Swift Lane
Forest Side
Mauritius
Ph: (+230) 670 5026/ 676 1196/ 670 6965
Fax: (+230) 676 1224
Email: whsmauritius@intnet.mu/ sgwhs@intnet.mu/ dsjwhs@intnet.mu

आवरण पृष्ठ - **श्री प्रकाश झगरू**

मुद्रक : **विद्या विहार,** नई दिल्ली-110002 (भारत)
Email : vidyaviharnd@gmail.com